यह संस्करण—

'राजा निरबंसिया' मेरा पहला और 'कस्बेका आदमी' दूसरा कहानी संग्रह है। दोनों ही सन १९५७ में आठ महीनोंके अन्तरालपर प्रकाशित हुए थे। 'राजा निरबंसिया' तो उसी साल समाप्त हो गया था, 'कस्बेका आदमी' भी १९५८ तक बिककर खत्म हो चुका था। तबसे यह दोनों संग्रह अमुद्रित थे।

इन दोनों संग्रहोंके इस सम्मिलित संस्करणका सुझाव श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैनका ही है, इसके लिए मैं सचमुच उनका आभारी हूँ। अगर उन्होंने यह राय न दी होती और ज्ञानपीठसे इसे प्रकाशित करना स्वीकार न किया होता तो शायद कुछ और समय तक इन दोनों पुस्तकोंका पुनर्मुद्रण रुका रहता।

अब यह दोनों संग्रह एक साथ पाठकोंको उपलब्ध हो रहे हैं, यह मेरे लिए सन्तोषकी बात है।

नयी दिल्ली : जुलाई '६६ —*कमलेश्वर*

[प्रथम संस्करण]

कभी आपने ज्वालामुखीके शिखरपर बैठे हुए व्यक्तियोंकी कल्पना की हो, उनके अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक स्थितियोंके अध्ययनकी चेष्टा की हो और ऐसा सोचा हो कि इन्हें किस प्रकार विस्फोटोंकी वह्निसे बचाकर जीवनका मन्त्र दिया जाये तो नयी कहानीका धरातल और नये कहानी-कारोंकी प्रवृत्तियाँ सहज ही आपके सामने स्पष्ट हो उठेंगी।

कथानक, शैली और शिल्पको चुननेकी अभिरुचिमें, उनमें चाहे कितना भी वैभिन्न्य हो (और वह है) किन्तु मानवीय मूल्योंके संरक्षण, जीवनी शक्तिके परिप्रेषण एवं सामाजिक नवनिर्माणकी जितनी उत्कट प्यास इस पीढ़ीके कहानीकारोंमें है वह पिछले दौरमें नहीं थी। आजके हर कहानीकारमें कुछ कहनेके लिए एक अजब-सी अकुलाहट और बेबसी है, जो निश्चय ही इस संक्रान्तिकालकी देन है जिसने एक ओर यदि हमारी संवेद्य शक्तियोंपर दबाव डाला है तो दूसरी ओर हमारी चेतनाको भी जागरित किया है। इसलिए हम देखते हैं कि आजकी कहानियाँ कल्पनाके पंखोंपर नहीं उड़तीं बल्कि दुनियाकी व्यावहारिक और वास्त-विक जिन्दगीसे उनका सीधा सम्बन्ध है। धरतीके हर कणके प्रति लगाव, हर मोड़के प्रति जिज्ञासु भाव और हर गड्ढेको पाट देनेकी सहानुभूति पूर्ण विह्वलता उनमें है।

आजकी कहानियोंका रूप बहुत बदल गया है। इसलिए उनका

मापदण्ड भी बदलना पड़ेगा। उनकी सफलता या असफलताकी कसौटी यह नहीं हो सकती कि वे किस हद तक किसका मनोरंजन करती हैं बल्कि यह होगी कि वे मनुष्यकी शील-संवेदनाओंको कहाँतक झंझोड़ती, छूती और उकसाती हैं। केवल सोद्देश्यताकी पृष्ठभूमिमें ही आजके लेखक-की कहानियोंका अध्ययन किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वह स्वयं आत्म-ग्रन्थियोंका चित्रण या विश्लेषण सामाजिक समस्याओंके सन्दर्भमें करता है।

मुझे यह कहनेमें कोई झिझक नहीं कि हिन्दी आलोचकोंने आजके कहानी साहित्यका समुचित अध्ययन नहीं किया, अतः नयी कहानीके वैशिष्ट्य और नयेपनको पकड़ पानेमें वे असफल रहे हैं। इसीलिए कहानियों-की आलोचना करते हुए आज भी बहुत-से आलोचकोंके मुँहसे सुन पड़ता है कि कहानी अभी प्रेमचन्द और जैनेन्द्रसे आगे नहीं गयी। मेरा विनम्र निवेदन इसी सम्बन्धमें है कि आजकी कहानियाँ चाहे अपनी परिभाषामें उतनी 'सम्पूर्ण' न हों किन्तु कलात्मक अभिव्यक्ति, शिल्प कौशल और भाषाकी व्यंजना-शक्तिका उनमें निश्चित विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त नयी कहानीकी एक और भी उपलब्धि है—नयी भावभूमियोंका सृजन!

बस। अपनी इन कहानियोंके विषयमें तो केवल इतना ही कहूँगा कि इनके लिए मैं उस छोटे-से कस्बे मैनपुरीका आभारी हूँ, जहाँ जनमा और पलकर बड़ा हुआ और जहाँका धूल-धक्कड़ और जिन्दगीके कोलाहलसे भरापुरा, उदास किन्तु मोहक वातावरण मेरी अनुभूतियोंको नये-नये रंगोंमें रँगता रहता है।

—कमलेश्वर

इलाहाबाद : फरवरी '५७

भूमिका : 'क़स्बे का आदमी'

[प्रथम संस्करण]

'राजा निरबंसिया'के बाद यह मेरा दूसरा कहानी संग्रह है। इसमें अपेक्षाकृत छोटी कहानियाँ ही हैं। आजकी कहानीका रूप बहुत बदल गया है, अब वह केवल एक बात ही नहीं कहती, जीवनके एक खण्ड, और उस खण्डको समग्रतामें प्रस्तुत करनेकी चेष्टा करती है। वह सामान्यकी समर्थक है और साथ ही विशिष्टकी पोषक। इसीलिए कभी-कभी सामान्य कहानियाँ विशिष्टको प्रेषित करती जान पड़ती हैं और विशिष्ट कहानियाँ सामान्यको। सामान्यको विशिष्ट बना देनेका गुण मुख्यतः शैली-शिल्पके अधीन है और विशिष्टताको सामान्यतामें परिणत करनेका कौशल लेखककी कलाका सामाजिक धर्म। इसी प्रक्रियासे आज रोचकताकी रक्षा भी हो रही है। ऐसे नये प्रयासोंमें आजका कहानीकार सतर्कतासे संलग्न है, पर ये प्रयास पिछलेको नकारनेका दम्भ नहीं करते, उसी सम्पदा और परम्परासे विकसित हो रहे हैं। कहानीकी उसी अविरल और अबाध धाराने प्रसार पाया है, और वह नये जीवन-स्थलों, सत्यों और संवेदनाओं तक पहुँची है।

अपनी इन कहानियोंके सम्बन्धमें क्या कहूँ ? इनमें-से दो-तीन कहानियाँ पहलेकी लिखी हुई हैं, जो कारणवश 'राजा निरबंसिया' संग्रहमें नहीं जा सकी थीं। इस संग्रहकी कई कहानियोंमें क़स्बेके जीवन-चित्र हैं। किसी क्षेत्रके प्रति इतना लगाव 'व्यापकता'में बाधा माना जा सकता है, पर मैं यह स्वीकार नहीं कर पाता। लेखकका मानस भी एक ही होता है, उसीमें सारी रचनाएँ निःसृत होती हैं, यदि वे विविध और व्यापक हो सकती हैं तो क्षेत्र-विशेष उसमें सहायक ही होगा, बाधक नहीं। वह जीवन मानस है, और उसमें उठनेवाले ज्वार, संकल्प-विकल्प, संघर्ष और संवेदनाएँ कभी नहीं चुक सकतीं।

—कमलेश्वर

इलाहाबाद : नवम्बर '५७

● ● ●

उसकी माँ दरियाँ बुनती थी और वह बेकार था। दरियाँ बुननेका भी कोई ऐसा बंधा हुआ सिलसिला नहीं था, जिसे काम कहा जा सके। कभी कोई अपनी जरूरतसे बुनवा लेता और कभी बेजरूरत भी—उसे काम देनेकी नीयतसे दे देता, या बरसोंका कोई गद्दा लिहाफ़ जब जवाब दे जाता, उपल्ला और अस्तर फट जाता और बदरंग नामा भीतरसे झाँकने लगता, तो उसे काममें ले आनेका एक यही तरीक़ा था कि उसे देवाकी माँको दे दिया जाये और वह महीने-दो-महीनेमें दरी बुनकर दे जाये। मेहनत-मजूरीका दाम धीरे-धीरे घटता रहता, क्योंकि कोई धन्धा तो था नहीं कि इस हाथ ले उस हाथ दे। यही क्या कम था कि जरूरत पड़नेपर उसे कहीं न-कहींसे पैसे मिल ही जाते।

यहाँके ये सारे परिवार एक-दूसरेसे बेतरह जलते थे, कुढ़ते थे; पर वक़्तकी मारने उनकी जबानोंको कुन्द कर रखा था, हर-एककी बेबसीने एक अनदेखे धागेमें बड़े ही आश्चर्यजनक रूपमें उन्हें बाँध रखा था, जिसका कोई सिरा नज़र नहीं आता था। यही वजह थी कि जवान होते हुए भी, देवाके बेकार रहनेको, लोगोंने बड़ी निस्संग-स्वाभाविकतासे स्वीकार कर लिया था।

देवा जब अपने चारों ओर नज़र घुमाता तो उसे यह सब

सालता। गुड़ अपनी माँको बेईमानी चुभती, जो दरियोंके लिए कृतड़ लेने वक्त पन्सेरीपर आधा सेर ज्यादा लेनेकी नीयतसे, सैकड़े एकदमसे सादे पाँच सेरके लिए झगड़ती, और इस तरह आधा सेर रुई बचा-बचाकर आठ दस दरियोंके बाद, एक अपनी निजी दरी बनाकर बेच लेती। वह अपने चारों तरफ जब लोगोंको देखता तो उसे लगता कि उनके चेहरे एकदम एक-से हैं, जिनपर नफ़रत, प्यार, प्रशंसा या निन्दा—कुछ भी तो नहीं उभरती। अजीब-सी एकरसता थी, जैसे सब शंकर-से योगी हैं, जो विष पी-पीकर स्थिर-से बैठे हैं, आँखें मूँदे!

इसीलिए वह घरसे भागा-भागा रहता। मौलवी साहबके अस्तबलमें लगे शास्त्रीके छापाखानेमें बैठा रहता, वहाँकी एकरस आवाजसे जब मन ऊबता तो ठाकुरकी इमलीके नीचेवाले चबूतरेकी महफ़िलमें पहुँच जाता। कस्बे-भरकी सनसनीपूर्ण खबरें उसे शास्त्रीके छापाखानेमें मिलती रहतीं और सरकारके कारनामोंकी सूचनाएँ ठाकुरकी महफ़िलमें जमा होनेवाले बेसिक और नॉर्मल स्कूलके अध्यापकों और पण्डितोंसे मिलती। इन दोनों ही जगह उसे ऐसे आदमी दिखाई पड़ते थे जो अपनी बातों और अपने स्वार्थोंसे अलग-से होकर आस-पास और दूर-दूरके सुख-दुःख और संघर्षके प्रति ज़िन्दा दिखाई पड़ते थे''''यहाँ आकर जैसे वह अपनेको भुला बैठता और बहुतोंकी पाँतमें शामिल हो जाता। इसीलिए कभी-कभी अनचाहे—बिना सोचे, उसे देर हो जाती। सुबहसे आ जमता तो बातोंमें वक़्तका अन्दाज न रहता। दोपहर चढ़े जब घर पहुँचता तो दिल छोटा होने लगता, ख़याल आता—इतना वक़्त बेकार बरबाद कर दिया, इससे अच्छा होता कि अम्माके काममें हाथ बँटाता, और कुछ न सही तो रूहड़ ही नोचता, जिससे धुननेके लिए डाली जा सकती या सूतकी लच्छियाँ ही बनाता, जिससे रँगनेमें आसानी होती। घरमें घुसता, बरामदेमें ही अड्डा सजा होता, सूतका जाल पुरा होता और रंगीन सूतकी लिच्छियाँ इधर-उधर लुढ़कती होतीं, कसनेवाला हत्था एक ओर पड़ा होता

कर विना उसकी ओर देखे उठती और कोठरीमें घुस जाती। डिबियामें-से लम्बी जञ्जीरवाली घडी निकालती, घडी हथेलीपर रखती तो जंजीर हथेलीके उस पार झूल जाती; उसे कुछ क्षण देखती····एकटक····जैसे सुइयों-की गिनती पढनेमें उसे कुछ याद आता हो····

और तभी देवाका मन भर आता, अपनी बेपरवाही और उदासीनता-पर पश्चात्ताप होता। सोचता, आखिर माँ भी तो घरमें अकेली पडी रहती है, कही आती-जाती नहीं। क्या उसका दिल नहीं भटकता होगा? फिर माँपर कुछ झुँझलाहट भी होती कि ये कुछ बोलती क्यों नहीं, देरसे आनेपर डाँटती क्यों नहीं, कुछ पूछती क्यों नहीं? पर वह नही पूछती। जैसे सब स्वीकार कर लिया हो। लेकिन तभी उसे लगता कि वह कितने पीडित मौनसे सब-कुछ पूछ लेती है। अब कोठरीमें घडी देखने जाती है, तो शायद वह अपनेसे ही उत्तर माँगती है कि देवा अबतक कहाँ रहा? और फिर उसके बाद सुइयोंपर नजर गडाकर कुछ कहती है कि देखो तुम्हारा देवा कैसा हो गया···मेरा कुछ भी खयाल नहीं रखता, क्या इसकी उम्मीद भी छोड़ दूँ?

और तब देवाकी आँखें नम हो जाती, वह अपनेको सारी बातोंका जिम्मेदार पाता। उसे पिताकी याद आती, जिसे उसने देखा तो था पर कभी महसूस नहीं किया।

माँ कोठरीसे निकलती, आसन बिछाती और खाना परोसकर देवाको आवाज देती, "आ देवू, जरा पानी रख ले दो गिलास····"

तब देवाको पता चलता कि माँ भी बिना खाये बैठी रही है, कहता, "अम्मा तुम खा लेती न, मैं जरा मास्टरजीके पास गया था। उनके हाथमें पचास-साठकी नौकरी तो रहती ही है। शायद अबसे स्कूल खुलनेपर कुछ खयाल कर लें···" पर झूठ बोलते उसे कुछ न लगता, कह चुकनेके बाद माँके चेहरेकी स्थिरता जैसे उसे धिक्कारती और वह

अपनेमें सिमट जाता····[illegible]

को एक दरी बनानी है, सूत तो तैयार है, तू कल रंगरेजसे रँगवा दे, झटपट निबटा लूँ····"

"अम्मा घरपर जो रंग लें, बाजारमें बहुत दाम पड़ते हैं।"

"पक्का रंग तो घरपर मैं तैयार कर लूँ, पर कुटाई नहीं होती, और बिना कूटे रंग नहीं चढ़ता, मेरा तो कन्धा बेकार है, नहीं तो····"

"अरे कुटाई मैं करूँगा····कल तुम औटकर रंग बना देना, फिर सब मेरा काम····"

और दूसरे दिन देवा जब उठता तो खुद जाकर चूल्हा सुलगाता और कहता, "अम्मा, पहले रंग औट लो, फिर बैठा मैं कूटता रहूँगा तब-तक तुम खाना बना लेना····"

माँ पतीला चढ़ा देती, रंगकी पुड़िया चूल्हेके पास लाकर रख लेती और पटा डालकर बैठ जाती तो देवा देखता—कुछ देर तो लगेगी ही, जरा बाहर निकलता, फिर आकर झाँक जाता कि अब माँने पानीमें रंग डाला या नहीं। फिर निकल जाता और निकलता तो निकल ही जाता। जब वापस आता तो धूप चढ़ आयी होती, दोपहरी तपती होती और माँ पटियापर सूत रखे, हाँफते-हाँफते कूटती होती। बालोंकी लटें रूखी-सी झूलती होतीं, बाँहोंकी नसें सूत-सी उभर आतीं और उसके हाथ रंगसे बदरंग होते। माँ आहट सुनती तो लच्छियोंको तारपर फैलाकर कोठरीमें घुस जाती।

इसी तरह दिन बीतते जाते और देवाको कभी यह महसूस भी न हो पाता कि आखिर यह सब कैसे चलता जाता है। माँ किन खयालों-में डूब रहती है और क्या सोचती रहती है, और न वह पूछ ही पाता, क्योंकि जब भी पूछनेका अवसर आता तो वह घड़ी और उसकी सोने-

अपने प्रति असन्तोषसे पछताना होता। यदि वह कोशिश भी करता तो साहस न पड़ता'''क्योंकि उस घड़ी और उसकी सोनेकी जंजीरमें उसके पिताका इतिहास जुड़ा था, जो कहीं स्टेशन-मास्टर थे और वर्षोंसे दूसरी शादी करके अपने बाल-बच्चोंके साथ रह रहे थे। उसने सिर्फ इतना सुना था कि पाँच वर्ष पहले वे कुछ घण्टोंके लिए माँसे मिलने आये थे। तब दूसरी शादी कर चुके थे। माँने कहींसे उधार लाकर उनके लिए खाना बनाया था, पर उन्होंने खाया नहीं था। उस वक्त पड़ोसकी औरतोंने माँसे कहा था कि अपनी और देवाकी परवरिशके लिए कुछ माहवार तै कर लेना चाहिए, पर माँने वह बात ही नहीं उठायी। चलते वक्त पिताने माँसे कहा था कि घड़ीकी जरूरत पड़ जाती है कभी-कभी, उसे दे दो तो लेता जाऊँ। तो माँने जवाब दिया था कि यही एक चीज पास रह गयी है जो देवाको भी उसके वक्तका ज्ञान कराती रहती है। हाँ, यदि सोनेकी जंजीरकी जरूरत हो तो वह ले लें। पर पिताने बात खुल जानेके कारण और घड़ी माँगनेके पीछे जञ्जीरकी असली ख्वाहिश जाहिर होनेके कारण, आगे बात नहीं बढ़ायी थी और चले गये थे।

उनके जानेके बाद बगलके मकानकी बूढ़ी बातोंका पता लगाने आयी थी, क्योंकि उस दिन सभी घरोंमें यही चर्चा थी'''पीछे-पीछे देवाकी माँकी बुराइयाँ भी बड़ी ईमानदारीसे बयान की जा रही थीं और उससे भी ज्यादा ईमानदारी और चिन्तासे उसकी सहनशक्ति, सन्तोष और मुसीबतोंको दोहराया जा रहा था। बूढ़ी आकर वहाँ बैठी और उसने पूछा था, "क्यों देवूकी माँ, बात-चीतका कैसा रवैया था उनका ?"

"वैसा ही था चाची, सचमुच कोई फ़रक़ नहीं था'''मैं तो समझी थी कि पता नहीं कैसे पेश आयें, पर सुभाव नहीं बदला। तनसे तो एकदम बदल गये हैं। मैं तो पहली नजरमें पहचान नहीं पायी, अभीसे सामने-

के दो दाँत बदलवाने पड़ गये हैं""

"अच्छा, बात क्या-क्या हुई ? तुम्हारी बातोंका क्या जवाब दिया ?"

"मैं तो उन्हींकी सुनती रही चाची, बीच-बीचमें खामोश हो जाते थे, लगता था कि अपने कियेपर उन्हें दुःख हो रहा है. ऐसेमें क्या कुरेदती ? कह रहे थे, मन नहीं जमता कहीं। बड़ी देर तक समझाते रहे कि क्या-क्या सोच रहे हैं। फिक्रोंसे परेशान थे""चलते वक्त घड़ी मुझसे ज़रूर माँगी थी, सो मुझसे देते न बनी""पता नहीं कैसा मोह हो गया है उससे""

"तो उनको ये सब फिक्रें और दुःख सिर्फ घड़ीके लिए ही था, उसकी जंजीर तो सोनेकी है न !"—बूढ़ीने निष्कर्ष निकालते हुए कहा था।

"सो नहीं चाची, उन्हें लेना ही होता तो क्या मैं इनकार कर पाती ? मैंने कहा था कि चाहें तो जंजीर लेते जायें, पर उन्होंने फिर उसकी बात ही नहीं की।"

"हिम्मत नहीं पड़ी होगी, नहीं तो अब वे तुम्हें क्या समझते होंगे""

"ऐसी बात नहीं चाची, *उनमें ये सब बातें थी ही नहीं""आदमीमें वैसे भी खोट नहीं होती, उसे कुरस्ता तो औरत ही डालती है। मैं तो घर रहती थी, ये ड्यूटियोंपर दौड़ते रहते थे, महीनों बाद आना होता था। कहीं वह मिल गयी और उसने बहका दिया। औरत चाहे तो अच्छे-भले आदमीको उलझाते कितनी देर लगती है! अगर उन्होंने यह सब जान-बूझकर ही किया होता तो भला यहाँ आते ? और असल बात यह थी चाची कि मैं उनसे घुल-मिल ही नहीं पायी थी। ससुरालमें रहते घर-भरकी दौड़-धाप और हया-शरममें कभी आनेजानेकी बात ही नहीं कर पाती। उन्होंने मुझे जाना ही नहीं और अनजानमें जो कर बैठे वह तो हो ही गया""*

की अम्मा ! आदमी इतने सीधे नहीं होते। हर बातके पीछे मतलब होता है इनका''''तुम्हें अपनी परवरिशकी बात चलानी थी''''" बूढ़ीने बातका तार फिर पकड़ते हुए कहा।

"कहा तो, क्या चलाती''''मैं तो सन्तोष किये बैठी हूँ। दो-तीन सालकी और देर है, तबतक देबू करने-धरने लायक हुआ जाता है। काहे-को कहीं मुँह डालूँ? देवाकी फ़िक्र थी उन्हें भी, कह रहे थे, वैसे तो अपने पास बुला लेना, पर मेरा भी लगकर रहना नहीं हो पाता, इसीलिए सोचता हूँ, जैसा वहाँ वैसा यहाँ। अगर रहे तो मेरी निगाहके सामने रहे, नहीं तो तुमसे अच्छा और कौन होगा उसके लिए। उसके लिए बड़ी हिदायतें देते रहे थे। कहते थे, 'तुम्हींमे सब कुछ सीखेगा। आजकल लड़कोंको हवा लग जाती है। तुम्हारा डर-ख़ौफ़ अगर उसके ऊपरसे उठ गया तो बिगड़ जायेगा। अपनेको सँभाले रहना, जिस घरमे जनमी हो उसका ध्यान रखना। बड़ी ऊँची शान रही है तुम्हारे बाबूजीकी''''" देवा स्कूलसे आ ही नहीं पाया था''''"

बूढ़ी थोड़ी देर बाद उठकर चली गयी थी।

तबसे देवापर उसकी नज़रें और भी सतर्कता और प्यारसे जम गयी थीं। वह देवाको पेट काट-काटकर पढ़ाती रही, और जब वह पढ़-लिखकर बेकार बैठ गया, तब भी वह उसे उसी तरह देखती रही। उसके इधर-उधर बैठनेको सतर्क नज़रोंसे निहारती रही और जब-जब देरसे लौटनेपर वह झूठ बोलकर अपनेको भुलावा देता रहा तो उसके उस भ्रमको तोड़ने-की उसने कभी कोशिश न की। आख़िर उसके भ्रमको तोड़कर वह कौन-सी सच्चाई उसे दिखा सकती थी? इस बातको वह ख़ूब जानती थी।

एक रोज़ जब वह घर लौटा था तो हमेशाकी तरह देर हो गयी थी। उस रोज़ उसके साथ एक आदमी और था, जिसकी साइकिलके पीछे

किताबोंका ढेर बँधा था और सामने हैंडिलपर लटके झोलोंमें अखबार भरे थे। उस आदमीकी आँखोंमें एक अजीब-सा विराग था, और उसके चेहरेपर श्रमकी गुनगुनी कठोरता थी। देवा दरवाजेपर खड़ा-खड़ा कुछ देर उससे बातें करता रहा और जब भीतर आया था तो उसकी बातोंमें दुविधा या झिझक नहीं थी। जैसे मनका गुबार एकदम बाहर छोड़ आया हो और अपनी सार्थकताका अनुभव करने लगा हो, आकर बोला था, "अम्मा, तुम खा लिया करो। मेरे इन्तजारमें बैठा रहना ठीक नहीं। मेरा तो पैर निकल गया है…"

सुनकर माँको ऐसा लगा था कि मनमें आज तक जो टूटन थी वह शायद भर रही है, पर उसे कुछ दुःख भी हुआ था कि कहीं देवा उसकी तरफसे एकदम बेपरवाह न हो जाये। वह दिन-दिन-भर वहशियोंकी तरह घूमता और रात गये देर तक कुप्पीके प्रकाशमें न जाने क्या-क्या पढ़ता। अब देरसे आनेपर उसे सकोच न होता तो माँके दिलपर घूंसा-सा लगता। उसे चिढ़ भी होती, दुःख भी होता, और एक अजीब अव्यक्त-सा सुख भी मिलता। उसे लगता कि देवा कुछ अच्छा कर रहा है, पर वह अपनी तरफसे बेपरवाही भी बुरी है।

एक दिन उसे पता लगा था कि देवा राजनीतिक आदमियोंके साथ उठने-बैठने लगा है, उनके साथ झोला डाले इधर-उधर घूमता रहता है। अब वह अपने बारेमें या घरके बारेमें इतना चिन्तित नहीं है जितना कहीं दूर बैठे लोगों या शहरके दूसरे लोगोंके लिए है। कभी-कभी रातको भी बाहर रह जाता। मकानोंमें देवाकी चर्चा होती कि वह अखबार बेचने लगा है। नीच आदमियोंकी तरह घर-घर झाँकता फिरता है और चार पैसेका अखबार पहुँचाता है। चर्चा अगर बुराइयोंपर चल पड़ी तो देवा और उसकी माँको एकदम काला क़रार दे दिया जाता और कभी अच्छाइयोंपर मुड़ गयी तो उसकी जीवनी-शक्तिके सामने सब सिर

और वह सोचती "देवा भी सपनोंमें उलझा जा रहा है। उसमें जो आग सुलगी है, जो स्थिरता आयी है, वह उसे शक्ति देगी; पर वह दीन-दुनियाकी नंगी बातें करता है, उसकी बातोंमें कच्चापन है, पर बचपना नहीं और माँको लगता है कि देवा अब निपट अकेला नहीं है, वह बहुतोंसे अनदेखे रूपमें जुड़ गया है"""

पर यह बात भी उसके दिलमें बहुत नहीं जमती, आखिर इससे होता क्या है? इसलिए सोचते-सोचते बात मुँहसे निकल ही पड़ी। देवा अखबार बाँटकर आया था। माँने खाते वक्त उससे कहा था, "देवू, तुम्हारा यह अखबार बेचना अच्छा नहीं लगता""

देवा चुप ही रहा था। जब खाना खाकर चलने लगा तो माँने रोककर कहा, "यह पाँच सेर सूत लेते जाओ, सामने तुलवाकर देना, जब आना तब रँगवाकर लेते आना""

देवाने सुना और एक झोलेमें सूत भर लिया। पूछा, "कौन-से रंगमें रँगेगा?"

"चार सेर नीला और एक सेर पीला, 'बार्डर' के लिए।"

चलते-चलते उसे याद आया तो बोला, "अम्मा मुझे समय नहीं मिलेगा, तुम मेरा कुरता ज़रा धोकर डाल देना, इस्तरी मैं कर लूँगा"" कलके लिए कोई कुरता नहीं है।" अम्माने हूँ की और वह चला गया।

माँने कुरतेको साबुनसे धोकर, कलफ और नील लगाया, तारपर फैलाया और इन्तज़ार किया, पर देवा नहीं आया। खाना बनाकर बैठी रही, पर वह नहीं लौटा। रात आयी और चली गयी लेकिन देवाके वापस आते पैरोंकी आहट नहीं सुनाई पड़ी। तुलसीके बिरवेके ऊपर बँधी अलगनीपर उसका कुरता सूखकर सिकुड़ गया, पर वह नहीं लौटा। माँकी आँखोंसे नींद उड़कर उसे खोजती रही लेकिन किसी सूने पहरमें

भी वह वापस नहीं आया। और माँने यह भी स्वीकार कर लिया। अलगनीसे कुरता उतारकर, तहकर बक्समें रख दिया। पता नहीं किस वक्त आकर माँग बैठे।

तीसरे रोज पण्डित अपनी दरी माँगने जरूर आये। तब उसने यही कहा था, "छै-सात दिनमें पहुँचा दूँगी। देवाको सूत रँगनेके लिए दे दिया था, पता नहीं किस रंगरेजके यहाँ डाल आया है। देवा कल-परसों बाहरसे वापस आ जायेगा तो दो-चार दिनमें बिनके मैं खुद दे आऊँगी, परेशान न हों।"

"कल-परसों देवा वापस आ जायेगा? कहाँको कहके गया है? वह साल-भरसे पहले नहीं आता, गिरफ़्तारी हुई है कि मजाक़ है....."

"गिरफ़्तारी....."—माँने सन्न होकर कहा था।

"आन्दोलन किया है तो सजा भुगतनी ही पड़ेगी....."

सुनकर माँने खामोशी साध ली थी। बस इतना-भर कहा कि दरी पहुँच जायेगी, जैसे भी होगी।

गलीमें यह बात फैल गयी थी कि देवा जेल चला गया है, यहाँसे कुछ लोगोंके साथ वह करहल तहसील गया था, वहीं गिरफ़्तार हो गया है। सजा एक सालकी हुई है, लेकिन दो सौ रुपया जुर्माना-भर देंगे आधी सजा घट सकती है। पर उसके साथियोंमें कोई जुर्माना भरनेकी बातको ठीक नहीं समझता। देवाने जुर्म क्या किया है, इसके बारेमें किसीको ठीक-ठीक नहीं पता। जब माँकी समझमें और कुछ नहीं आया था तो वह हताश-सी हो गयी थी। गलीके लोग इसलिए भी कोई बात नहीं सुझाते थे कि उन्हें कहीं रुपयेका इन्तजाम न करना पड़ जाये। तब वह और किससे कहती! अकेली बैठती तो देवाके विचारोंका ध्यान बार-बार आता। वे देवाके लिए कितने चिन्तित थे। सोचा, अगर उन्हें पता चलेगा तो यही कहेंगे कि मुझे खबर तक न

दी। आखिर बेटा तो मेरा भी है, और कौन करेगा उसके लिए। जो हुआ सो हो चुका, पर क्या खून और प्यारके फर्ज छूट जाते हैं।

तब एक दिन उसने 'उन्हें' चिट्ठी लिखी थी—'देवा करहल तहसील-में गिरफ्तार हो गया है। कुछ कहके नहीं गया। थोड़े दिन पहले पण्डित-जीसे यह खबर मिली है। वह यह भी कहते हैं कि दो सौ रुपया जुर्माना दे दिया जाये तो देवाकी आधी सज़ा कट जायेगी। इतवारको रातको गया था। यहाँ बिलकुल अकेली हूँ, जी नहीं लगता, देवाकी वजहसे बड़ा सूना लगता है। कुछ काम भी नहीं कर पाती। आप जो पैरवी ठीक समझें, करके उसे छुड़ा लायें। हो सके तो यहाँ होते हुए आप करहल निकल जायें।'

जो आदमी अपने कामसे गया था और देवाकी माँका खत ले गया था वह वापस आया तो लिखावटके दो शब्द तक साथ न लाया। जबानी उसने यही बताया था कि स्टेशन-मास्टरजीका कहना है कि मुझसे पूछकर और मेरी मरज़ीसे देवा चलता होता तो मैं अपना सिर भी रोवता; उसका क्या ठिकाना, आज छुड़ाया कल फिर चला जायेगा""नौकरी-पेशा आदमी हूँ, और ये सब काम करनेके लिए वक्त चाहिए, वह कहाँसे लाऊँ""कल ही मुझे दूसरी जगह रिलीव करना है।

देवाकी माँने सुना तो पहले विश्वास नहीं आया। सोचा, शायद बेमौके चिट्ठी हाथमें पड़ी हो, पता नहीं दिमाग किन परेशानियोंमें फँसा हो कि यह तीर खाकर तिलमिला गये हों। जब ठण्डे दिलसे सोचेंगे तो शायद डाकसे चिट्ठी डाल दें। या शायद अपने घरकी बात बाहरवालेके सामने न करना चाहते हों, तो भी डाकसे हो आयेगी। लेकिन महीनों इन्तज़ारके बाद भी डाकसे कोई चिट्ठी नहीं आयी। वह भीतर कोठरीमें जाती, घड़ी हथेलीपर रखती तो वही जंज़ीर हथेलीके उस पार झूल जाती, पर कोई आता नहीं। घड़ीकी सुइयाँ वक्त बदलती जातीं, पर वे सूनेपनकी घड़ियाँ स्थिर-अडिग खड़ी थीं, अकेलेपनके पल अमिट हो

गये थे, जिन्हें घड़ीकी सुइयाँ नहीं हटा पायीं···नहीं हटा पायीं····

इधर पण्डितजीका दरीका तकाज़ा नाराज़ीका रूप धारण करता जा रहा था, उधर वह सारा कारबार रोके, हताश, उन परछाइयोंका इन्तज़ार कर रही थी जो चलती हैं, बनती हैं, मिटती हैं, पर बोलती नहीं। आख़िर एक दिन जब पण्डितजी खरी-खोटी सुना गये और सूत रँगने देनेवाली बातको महज़ बेईमानी और झूठी बात क़रार देकर बड़बड़ाते चले गये तो वह आँखोंमें आँसू भरे चरखा कातती रही। टूटते सूतसे सूत जोड़नेकी कोशिश करती रही और सिसकती रही····सोचती रही और रोती रही, उसके सूत तो ऐसे बिखर गये थे, जो पकड़ाई ही नहीं आते थे।

जब अँधेरा झुक आया और घरकी बँधी-बँधी फ़िज़ामें ऊब भरने लगी तो वह एक गहरी साँस लेकर उठी थी, चरखेकी चरमराहट रुकी तो और भी निस्तब्धता छा गयी थी। वह कोठरीमें पहुँची, तब न जाने कौन-सा घाव उघड़ गया कि आँखें अनायास भरभराकर बह उठीं।

और तब अँधेरेमें बैठे-बैठे उसके सामने जैसे सत्य उजागर होता गया था····वह अबतक किन परछाइयोंपर विश्वास करती आयी····देवाजी पिताजीपर····पर वह कितनी बड़ी प्रवंचना थी····कितना बड़ा धोखा वह देते आ रहे हैं। कितनी सफ़ाईसे सारी ज़िम्मेदारी टाल गये थे और कितनी खूबसूरतीसे उसके नारीत्व और पत्नीत्वको तृप्त कर गये थे···· इसलिए कि वह कुछ और न सोच सके····वह सिर्फ़ यही तो चाहते थे कि वह इसी तरह लँगड़ाती, घिसटती और अधूरी रहकर भी पतिके आकाशी आदर्शकी गरिमामें अपनेको धन्य मानती रहे···वह नीचे उतरकर धरती-का स्पर्श न करने पाये···कहते थे—देवापर तुम्हारा ही असर पड़ेगा···· और इस बातमें वे उसकी लज्जाको कितनी बड़ी चुनौती दे गये थे··· पर····तब उसकी आँखपर कौन-सा परदा पड़ा था!

और तब वह उस अँधेरी कोठरीसे निकली थी। सिन्दूरकी डिबिया

उसके हाथोंमें थी और तुलसीके बिरवे पर चाँदनी मुसकरा रही थी। चारों तरफ़ दूब-सा फैला था और एक अजीब-सी शीतलता थी। वह सिन्दूर-की डिबिया हाथमें लिये तुलसीको निहारती रही थी। भीतर बवण्डर-सा था। काँपती उँगलियोंसे उसने डिबिया खोली थी और सारा सिन्दूर तुलसी-की नीली-नीली पत्तियोंपर बिखेरकर अपना सुहाग उसे सौंप, सजल नयनों-से उस बिरवेको ताकती रही थी। तुलसीकी पँखुरियाँ सिन्दूर मिली दूधिया चमकसे जैसे और भी नीली पड़ गयी थीं। और वह तुलसीके घिरएपर माथा टेके, उस निपट अकेली रातमें, अपने एकाकीपनको सोच-सोचकर सिसिया-सिसियाकर रोयी थी, शंकासे भर-भर उठी थी, डरसे घबरायी थी, पर कहीं कुछ था जो उसे रुलाता था और ढाढ़स बँधाता था, उसकी आँखोंमें पानीका सैलाब लाता था और सोख लेता था·······

उस दिनसे उसने माँग नहीं भरी·····और कोई चारा न देखकर घड़ी-की जंजीर बेचकर रुई खरीद लायी थी। पण्डितको दरी भी बुनकर दे आयी थी।

तबसे वह लगातार खरीदी हुई रुईकी दरियाँ बुनती रहती, सूत कातती रहती और एक-एक बुनकर सहेज-सहेजकर रखती जाती। किसी-का काम मिल जाता तो कर देती, नहीं तो अपने काममें लगी रहती। देवाको बिछुड़े तो इतने दिन हो गये थे कि अब लगता था—वह दूर ही चला गया। जब उसकी बहुत याद आती तो सन्दूकसे उसका कुरता निकालती, तह खोलती, उसे देखती और फिर सँभालकर रख देती।

और जब आज साल-भर बाद देवा सामने आकर खड़ा हो गया तो माँका वही चरखा चल रहा था, जिसका हत्था शीशेकी तरह चमकने लगा था। वही स्थिरता माँके चेहरेपर छायी थी जो सहज भक्तिसे मिल पाती है, और सूत कातते क्षणोंकी खामोशी—जैसे आराधनाका मौन!

देवा ललचाया-सा खड़ा देखता रह गया। माँने उसका संकोच परख
था। उसे लगा कि अभी वह कुछ वैसी बातें कहेगा जिसमें वही पुरान
भ्रम होगा, उसे नौकरी मिल जानेवाली बात-जैसी कोई हल्की बक
होगी। पर देवाने वैसी कोई बात नहीं कही तो चरखेको मालार हा
फेरती हुई वह उठी और तब उसने नजदीकसे देवाको देखा। वह जैसे
पक गया था, उसके मुखपर श्रमकी आभा थी, कच्चा बचपना कहीं
दुबक गया था। सारे प्रश्न और उत्तर अपने-आप सहज हो गये। मन
सरल था। उसकी आँखोंमें ममता भर गयी, बोली, "देवू आ गया तू।"

"अम्मा....." और रुककर वह बोला था, "बड़ी भूख लगी है।"

"भूख....." उसने कहा।

"साल-भरसे भूखा हूँ....अम्मा पूरे एक सालसे...."

तब सारा समय सिमट आया, सब स्वाभाविक हो गया। माँने
खाना परोसा, देवाने पानी रखा और माँ-बेटे बेवक्त खाने बैठ गये।
खाते-खाते देवाने कहा, "बाबूजी अस्पतालमें हैं।"

"क्या हुआ?"—माँके चेहरेपर सब प्रकृत था।

"मोटरमें जान-पहचानका खलासी मिला था। मुझे पहचाना तो
उसने बताया था कि बाबूजीको प्लूरिसी हो गयी है। एक बार हालत
इतनी खराब हो गयी कि चौबीस घण्टे बेहोश रहे, फिर कुछ हालत ठीक
हुई, पर तीन-चार रोज बाद बिगड़ गयी....छोटे अस्पतालसे बड़ेमें
चले गये हैं...."

"कबसे खराब है?"

"एक महीनेसे, कल जाके देख आऊँ?"—देवा बोला।

माँ चुप रही। तीन-चार कौर उसने और खाये, गट-गट पानी पिया
और उठ गयी।

शाम गहरी-गहरी उदास थी। देवाका मन हुआ कि इतने दिनों बाद
जाकर लोगोंसे मिल ले। लौटकर आया तो माँ चरखेके तकुएकी नोक

पटियापर घिस रही थी। आज माँकी स्वाभाविक उदासीनतामें कुछ कलख थी। उदासीनताकी दृढ़ताकी जगह खोया-खोया मोह था।

रातको माँ दियेके प्रकाशमें बैठी चरखेकी रुई साफ करती रही। यह चरखा ही शायद उसका सबसे बड़ा सहारा था। सूत कातते हुए टूटे तार जोड़ते-जोड़ते अथाह धैर्य और अटूट दृढ़ता उसकी प्रकृतिमें आ गयी थी। प्रत्येक बार टूटनेवाले तारने उसकी खीझ, झुँझलाहट और असन्तोष-को जीत लिया था। जैसे इसीमें उसका निस्तार था, यह चरखा ही उसका गूँगा गुरु था।

रुई साफ करनेके बाद शायद वह लेटती, पर चरखेको खाटके सिरहाने रखकर वह अन्धी अलमारीके पास खड़ी रही। अरगेसे रखी हुई चीज़ोंको उठा-उठाकर निहारती रही। कीलमें लटकते कृष्णजीके कलैण्डरको देखती रही और फिर मोम लेकर चरखेकी माल सूतने लगी।

एक झपकीके बाद जब देवाकी आँख खुली तो देखा, माँ सूनकी पूनियोंके ढेरके सामने सिर झुकाये बैठी है····मोहका आवरण उसके चारों ओर अदृश्य-सा फैला है और उस अँधियारेमें उसकी काया असमंजसमें पड़ी है। वह कुछ चाह रही थी—पाना या खोना !····पर जैसे न वह पा सकती थी और न खो सकती थी····वहाँसे उठकर उसने दियेको बुझाया तो देवाने आँखें मूँद ली, और इस इन्तज़ारमें कि अब माँ लेटेगी, वह खुद सो गया।

सुबहको नरम सरदीसे वह कुछ जल्दी ही जागा। दीवारके मोखेसे प्रकाशकी रेखा आ रही थी और कोठरीका अँधियारा भूरा-भूरा हो गया था। उसे कुछ शुभ-सा लगा। माँकी खाट खाली थी। कुछ खटका मनमें हुआ। उठकर कोठरीकी चौखट तक आया।

बाहर आँगनमें जैसे पवित्रता छायी थी····हलकी सरदी और मनके उजियारेकी तरह पावन प्रकाश ! और उस प्रातके सुरमई आकाशसे

"दिन-भरका थका हारा है, तुम ले लो," बाबाने कहा, पर खुद पानी लेने उठ गये। अक्षत नदी किनारे घूमता रहा है। कितनी थकन आती है नदी किनारे, यह बाबा जानते हैं। माँ, पिता, भाई और मित्रकी तरह पाला है बाबाने।

पढ़-लिखकर बड़ा हुआ पर बाबाकी जबानसे सख्त बात नहीं सुनी। विशाल पर्वतकी तरह बाबा। बहुत दुस्तर-दुरूह पर बहुत विनत। जो चाहे चरणोंमें चढ़कर मस्तकपर बैठ जाये...जैसे पहाड़ कुछ नहीं बोलता। उसीकी तरह कठोर-कोमल। पता नहीं किन पथरीली चट्टानोंके नीचे अदेखी तरलता है, जो किसी क्षण, कहीं भी फूटकर बह निकलती है।

कथामें वह नहीं जाना चाहता था, पता नहीं क्यों ईश्वरपर विश्वास नहीं होता। बाबा नहीं बोले थे, न बुरा माना था। मनकी ठेस दिखाई नहीं। शिवरात्रि आयी थी। मन्दिरकी सजावट होनी है। बाबाने कहा, "अक्षत, दिन-भर रंगोंका खिलवाड़ करता है, मूर्तियोंके नाक-नक्श सँवार दे।" अब कैसे न जाता मन्दिर, कूचियाँ और रंग लेकर दिन-भर मन्दिरकी सजावटमें लगा रहा। भक्त आते रहे, उनकी अटूट श्रद्धा अनजाने मनमें उतरती रही। शामसे कीर्तन था। जाते हुए बाबाने कहा, "तुम तो यहीं रहोगे अक्षत, घर देखना। मैं मन्दिरपर रतजगेमें रहूँगा।"

पता नहीं क्यों अक्षतके मनमें हुआ कि थोड़ी देरके लिए चला जाये। बाबा धोती पहनना चाहते थे, मन्दिर और धर्मसे उसका कोई सम्बन्ध न जानकर बोले, "मेरी धोती पहन ले, देखूँ तेरे ऊपर फबती है या नहीं। बैठनेमें आसानी रहेगी।" बाबाने मनका काम करवा लिया था। इसी तरहके संस्कार दिया करते थे, विचार नहीं। विचार देनेवाले हताश भी होते हैं, पर संस्कार देनेवाले सदैव आश्वस्त रहते हैं। कितनी सहनशक्ति है बाबामें। जैसे कभी कुछ होता ही नहीं। रोज सुबह सूरजकी तरह चमकने लगते हैं। अम्लान, अदम्य मन! रात चाहे जो हुआ हो पर सुबह सब-कुछ वही। उनके स्नेहकी अक्षुण्ण गरमाहट-भरी कोमलता नहीं जाती।

अक्षत सोचता था कि बाबाकी बातको स्वीकार करनेपर बाबा कुछ कहेंगे और तब वह उन्हींसे अपनी बात मनवा लेगा, या वे विरोध ही करेंगे तो वह रास्ता पा लेगा। पर बाबा पानीका बहाव थे। हाथमें आकर निकल जाते; वह विरोध करता तो दोनों ओरसे कतराकर बह निकलते, और फिर धाराका वही अविरल प्रवाह।

एक रात अक्षतने कहा, "बाबा, आप सब जानते हैं, फिर भी····"

"अक्षत तू भी तो सब जानता है।"—बाबाने कहा।

"तो क्या करूँ बाबा, तुम्हीं बताओ। मैं तो केवल एक हूँ।"—अक्षतने कहा।

"एक है इसीलिए, तेरा सुख चाहिए। तेरी माँसे अधिक कौन सोच सकता था। वह तो आज अपने किसी भी स्वार्थसे दूर है। फिर तेरी मरजी, जो ठीक लगे, जिससे मन भरे····"—बाबाने रुंधे हुए गलेसे कहा और उनकी आँखें डबडबा आयीं। अक्षत देखता रह गया। बाबा भरी आँखोंसे उसे ताक रहे थे। उन पुतलियोंपर तैरते पानीमें उसकी तसवीर झिलमिला रही थी। पानीकी तसवीर! उसने आँखें झुका लीं, पर वे आँखें कभी नहीं भूलतीं। जब भी कुछ निश्चय करता है तो वे पीछा करतीं। माँगतीं कुछ नहीं। न आदेश देतीं। न अनुनय और न तिरस्कार। बस यही कि जो तुम करोगे, वे स्वीकार कर लेंगी, इनमें उभरी हुई तसवीर न मिट जाये···बस केवल यही।

सहसा एक झटकेके साथ गाड़ी रुक गयी। अक्षत होशमें आया। क्या-क्या सोच जाता है। पता नहीं अब मनोषा कैसी होगी? अनजाने चला आया था। आज वापस वहीं जाते एक क्षणके लिए संकोच होता है। लेकिन बात ही ऐसी थी। और संजय क्या सोचता होगा? और बापू! कभी-कभी प्यार भी अत्याचार हो जाता है। उसे सब क्यों इतना चाहते

ता था। मनीषा सामने थी। न बहुत देखनेकी आतुरता,
ज्ञानेका अहंकार। अक्षत भी सामान्य था और मनीषा
रिवार कुछ देर साथ रहता है वैसे ही मनीषाके बारेमें
ी सम्यक और तेजोमय थी। एक ऐसे पक्षीकी भांति
ज़ोरसे पहचानता हो। हवाको काट फेंकनेका दम्भ
को आनतारर विश्वास हो, बस इतना ही। इसमें
ोई असाधारण आकर्षण नहीं।
मनीषाने पूछा था, "मुझे कैसा लगता है?"

केनारे खड़े होकर न जाने कैसे छिप गये थे। होंठोंका
निश्छल! कैसा आकार है, कुछ याद नहीं आता। बस, वे
जब सोचने बैठता हूं तब बनावट खो जाती है। जब उन
नहीं समझ पाता तो फिर उन आंखोंमें झांकता हूं और
छोर उन्हें फिर-फिर निहारती है। मनीषा जैसे केवल
और उसमें उभरी हुई उसकी छाया। पानी और छाया,
जैसे छाया पानीसे विलग नहीं, जैसे पानी छायासे

लगता था। बडा पछतावा हुआ बादमें, कितना
हँसी केवल तुम्हीं लोगोंके पास थी। आदमीका
बीव, संजय, अमित, अदीप और तुम। तुम्हारे
कल्पनाएँ कितनी पवित्र हैं। इतना रस कहाँसे
आमें रहते हुए भी उससे अलग होकर सपने कैसे
चे-समझे कैसे हँस लेते हो। सचमुच स्वार्थी नहीं
र्थकता है तुम लोगोंके जीवनकी…"
र जी रहे हैं अभी तो। किसीके काम नहीं
संजय कुछ भी तो नहीं करता। अमित यूँ ही
हुद में…कोई अर्थ नहीं "ऐसे कुछ होता है?"
तुम्हीं सब तो कगारके पेड हो, जिनकी जडोंसे
ी धार छोड़ती? ये पहाड, चांद-सितारे आखिर
रहे हैं…इन्हें बेकार कहोगे। हर क्षण अर्थ खोजोगे
जबतक अर्थहीन जी लोगे तभीतक यह पवित्रता-
युक्त रह लूँगी। तुम सब तो सौन्दर्य हो, अपनेमें
ी, 'तुम सब बेहूदे हो, देखकर हँसते हो तो बडे
ती है।' पर तुम सुन्दर न होते तो हमें यह गर्व
"

ी दर देरसे बोलती तो अक्षत हँस पडता, "तुम

एक दिन उसकी आँखोंमें आँसू थे, "कुछ बताओ अक्षत, क्या हम ऐसे नहीं रह सकते? क्या यह सब जरूरी होना है। और क्या अधिक मिल जायेगा। तुम्हीं बताओ। तुम्हारा कुछ भी नहीं चाहिए। सब बाँट दो अक्षत! पर अपने रंगोंको जीवित रखना...अपने लिए। जो केवल तुम्हारा होगा, वही मेरे लिए बहुत है। मैं मरना नहीं चाहती अक्षत। मुझे मारना मत।"

सुनकर अक्षत खामोश रह गया था। उसकी आँखोंमें भाप-सी उमड़ी थी पर पानी नहीं था। सब-कुछ भूलकर मनीषा एकदम बोली थी, 'बरसनेके पहलेके बादल बहुत अच्छे लगते हैं...बस ऐसे ही रहना, इससे ज्यादा कुछ नहीं...."

"बात क्यों उड़ाती हो, सब साफ-साफ़ बताओ।"—अक्षतने पूछा था।

"कुछ भी नहीं, बस ऐसे ही। तुम परेशान मत हुआ करो। मैंने मजाक़ की थी। इतना भी नहीं सह सकते...." कहकर मनीषाने बात उड़ा दी थी, "तुमसे अच्छा तो संजय है। न जाने इतना क्यों चाहता है तुम्हें, घण्टों तुम्हारी बातें करते नहीं थकता। तुम सब कितना सोचते हो, एक-दूसरेके लिए।" और बात संजयकी ओर मुड़ गयी थी।

फिर एक दिन बोली थी, "संजयने एक खुशखबरी सुनायी है।" सुनकर अक्षत उदास हो गया, बोला, "यह सब होने नहीं जा रहा है। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए....न तुम और न दूसरा। मैंने तो माँगा नहीं, बाबा न जाने क्यों परेशान हैं। तुम्हारे प्रति उनका व्यवहार भी बिगड़ा होगा। कैसे देखते हैं तुम्हें?"

"जैसे पहले देखते थे, तुम्हारे लिए ही तो सब सोचते हैं। सचमुच कितने भाग्यवान् हो तुम, मुझे तो ईर्ष्या होती है। तुम्हारी जगह मैं होती तो सुख उठाये न बनता। तुम जीना भी नहीं जानते। मैं बाबाके साथ

लिए भेजूँगी ।"

समझती हो·····"

है ? बाबाकी बात स्वीकार कर लो अक्षत । उन्हें
र ।"

। बोला, "मैं कुछ भी नहीं ।"

मन स्वीकार लेगा । न स्वीकारे तो, और कुछ
ही, ऐसा कुछ भी नहीं जो औरोंको दुःखदायी
।

भी कुछ नहीं हुआ था, जैसे दोनों अछूते थे । वे
। पर कुछ था जो कसक जाता था·····न जाने कैसा
था मनमें, दु:खकी संज्ञामें अर्थदोष दिखाई पड़ता
क तृप्ति थी, पश्चात्ताप और कुछ खो देनेकी
अदम्य शक्ति । विश्वास पा लेनेपर भी रिक्तता,
अटूट विश्वासकी कड़ी थी ।

र मनीषा आयी थी । "चलो नदीकी तरफ घूम
के पारकी वह नदी । आग बरस रही थी । आखिर
ार ले जानेवाली नावें स्थिर थीं । दूरका क़स्बा
ा था । चारों तरफ़ जैसे आग लग गयी हो और

मनीषा घुटनोंपर सर रखे चुपचाप बैठी थी। आँधी आयी थी। और दोनों छप्परसे निकलकर बोधि वृक्षोंके नीचे आ गये थे, सामने ढाल है। सारा शरीर धूलसे ढँक गया है। मनीषा नजदीक खींचकर बालोंमें पड़े तिनके बीनती जाती है। सहसा उसने पूछा था, "पेड़ गिर पड़े तो ?"

"दोनों दब जायेंगे···"

"मेरे लिए सफेद गुलाब लगवाना।"

"और मेरी देहसे जो भी काम आये, सब ले लिया जाये। मनकी आग भी····"

दोनों और निकट आ जाना चाहते थे, पर नहीं। अपनी बनायी दीवारें नहीं तोड़ी जातीं। दोनों सन्तप्त-सन्तप्त खड़े हैं। "एक बात मानोगी मनीषा ?" उसने पूछा था।

"क्या ?"

"विन्ध्याचलकी तरह मानना पड़ेगा।"

"कब आओगे, बस यह बता दो और सब स्वीकार कर लूँगी।"

"कभी नहीं,"—कहते-कहते भीतरका धीरज टूट गया था। पर दोनों चुप थे। जैसे नदी-तटपर कोई प्रतिज्ञा करके धार रहे हों। उस पार नावें अभी नहीं खुली थीं, इधरका घाट भी वीरान पड़ा था। दूर स्टेशनपर जब रेलकी सीटी गूँज जाती है, तब दो घण्टे बाद कोई घाटपर नावका इन्तजार करता दीख पड़ता है। आज शायद कोई भी नहीं आया था।

दोनों उठकर चले आये थे और पागलोंकी तरह पलाशके वनोंकी ओर बढ़ गये। बस साथ रहना इष्ट था। अनजाने पैरोंको पतेलने काट दिया था। बरामदेकी ओरसे पुनः वापस लौटे, तब शाम हो गयी थी।

और तबसे आज तक, न अब तक कोई वचन लिया था न दिया था। विन्ध्याचल नत होगा। अकारण। मनीषा क्या देती थी, वह नहीं जानता। क्या माँगती थी, यह भी नहीं जानता। वह सब-कुछ उसीपर

छोड़ देती थी। जो मन स्वीकारे वही ठीक। अधिकार-हीन होकर अधिकारिणी हो जाती थी।

तेज सीटीकी आवाज़के साथ गाड़ी रुक गयी। चारों तरफ सन्नाटा था। बीहड़ सुनसानमें अचानक यह रुकाव कैसा? अशान्तने आँखें रगड़ीं। खिड़कीसे बाहर झाँका तो नागफनीकी बाड़ दूर तक खड़ी थी। कोई स्टेशन नहीं था। शायद सिगनलका इन्तज़ार हो। न जाने अपने-आपमें कैसा लगा। मन भर-भर आता है। डिब्बेमें सब सो रहे हैं, कोई भी नहीं जागता, कुछ देर बातें ही करता। गाड़ी धीरे-धीरे रेंगने लगी। एक छोटा-सा गाँव सोया पड़ा था। धूमिल चाँदनीमें छोटी और ऊँची झोपड़ियाँ चमक रही थीं, खन्दकोंकी किनारियोंमें दूध झर रहा था। चाँदनीके चमकदार बादलोंके बीचसे झोपड़ियोंकी कुछ नवीली चोटियाँ झाँक रही थीं। भूरे मटोंके मैदान चाँदी-से चमक रहे थे····

संजय और चमकती रेती!

ऐसी ही रेती चमचम करती थी। दोनों किनारोंपर फैली हुई रेती। संजय बाँह पकड़कर कहता, "अशान्त, चलो। अब बहुत देर हो गयी।" पर दोनों चाँदनीमें डूबे गाँवको देखते रह जाते थे····बचपन बीता और दोनों अलग होकर कितने वर्षों बाद फिर उसी गाँवमें मिले थे। अब अशान्त रंग और काग़ज़ लिये, न जाने क्या-क्या उतारा करता था और संजय न जाने क्या-क्या लिखा करता। दोनोंमें न जाने कैसी समता थी, संजय कहता, "अशान्त ये गाँव जायेंगे" ये जो कुछ इनमें टूटकर बदल रहा है, इसे रंगोंमें उतारे जाओ। एक इतिहास बनाकर रख दो····"

और जब-जब मन हारता, उसे मनीलाका दिया हुआ हार याद आता—'अपने रंगको जीवित रखना····अपने लिए····'सचमुच हार हो

लगता। कहता, "बड़ा मुश्किल है संजय! बनाते-बनाते नदीका रंग बदल जाता है!"

"बदल जाने दो, वह तो हमेशा रहेगा, पर जाल फेंकनेसे पहले मछुआरा झुककर जब अपनी शक्ति तोलता है, उस मुद्राको लो, मल्लाह जब नदीकी छातीमें बाँस गड़ाकर धार चीरता है, उस पौरुषको लो अक्षत! नदीमें दीपदान करती स्त्रियोंकी श्रद्धाको लो। ये हमारी प्रगतिके चरण हैं, पता नहीं कल कौन-सा रूप होगा। ये दृश्य जीवनके किसी और रूपको जन्म देकर खो जायेंगे। इन्हें इनके पूरे अर्थोंके साथ उतार लो···" —संजय कहता था, "तुम्हारी रेखाएँ और मेरे शब्द एक जीवित युग छोड़ जायें····"

तब मनीषाका शाप न जाने किन ऊँचाइयों तक उठा ले जाता···· कितने रंग, कितने चित्र, मुद्राएँ और भाव। कहाँ फ़ुरसत है। सारे सामाजिक सम्बन्ध सुविधाके लिए है, स्थितप्रज्ञ हो सकनेके लिए, आचरण-वृत्ति और वासनाके नियमके लिए। रंगोंके साथ सबका शमन हो जाता है, कहाँ कुछ व्यापता है। कोई कमी नहीं खलती।

तब संजय खुद ही कहता, "इस तरह पागल हो जाओगे अक्षत! वह तुम्हारे लिए आती है और तुम समझते नहीं।"

फिर काफ़ी दिनों बाद एक बार बोला था, "अक्षत, बहुत भाग्यवान् हो तुम, मनीषा तुम्हारी अतिरिक्त शक्ति है, तुम्हें कभी इस साहसिक जीवनसे डिगने नहीं देगी। जहाँ रुकोगे, वह चलायेगी। जीवन कभी हार नहीं पायेगा···"

लेकिन जब बाबाकी बात उसने सुनी थी तब संजय ही सचमुच दुःखी था। बहुत सोच-समझकर उसने कहा, "अक्षत, बाबाकी बात स्वीकार करके क्या कर पाओगे? तुम्हारे रंगोंके बग़ैर हर चित्र अधूरा रह जायेगा। सुबह नदीपर पानी लेने जाती हुई औरतोंकी धीमी चालकी रेखाएँ

जबतक तुम्हारे कागज़पर नहीं उतरेगी तबतक उस बालका सौन्दर्य नहीं उभरेगा। सौन्दर्य तो तुम देते हो, नहीं तो ये अभ्यस्त आँखें एक-रसताके अलावा क्या देख पाती हैं? वही रोजके दृश्य हैं, पर तुम्हारे रंग उन्हें रोज नया अर्थ देते हैं। कौन-सी बड़ी सार्थकता है अक्षत। बाबाकी बात या ये उल्लास""जो सबके लिए अनायास तुम्हारे माध्यमसे मिल जाता है। कोई सहायक लो, जुआ मत खेलो। हर जुआरी आखिरमें हारता है।''

और तब मनीषा, बाबा और संजय सभी सामने थे। किसपर आँख मूँदकर अविश्वास करे। खुली आँखों तो हर कोई महान् दीखता है।

संजयसे उसने बहुत अपनेपनसे कहा, ''तुम सब क्या चाहते हो? कुछ भी समझमें नहीं आता। सब जैसे मनकी बात हुई जाती है, बुद्धि केवल वहीं काम देती है जहाँ तर्क हो, विरोध हो, अविश्वास हो, रहस्य हो। पर संजय, यहाँ तो सब स्पष्ट है। सब साफ़ है। ग्रन्थियाँ तो कहीं नहीं। मनीषा, बाबा और तुम""सभी केलेके तनेकी तरह सीधे और ग्रन्थिहीन""इसलिए बार-बार सरक जाता हूँ""इन तीनोंमें गाँठें होतीं तो शायद आड़ आता। विरोध हटाता। स्वार्थ होता तो टकराता। बुद्धि ऐसी जगह बड़ी असक्त हो जाती है। जो मनसे पाता है उसे बुद्धिसे जबरदस्ती तर्कजालमें डालकर तोड़ देना बड़ा दुष्कर है""इसीलिए कहता हूँ संजय विद्रोह और संघर्ष मनको थाती है, बुद्धिकी नहीं। कोई उलझन मेरे सामने नहीं, पर कुछ इतना विराट् और व्यापक सामने है जिसे देखनेमें दृष्टि हार जाती है""अन्तरिक्ष दृष्टिकी सीमा है, प्राकृतिक विस्तारको नहीं। रातका अँधेरा भी हमारी दृष्टिकी सीमाके कारण है, सुबह तो कहीं-न-कहीं होती ही है। बस संजय, ये सीमाएँ हैं मेरा सीमित जीवन, सीमित साधन और परिस्थितियाँ। सब-कुछ करना चाहता हूँ, सबके लिए करना चाहता हूँ, पर कैसे? किस तरह संजय?''

''अनिश्चितताके लिए मन उत्तर नहीं देता। जो मूल्यवान् हो उसे ग्रहण लो! यह अन्तर करना पड़ेगा, जो कम मूल्यवान् हो उसे छोड़ो,

चुनना पड़ेगा अक्षत।"—संजय बोला था।

"किसके मूल्यको कम आँकूँ? कोई तो सामर्थ्यसे कम नहीं देता। जिसके पास जो है दे देता है, फिर यह अन्तरकी बात कहाँ है संजय। मूल्यांकन करनेके लिए अन्ततः दृष्टिदोष चाहिए। वह कहाँसे लाऊँ। अपने मनको सँकरा कर लूँ? शायद तभी किसीपर विश्वास कम हो सकेगा, नहीं तो नहीं। यह नहीं हो पायेगा... नहीं कर पाऊँगा..."—अक्षतने कहा था।

"खूब सोचकर स्वीकार करो।"—संजीदगीसे संजय बोला।

"सब तो तुम लोगोंने सोचा है... कुछ और सोचो मेरे लिए... जो सचमुच सही है उसे अपने अहंसे, व्यक्तित्वके झूठे पौरुषपर गलत कैसे कह दूँ? इसलिए कि उन बातोंको सही मानते हुए भी व्यक्तित्वकी विशेषता-का आडम्बर खड़ा करूँ? कुछ नया कर जाऊँ... यह नयापन बहुत पुराना है। आदिम बर्बरताका एक रूप है। यह वैयक्तिक चमत्कारकी गढ़ी हुई मान्यता है संजय। धर्मने कितने चमत्कार खड़े किये। पर हमें कहाँ पहुँचाया? भ्रम और अन्धविश्वासमें छोड़ गया। चौरासी करोड़ देवताओंके रहते हुए देवताहीन बौद्ध मत फैल ही गया। कोई नहीं रोक पाया। तुम सभी बोधिसत्व हो... किसे नकार दूँ!"—अक्षतने बहुत सहज कहा था।

"इतना बड़ा विश्वास लेकर जी पाओगे?" संजय बोला, "यह भी भ्रमका दूसरा रूप है..."

"भ्रम बुद्धिहीनके लिए है", अक्षत आवेशमें बोला, "विश्वास लिया नहीं जाता संजय, धारण किया जाता है। शरीर धारण करके हम अन्तिम क्षण तक जी लेते हैं। मेरे या तुम्हारे जी लेनेमें तो कौन-सी दुविधा है।"

संजय चुप हो गया था। और मनीषाकी बातें उसे याद आती रही थीं, 'तुम जी सको, तुम्हारे रंग जी सकें, बस इतना चाहता हूँ, पर कुण्ठित मत होने देना। इन्हें सीमाने सिखाया, चाहे असीममें... चाहे बिखरें। फिर चाहे जो स्वीकार करो अक्षत!'

एक झटका लगा और गाड़ी रुक गयी। उसका छोटा-सा स्टेशन मद-होश पड़ा था। दूरका आसमान सुरमई होकर चाँदनी पी रहा था। हवा-में नमी थी। डिब्बेके एकाध यात्री जागनेके क्रममें थे। न जाने मन कैसा हुआ कि लौटनेको कहने लगा। यह दो वर्षोंका अज्ञात-वास क्या-क्या देखेगा जाकर?……एक भी पत्र नहीं डाला इस बीच। सब लोग क्या सोचते होंगे। और सहसा पाकर किस तरह मिलेंगे। उसने सामान उठाया और उतर पड़ा। प्लेटफ़ार्मपर खड़े होकर इच्छा हुई कि पंख लग जायें और वह गाँवमें हो……इस चाँदनीके आसमानी समुद्रमें स्वप्नकी तरह उतरे। मनोंगा बाँहोंमें घेर ले, मजय मार बैठे और बाबा अपनेमें डुबो लें।

हलकी हवा चल रही थी। सारे कपड़े उतार दे, यहाँसे वहाँतक नंगा होकर घूमे। जैसे अक्षतको सब यहीं मिल गये हों। कौन पराया है जिससे शर्म करे। छिपाव रखे। तभी गाड़ी छूट गयी और सामान लिये उस छोटे-से स्टेशनसे बाहर आ गया।

कुत्ते जाग गये थे। दुकानें सोयी पड़ी थीं। कदम उठते गये और पता नहीं किस तरह सारा रास्ता कट गया। वह नदीके किनारे खड़ा था। एक क्षण देखता रह गया……बहता हुआ अथाह पानी। कहीं कगार टूटकर उसमें गिर पड़ी। ठेकेवाले जाग गये थे और एक बड़ी व्यापारी नावमें ऊँट चढ़ाये आ रहे थे ……उर्र……र……र……र और फिर छर……छर……! नाव काँपी और ऊँट चढ़ गया। सवारीवाली नावके लिए अभी सवारियाँ थीं नहीं। वह उसी नावपर बैठ लिया।

नदी चढ़ी थी। बाँससे किनारा ठेला और अब धार थी। बहता हुआ पानी। सहसा मन अकथनाय बोझसे भर आया। पानीमें गँदलापन और गति थी। पानीकी ओर देखा……कोई तसवीर नहीं झाँकती। न जाने कैसा बोध हुआ। अक्षतको लगा कि वह नाहक ही चला आया, न आता तो अच्छा होता। कौन मिलेगा अब सब पराये हो गये होंगे। सब तसवीरें मिट गयी होंगी। सारा उल्लास और आह्लाद खो गया। उसे

कोई न देखे। मन हटानेके लिए उसने बनाये चित्रोंकी फ़ाइल निकाली। कितना रँगा है उसने। मनीषाके शापने एक क्षणको भी नहीं बैठने दिया। बीमार न पड़ता तो न जाने कितने चित्र होते। अनगिनत।

पूरबसे सुबह हो रही थी। पानी पारेकी तरह मोटा था और लहरोंके थपेड़े उसे कँपा रहे थे। दूर किनारा अभी धुँधलकेमें डूबा था। मन फिर हुलस आया।

विन्ध्याचल अभी नत होगा।

संजय शब्दोंके महलमें सोया पड़ा होगा।

बाबा आँखोंमें तसवीर लिये गुम-सुम बैठे होंगे।

और वह जाकर अपने रंगोंसे सबको भर देगा।

किनारा आते ही मन डूबने लगा। क्या होगा? कौन कैसा होगा। उतरकर एक क्षण सोचा, पहले कहाँ? संजयकी ओर। उससे सबके लिए पूछ पायेगा।

अभी तो घरका दरवाज़ा आया था। भीतर शब्दोंका महल खड़ा होगा! खटखटाया तो बड़े भाईने दरवाज़ा खोला। सम्पूर्ण भर लिया। जैसे बोल न पाते हों। "अक्षत····कहाँ खो गये थे, अच्छा किया तुम आ गये ···बहुत अच्छा किया तुम आ गये, बहुत वक़्तमें आये अक्षत।"—और उन्होंने बाँह पकड़कर शब्दोंके महलके भीतर कर लिया····

एक बार देखता रह गया। चारों तरफ़ काग़ज़। काग़ज़के ढेर···· अलमारीमें, सन्दूक़पर, खिड़कीपर, मेज़पर और उनपर जमी हुई धूलकी पर्त। सचमुच शब्दोंका महल खड़ा था। सम्भ्रम-सा ताकता रह गया। तभी संजयकी आवाज़ कानोंमें आयी—"आओ अक्षत····"

आवाज़ने दिशा दी। उधर कोनेमें एक खाटपर संजय पड़ा था। कितना लम्बा हो गया और आँखें जैसे निकली पड़ती थीं। मुखपर केवल आँखें थीं। संजय कुछ बोल रहा था, अक्षतने सब धीरे-धीरे सुना····

मस्ज़ीका महल बन चुका था, पर दिल्ली जानेको तैयार खड़ा था।

और''''और बाबाकी आँखोंकी तसवीर मिटी नहीं, वे उसे साथ ले गये।

और विन्ध्याचल नतसिर चला गया। अक्षत-द्वारा दिया मस्तकका दाग ज़रूर उतर गया। अब सूरज रोज़ सुबह सिन्दूर भरता है।

अक्षतने गहरी साँस लेकर संजयको देखा और फिर खिड़कीकी ओर। सुबह सिन्दूरी माँग लिये मिलने आ रही थी—मनीषा तो नहीं''' और उस सिन्दूरके बीच डबडबाया-सा गोला उभर रहा था—बाबा तो नहीं''''

वहीं भी पानी नहीं था, कोई तसवीर नहीं थी। पथरीली ज़मीन दूर तक फैली पड़ी थी। एक दूसरी ही सृष्टि थी''''

संजय बुदबुदाया, "अक्षत, अब पत्थरपर तसवीरें आँकना। पानीके रंग चुक गये''''इन पत्थरोंको तराशना, इनकी मूर्तियाँ गढ़ना''''"

अक्षत उन पथरायी आँखोंको देख रहा था जो और भी बड़ी होती जा रही थीं।

संजय फिर बुदबुदाया, "मैं जानता हूँ अक्षत! वे पत्थर भी एक दिन चुक जायेंगे, तब तिनके उठा लेना, उन्हें जोड़-तोड़ कर रूप देना, पर हारना मत''''"

अक्षतने संजयको पथरायी-उदास आँखोंमें झाँककर देखा, उनमें पानी छलछला आया था। अक्षतने काँपते होंठोंसे उसका माथा चूम लिया। पाप स्वीकार करके उसने ऐसे ही मनीषाका माथा उस दिन भी चूम लिया था''''जीवित रह सकनेकी ताकतके लिए! और तबसे आज तक वह जीवित है।

•

धूल उड़ जाती है

तब यहाँ एक छोटी-सी बस्ती थी। मन्दिर और मस्जिद थे। डाक बँगला और स्टेशन पास है पर शहरसे स्टेशन जानेवाली सड़कने रास्ता बदल लिया, इसलिए उसका कोई सम्बन्ध इस उजड़ी बस्तीसे नहीं रह गया। जैसे बहाव बदल लेनेवाली नदी अपना कोलाहल और स्फूर्ति साथ ले गयी हो।

जुम्मन साईंकी कोठरी और नसीबनकी झोपड़ी तब भी यहीं थी, अब भी यहीं है। उनके अलावा गिरे और ढहे हुए कच्चे मकानोंके निशान बाकी रह गये हैं।

अँधेरा हो रहा था, साईं बोला, "नौ बरस हो गये लेकिन इधर कोई नहीं आया। अब बच्चन भी क्या आयेगा भला?"

नसीबनने सिर्फ़ हुँकारी भरी।

साईंने फिर कहा, "सब तो चले गये नसीबन। आदमी और आदमजात! नयी सड़क क्या बनी, यह सड़क ही वीरान हो गयी। बस्ती उजड़ना थी, उजड़ गयी''''अब तो मन बहुत भटकता है, तू तो नहीं चली जायेगी कहीं''''यह धरती भी''''"

नसीबनने बात काट दी, "साईं, धूल उड़ जाती है''' मिट्टी उठ सकती है, धरती नहीं जाती कहीं, धूल-मिट्टीका क्या?" और नसीबन बात खत्म करते-करते हँस दी। साईं

जुम्मन साईंकी कोठरी बस्तीका केन्द्र है। हरदम अगर और लोबान जलता रहता, दो-चार आदमी बैठे रहते। मस्जिदके कुएँकी रौनक़! गफ़ूरकी मशक कुएँपर भरती और टाटके परदोंके पीछे रहनेवाली बेगमों और परदानशीन बीवियोंकी इजाज़तसे कच्चे घरोंमें खाली होती। मस्जिदके दालानमें मकतब लगता, मन्दिरके अहातेमें पाठशाला जमती। मकतबमें बच्चे नरकुलकी तरह हिल-हिलकर कुरानपाककी आयतें रटते और पाठशालामें मच्छरोंकी तरह खड़े होकर प्रार्थना करते और पहाड़ा दुहराते। मौलवी और पण्डित लगभग एक-दूसरेकी ओर पीठ फेरकर बैठते, मस्जिदकी जालीदार दीवार और मन्दिरके ढहे हुए अहातेमें जमनेवाले पाठकोंकी आँखें चार होतीं, मुँह बिराये जाते, पण्डित और मौलवीकी नक़लें उतारी जातीं, इमली दि[illegible]ाकर ललचाया जाता।

छुट्टी होनेपर [illegible]ा, पटरियों और बस्तोंसे बेपनाह मारपीट होती। बुदबुद फूटते, ख[illegible] नाक-मुँह रंग जाता। या फिर तख़्ती-बस्ते वग़ैरह सब एक जगह इ[illegible] दिये जाते, एक-दो पहरेदार उनपर तैनात रहते, बाक़ी सब गोल बनाकर पजावेके पीछेवाली बेरियोंपर धावा बोल देते। दूसरे रोज़ रखवालेकी शिकायतपर इधर हमीद मुर्ग़ा बना नज़र आता, उधर किसनूकी पीठपर धमाधम घूँसे बजते होते।

जुम्मन साईं लम्बा चोगा पहने, वीतराग-सा गलीसे होता हुआ शहरकी ओर चला जाता। महमूदाका अब्बा बैठा मूर्ति बनाता रहता, नाज़िरका दादा पैरमें छुरी दाबे खालकी डोरी काटता।

अपने कटोरेमें पैसे खनकाता और तूँबी लिये साईं लौटता तो जैसे शहर-भरका दर्द बटोर लाता। जुम्मन मूँगा और कौड़ियोंकी माला और उँगलियोंमें चाँदीके छल्ले पहने, सुर्मा लगी गँदली आँखोंको मिचमिचाकर दर्दसे कहता, "ग़रीबके लिए क्या कुछ होना है····उसे तो सिर्फ़ बर्बाद होना है····नस्ल बिगड़ती जाती है, छोंड़े आवारा हो गये हैं। रास्ता चलते ढेला मारते हैं। कुत्तोंको लगा देते हैं····" और फिर बस्तीके लड़को-

की तरफ़ देखकर कहता, "जेबें कतरोगे तुम लोग, राहज़नी करोगे कम्बख़्तो !"

नसीबन यह सुनती तो झुंझला उठती। क्या सचमुच ये सब बिगड़ जायेंगे ? अपने बच्चोंकी तरफ़ निगाह डालती है। कोई कुछ करता पकड़ा गया और समझमें न आया तो बच्चोंपर ही बरस पड़ती है। बन्ने भेंड़ा है इसलिए बच जाता है। औरोंपर गुस्सा निकालनेका एक ही तरीका होता है—"मुओ आँखमें आँख मिलाये जाता है। सलाख झोंक दूँगी, डेला निकल पड़ेगा···बोल फिर चुरायेगा····" और साथ ही मार-पीट और गालियाँ। ख़ुदावन्द तालासे माँग कि बद बनानेसे बेहतर हो इन्हे उठा ले।

यह शोरगुल सुनकर जुम्मन साईं बहुत उदार हो जाता है। अपनी दाढ़ी सहलाते हुए नसीबनको झोंपड़ीके नज़दीक पहुँचकर बड़बड़ाता है, "बाहेको मारती है नसीबन, तेरा नसीब तो ये ही हैं।"

"मैं तो पनाह माँगती हूँ ऐसी औलादसे, पिल्लोंकी तरह जिये जा रहे हैं, एकाधको मौत आती तो सकून आता।"

साईं भी झल्ला उठता, "तो मिन्नियाँ बोल दे औलिया बाबासे डाइन, ठंडक पड़े कलेजेमें, अपनी औलाद भारी पड़ गयी।"

जब तीन जहानको समझनेवाला साईं भी उसके भीतर छुपी माँ-को नहीं समझ पाता और डाइन कहकर चीख़ उठता तो नसीबन फूट-फूटकर रो पड़ती।

जुम्मन साईंकी कोठरीके पास आध्यात्मिक शान्तिके लिए स्टेशनके कुली और इक्केवाले भी जुटते। बीड़ियाँ फुँकतीं, चिलम सुलगती और सब शान्त से बैठे रहते जैसे मातम मनाने आये हों। गाड़ी आनेके समय उठकर चल देते। सवारियाँ कम उतरतीं थीं और उनसे आस लगाने-वाले, आठ-दस कुली और पन्द्रह-बीस इक्केवाले। इधर-उधरकी गपशप होती रहती, जिसके बीच-बीचमें साईंकी सुनी हुई बातोंका पुट रहता। ऐसे

जुमले होते जो सबको नज़रोंमें उसके दर्जे, पहुँच और रूहानी इल्मका सिक्का जमा देते।

गरीबोंके मारे इन मेहनतकशोंकी महफिलमें बैठकर जुम्मन साईं कहता, "अल्लाह दुनियामें आदमीको अकेला भेजता है, अकेला ही वापस बुला लेता है। यह दुनियादारी तो खुद हमने-तुमने पैदा की है। मर्द-औरतके रिश्ते, औलाद, क्या रखा है इनमें? औलाद आदमीको खा जाती है। किसके लिए ये जी-तोड़ मेहनत कर रहे हो? रातोंकी नींद और दिनका चैन हराम है, क्या यही ज़िन्दगी है? सिर्फ गफ़लत है···कोल्हूके बैलकी तरह चल रहे हो, चलते रहोगे। बीवी-बच्चेका कोल्हू और बैलकी तरह जुता हुआ बाप। बाप बननेका हौसला करते हो! बाप बन लो या खुद ज़िन्दा रह लो····"

सभीपर इन बातोंका असर होता है। उनकी बुद्धिहीन गरीबी अपना जवाब पा लेती। अँधेरेमें भटकतेको जैसे कोई अन्धा तीसरा रास्ता पकड़ा दे। पर बच्चन जब यह बात नहीं सह पाता तो कहता, "दर्दके डरसे कोई नाक-कान छिदवाना नहीं छोड़ देता साईंजी, बच्चे किसे भारू होते हैं।" कहते-कहते बच्चनके सामने अपने दोनों मातृहीन लड़के घूम जाते और उसका दिल भर आता।

जुम्मन साईं एक अर्थपूर्ण हँसी हँस देता, अपनी बात गिरते देख कहता, "तुम्हीं देख लो अपने रघुआ और बबुआको, हैं किसी करमके।"

"उनकी तो देखभाल नहीं हो पाती, महतारी होती तो भला···"

"तो नसीबनको देख लो···वह तो अपने बच्चोंकी माँ है, क्या हालत है।"

"उन बच्चोंके सिरसे तो बाप उठ गया, फ़क़ीरे मियाँ ज़िन्दा होते तो क्या यही हाल होता?"

"ये खूब कही, चित्त भी अपनी, पट भी अपनी। नसीबनसे पूछे तो

पता चले, कैसे-कैसे कोसती है।"

"नसीबनसे पूछना क्या साईंजी, हमसे कुछ छिपा है। चार पैसेकी आमदनी होती तो शहज़ादोंकी तरह रखती अपने बेटोंको।"

"झोपड़ी मयस्सर नहीं, ख्वाब महलोंके, शहज़ादोंकी तरह रखती।"

"फ़क़ीरे मियाँ होते····"

"अरे तुम तो हो, फिर तुम्हारा पुराना उठना-बैठना है उसके साथ। ईद-बक़रीद-भर पतीली सिमइयाँ भी तो, क्या कोई ब्याहता ख़याल रखेगी!" साईं कहता।

"पले-पलाये मिल रहे हैं···" कोई बीचसे बोल उठा।

"चाहूँ तो उन्हें भी पालना मुश्किल नहीं।" तैशमें बच्चन कहता।

"तो रोकता कौन है, डाल लो नसीबनको घरमें।" साईं व्यंग्यसे कहता।

"एक कम बारहकी पलटन···" कोई स्वर।

और इस तरह जब बच्चनको बातका रंग बदल दिया जाता, जब साईं भी फबती कसता और उसके भीतर छिपे आदमीको नहीं पहचान पाता तो उसका दिल होता कि साईंका गला घोंट दे।

जुम्मन साईंकी कोठरीके पास लड़कोंका अखाड़ा भी आ उतरता। कोई उसकी मालाके लिए पूछता, कोई छल्ला माँग बैठता। रम्मू, रघुआ, बबुआ, गंगो, सलोनेके साथ-साथ बन्ने, महमूदा, नाज़िर और न जाने कितने ही होते। आपसमें मार-पीट होती तो साईं चीख़ता, "अरे कम्ब-ख़्तो, हाथ-पैर टूट जायेंगे।"

बच्चे ये सुनते तो गरमी और बढ़ जाती, दौड़-धूप तेज़ हो जाती। पिटा हुआ बदला लेनेकी धमकी देता हुआ चल देता। पीटनेवाला शेरकी तरह दहलाता हुआ चला जाता। मार-पीट अकसर रघुआ और बन्नेमें होती, क्योंकि बच्चनका लड़का रघुआ उसे भेंड़ा कहकर चिढ़ाता, उसे एक गुन ज़्यादा बताता, बात बढ़ जाती।

बच्चन, दो-तीन लोग इन्साफ देखनेको नोमतसे बैठे थे।

साईने आँखें खोलीं तो भरी हुई नसीबन हिकारतसे बच्चनको देखती हुई चीखी, "बोले मेरे मुँहपर कह, कौन-सा खजाना चुरा लायी हूँ तेरा, जो पीठ पीछे कानाफूसी करता है। हिम्मत हो तो सामने कह, लगा इल्जाम।"

"मैं किसीका नाम नहीं लेता, पर कुछ चाँदीकी चीजें जरूर चोरी गयी हैं।" बच्चनने हिम्मतसे कहा।

"तो मैं लायी हूँ?" नसीबन बिफरी।

"तो और कौन उठा ले जायेगा!" गनेशी बच्चनकी बात कमजोर पड़ती देख खुद बोल उठा, "ऐसी तो बड़ी दर्दखोर थी रघुआके लिए तेरे दिलमें कि चार दिन पड़ी रह गयी, तू न होती तो क्या रघुआ ठीक नहीं होता? बच्चेवाली बात, बच्चन मुँह खोलके मना नहीं कर पाया, बस घुस पड़ी गृहस्थी सँभालने।"

"रघुआकी हड्डी न उतरती तो मैं झाँकने न आती इस मुएके घर। या अल्लाह, इल्जाम लगानेवालेकी जुबानमें कीड़े पड़ें।" कहते-कहते नसीबन दैआँसी हो आयी थी और उसे लगा कि नाहक वह क्यों रघुआकी खातिर अपने आप दौड़ पड़ी थी। न उसकी टाँग उतरना और न वह अपनेको विवश पाती। आती तो घण्टे-आध घण्टे देखभाल करके लौट जाती पर रघुआ तो रातमें बुरी तरह चौंकता था। उसीके लिए चार रात रुक गयी। नाहक लिहाज करके वह दो रुपयेका मांस भी उसको खाने खिला दिया, ऊपरसे यह तोहमत। गलती तो मेरी है, मैं न आती तो भी रघुआ ठीक हो जाता, बिना मांस खाये भी सब ठीक हो जाता है।

और बच्चन अपने मनमें खिसिया रहा था। नसीबनको लेकर [illegible] [illegible] [illegible] बच्चेके लिए क्या यही एक रास्ता था? खुद नसीबनको मना कर सकता था कि बेकारकी कमाई करती है, तुम न [illegible] लगा। न रघुआकी टाँग उतरती न वह आती। आखिर क्या हुआ

समझ लिया। बच्चन पछता रहा था कि गनेसीके मजाक़ करनेपर उसने बचावका यही तरीक़ा क्यों ढूँढा। और तरीके भी हो सकते थे। बड़ी ग़लती हो गयी।

साईं सबको देख रहा था। धीरजसे बोला, "बच्चनके गहने चोरी गये हैं। इसके यहाँ तेरे सिवा कोई आया-गया नहीं। इसका शक करना बेजा नहीं।" सुनकर बैठे लोगोंकी गरदनें स्वीकृतिमें हिल गयीं।

"और जरा ज़ोम तो देखो साईं बाबा, सीनाज़ोरी यह कि खुद जाकर, बच्चनको इन्साफ़के लिए पकड़ लायी। उस बेचारेने तो दबती ज़बान मुझसे कह-भर दिया और सब्र करके बैठ रहा था कि चलो हुआ सो हुआ, लड़केकी सेवा की है। पर सच्ची बात सहना आदमीके लिए दूभर होता है। कल मैंने इससे कह दिया तो मेरे गले पड़ गयी...." गनेसी कह रहा था।

कि नसीबन बीचमें ही बात काटती चीखी, "क्यों न पकड़ लाती, बेईमानी की होती तो दबती। अब साईं इन्साफ करें, बच्चन खुद ज़बान खोलके, मुझसे आँख मिलाके कहे कि मैंने चुराये हैं, ईमानसे कह दे तो जो सजा काले चोरकी सो मेरी।"

"साबित तो तेरे लच्छनोंसे हो रहा है। पानी मिला दूध एक आँच-से उफन जाता है।" गनेसी बोला तो बच्चनका जी हुआ कि उसे रोक दे, पर किस मुँहसे? अपनी ज़बान तो गनेसीको इत्मीनान दिलानेमें काट बैठा है।

"बोल बच्चन! जो औरोंसे कहता है वह साईंके सामने कह।" नसीबन बोली।

"बच्चन क्या कहेगा, तू क़सम खाके कह दे कि तूने नहीं लिये हैं।" गनेसी ही बोल रहा था।

साईंने इस बातपर सिर हिलाया। देखकर नसीबन बिफर उठी, "मैं काहेको क़सम खाऊँ? इसका ईमान इसके साथ है। चाहे खाल खिंच

य पर इसका चुकता करके मरूंगा। अब साईं इन्साफ़की बात नहीं कह
कता तो कौन कहेगा...."

सुनकर साईं बोला, "तुझे क़सम खानेमें कौन-सी मुश्किल है, कर
हीं तो डर नहीं...." और वह मूँगेकी माला फेरने लगा।

और कोई चारा न देखकर वह उठी, चोखकर बोली, "तुम सब चाहे
कुछ समझो। जो तबीयत आये कहो। मैंने भी न दिखा दिया तो
ोलकी नहीं।" और वह अपनी ओढ़नीमें मुँह दबाकर चली गयी।

सब देखते रह गये। साईंने अपना इल्म झूठा पड़ते देखा तो चुटकीमें
उठाकर कुछ बुदबुदाया और फूँक मारते हुए बोला, "या तो सात
नमें क़बूल कर लेगी नहीं तो खुदाके कुफ़्से यह धरती उसका यहाँ रहना
र कर देगी।"

जाते हुए नसीबनने सुना तो रुककर बोली, "धरती क्या दूभर करेगी,
र तो आदमी करता है। धरती नाता तोड़ती होती तो सब जलील
ीं होते। अच्छे-बुरे सब जीते हैं इसीपर।"

नसीबनने एक बार पलटकर सबकी ओर फिर देखा। किसीकी आँखों-
इन्साफ नहीं था। साईंकी आँखें मुँदी थीं। तब उसका जी चाहा कि
ंकी आँखोंको आज ज़बरदस्ती खोल दे और उसे दिखाये कि क़समसे
इनसानका ईमान होता है। वह ईमानको क्यों नहीं देख पाता?

साईंकी कोठरी पनाहगाह भी है, शिकारगाह भी। आस-पास जब
वारदात हो जाती है तो भागे हुए आदमी साईंके पास छिपनेके लिए
हैं, और पुलिसवाले उनकी खबर लेने भी आते हैं। साईंसे गुनह-
भी खुश हैं, सरकारी अहलकार भी नाराज़ नहीं।

डाक-बँगलेमें चोरी हो गयी, कोई बड़ा सरकारी अफ़सर ठहरा था।
-असबाबके साथ ज़रूरी सरकारी काग़ज़ात भी चले गये। स्टेशनसे
बँगले तक लाल पगड़ी भर गयी। आस-पास भी इक्के-दुक्के छिपाये

हुए थे। इर्द-गिर्द रहनेवाले मजदूरपेशा पाँच-सात आदमियोंको फौरन हिरासतमें ले लिया गया।

नसीबन हैरान थी। पूरी शामके अँधेरेमें साईंकी कोठरीपर बच्चनने दस्तक दी। कई बार खटखटाया। नसीबन हाल-चाल लेनेके लिए उझकी। तबतक किवाड़ा खुला और बच्चन साईंकी कोठरीके भीतर था। हाल जाननेके लिए नसीबन दीवारकी आड़से लगी खड़ी थी।

"मुझे ये पुलिसवाले नाहक़ परेशान कर रहे हैं। पकड़ लिया तो दुर्गत कर डालेंगे···" बच्चन कह रहा था। साईं खामोश था।

"घर घेरे बैठे हैं, आते-जातेको परखते हैं। रघुआ-बबुआ वहीं पड़े हैं अकेले····"

"तुम लोगोंका बड़ा क़सूर है, पर उन्हें कौन समझाये, तुम्हारे बारे-में दीवानजी पूछ-ताछ कर रहे थे। मैंने कह दिया, और को नहीं जानता, बच्चन इन फेलोंमें नहीं है।" साईं बोला था।

"मैं तो कुछ दे-दिवाके भी पिण्ड छुड़ाऊँ, पर कमसे उनका पेट नहीं भरता, तीस-चालीस कहाँसे लाऊँ। सब आँख चुरा रहे हैं।" बच्चन बोला। साईं अब भी चुप था जैसे सब कुछ गुन रहा हो।

"घर पहुँचना मुश्किल है, तुम दोनों बच्चोंकी रात-भर निगरानी कर दो, सुबह उनका कहीं और इन्तज़ाम करवा दूँगा। दोनों यहीं कोठरीमें पड़ रहेंगे, यहाँ आ जायें तो मैं बेफिकर हो जाऊँ।" बच्चन आजिज़ीसे बोला।

साईंकी खामोशी असमंजससे भरी थी।

नसीबन वापस अपने टट्टरमें चली गयी। पता नहीं बच्चन कब और किधर चला गया। लेकिन नसीबनको नींद नहीं आयी। रात गये साईंको बच्चनके ठिकानेकी ओर जाते और आधे रास्तेसे वापस आते उसने देखा। फिर साईं एक बार भी नहीं निकला। कोठरीका न बुझने-वाला दिया भी बुझ गया।

ा रघुआ अपनी तक़दीर पूरा कर रहा है और बबुआ बकरीके बच्चेमें
ड़ा रहा था।

साईं आपनेमें सिकुड़कर रह गया। नसीबनकी हिम्मत तो देखो!
ते हुए भी कुछ पूछने न जा सका। अपनी कोठरीको आड़से देखता
। थोड़ी देर बाद नसीबन मुरगेकी मुर्गियोंकी तरह हाँककर ले गयी।
ा और बबुआको पाठशालेमें छोड़ आयी और अपने बच्चोंको मकतब
पहुँचाकर तृप्त-सी लौट आयी।

दूसरे रोज़ बच्चनका भेजा हुआ आदमी बच्चोंको लेने आ गया।
न ज़िला पार किसी गाँवमें पहुँच गया था। बच्चोंको वहीं बुलाया
आदमी साईंके पास आया था। शाम होते वह दोनोंको ले जानेवाला
नसीबन दोनोंको साईंकी कोठरीमें पहुँचाने आयी तो साईं आदमीसे
के बारेमें पूछ रहा था। चलते-चलते नसीबनने कहा, "बच्चनसे
' वापस चला आये। अपने घर मुसीबत पड़ती है तो आन घरका
ाकनेसे बचत नहीं होती। चार दिनमें सब ठीक हो जायेगा।"
: वह चली गयी। पर थोड़ी देर बाद वापस आ गयी।
लने वक़्त आदमीके हाथमें एक छोटी-सी पोटली थमाते हुए बोली,
लिये जाओ।"

'अरे चबेनाकी कौन-सी ज़रूरत है, उजरिया फैलते घरके ओसारेमें
' वह आदमी बोला।

लिये जाओ, बच्चनको दे देना," निरपेक्ष भावसे नसीबन बोली थी।
ाईं इन लोगोंको छोड़ने बम्बे तक गया। वैसे न जाता पर वह
उसे खटक रही थी। शायद बच्चनके ज़ेवर हों। पर कैसे देखे?
बम्बेकी पुलियासे जब पगडण्डी मुड़ी तो साईंने खुद कहकर पोटली
ी। थोड़े-से सत्तू थे और उनके बीच एक टुकड़ेमें बँधे, काई लगे
बीस-पचीस रुपये और दो-चार मलगुजे-से पुराने नोट।

शमा निर्मलिया

साईं चुपचाप वापस चला आया। नसीबन बाहर हो खड़ी थी। आते ही बोला, "नसीबन तेरा दिमाग़ तो नहीं चल गया।"

नसीबन चुप थी। साईं फिर बोला, "मैं भी लड़कोंको ला सकता था, रख सकता था, पर कुछ दीन-ईमान भी होता है। आखिर हिन्दू हिन्दू है। खैर ले आयी लड़कोंको, ग़नीमत हुई कि कोई बवाल नहीं उठा। पर तूने उस पोटलोमें····"

"उसके काम आ जायेंगे। मजबूरीमें गया है, नहीं वह भला जाता यहाँसे।" नसीबनने बात काटकर कहा था।

"कोई अपना बिरादर होता तो एक बात भी थी····तू पगला गयी है····" कहते-कहते साईं जैसे अपनेको ढकनेकी कोशिश कर रहा था।

"मैं तो कहींकी नहीं रही साईं, न अल्लाहकी, न अल्लाहवालोंकी। तू कमसे कम खुदाका तो हो लिया।" नसीबन कहकर मुसकरा पड़ी। साईं देखकर झल्ला उठा, पर बोला नहीं।

नसीबनने फ़रेब सूँघ लिया था। उसके जीमें आया कि साईंसे कहे—तू दीनवाला है, झूठमें बुज़दिल होकर इनसान मजहबकी तरफ़ भागता है, तू बुज़दिल तो है ही, लँगड़ा भी है। तू अपने रास्तेपर भाग भी नहीं पाता। लेकिन तभी न जाने क्यों उसे साईंपर रहम आता है। चाहती है कि उसे ताक़त दे दे, ताकि वह अपने गलत-सही रास्तेपर चला तो जाये। पर नासमझका चलना चलना नहीं होता। यह नासमझ साईं आखिर क्यों कुछ नहीं समझ पाता? सोचते-सोचते वह क्षुब्ध हो उठती है। तबसे आठ साल गुज़र गये पर बच्चन नहीं लौटा। उसीसे साईं रट लगाये रहता है, "सब वीरान हो गया, सब उजड़ गया····तू तो नहीं चली जायेगी कहीं।" और वह नासमझ साईंकी बात या तो काट देती है या मुसकराकर रह जाती है। ये साईं क्यों कुछ नहीं समझ पाता?····

साईं बाबाकी कोठरी यही है?" सहसा एक स्वर नसीबनके कानोंमें पड़ा।

नसीबनका ध्यान भंग हो गया। नसीबनने देखा वे सात-आठ छायाएँ उसके सामने थीं। वे नौजवान आदमी थे, आकर खड़े हो गये तो साईंका ध्यान भी टूटा।

और नसीबन जैसे आवाजसे पहचान गयी, एकदम बोली, "अरे रघुआ, कित्ता बड़ा हो गया है।" वह एक क्षण देखती रह गयी। और पहचान हो गयी, सातों मजदूर पैर फैला-फैलाकर बैठ गये। रघुआ बोला, "अरमनवालोंको मजदूरोंकी जरूरत थी, हम सब वही काम करने आये हैं। बसनेरा ठिकाना ..."

"मेरे साथ आओ, आओ तो," कहती हुई नसीबन उन लोगोंको उठाकर ले गयी और बड़े भरे दिलसे बताने लगी, "देख महमुदा! यह तेरी कोठरी है, इसीमें तेरा अब्बा गूप बनाया करता था और तू नंग-धड़ंग घूमता था। और यह घर नाजिर तुलसी ही आबाद था, सात भाइयोंमें तू ही अकेला बचा था। कितनी मन्नतें मानती थी तेरी बुढ़िया माँ। बुढ़ापेकी औलाद था न।" यह सुनकर सब हँस पड़े। नसीबन अपनी आँखोंके आँसू पोंछकर फिर बोली, "ये तो खण्डहर हो गये..."

"बसना है तो बसते कितनी देर लगती है!" नाजिरने कहा।

"रात पेड़के नीचे काट लो बेटा...बोरे मैं लाये देती हूँ।" नसीबनने कहा और बोरे लेने चली गयी। और नसीबनके जवान बेटे अपने घरोंके आस-पास खड़े रहे बोरोंके इन्तजारमें।

बड़ी आँधी आयी रात, धूल उड़ती रही और सुबह तकके लिए रात वहीं पेड़के नीचे कट गयी।

•

सुबहका सपना

बात असलमें यों हुई। उन दिनों शहरमें प्रदर्शनी चल रही थी। जानेकी कभी तबीयत न हुई। आखिर एक दिन मेरे मित्र मुझे घरसे पकड़ ले गये। शायद आखिरी दिन था उसका। चला गया, पर ऐसे जमघटोंमें अब मन नहीं जमता। वे ही चिर पहचाने चेहरे''''वही मस्ती और दिखावटी लापरवाही, जो नुमायशमें घूमते वक़्त लोगोंपर आ जाती है। उसे खूब देख चुका हूँ; देखते-देखते अभ्यस्त हो गया हूँ। सब कुछ साधारण हो गया है। इस नुमायशी ज़िन्दगीमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं दीखता, सो जाकर सीधा एक पुस्तक-भण्डारपर खड़ा हो गया। मित्र कुछ अँगरेज़ीकी पुस्तकें उलटने-पलटने लगे। मैंने सामने रखी एक पत्रिका उठा ली, उसे खोलने ही जा रहा था कि मित्रने फुसफुसाकर कहा, "वाह-वाह क्या चीज़ है!"

मैंने उनकी पसन्दभरी आँखोंको ओर देखा, तो जैसे पानीको दिशा मिल जाती है, वैसे ही मेरी दृष्टि अनायास उधर घूम गयी, जिधर वे देख रहे थे। वह एक कलेण्डर था, जिसमें दो स्वस्थ बच्चे, रुई-सा सफ़ेद कबूतर पकड़े थे। मन बारगे आप खिल उठा। उन बच्चोंको सारी मासूमियत और कोमलता जैसे हृदयमें उतर गयी। लगता था अभी यह लड़का अपने दोनों हाथोंको झटका देकर कबूतरको आकाशकी ओर

छोड़ देगा। फिर दोनों—लड़का और लड़की—खिलखिला
उठेंगे। और तब इनकी आँखें और भी छोटी हो जायँगी।
सारी दौड़ जायगी।

"यो लव पोम," मित्र बड़बड़ाया। ध्यान भंग हो गया। व
नीचे दृष्टि रुकी। उन अक्षरोंपर पड़ी जो मित्रने पढ़े थे—'हमें
प्यारी है।' मेरा मन फिर भटक गया। शान्तिकी बातें भी बहुत न
रह गयी थीं। तसवीरमें एक अजीब-सी ताजगी जरूर थी।

मैंने जो पत्रिका उठायी थी, उसे देखने लगा। ऊपर किसी
खण्ड का सुरम्य दृश्य छपा था। प्राकृतिक सौन्दर्यसे भरपूर। और पलट
गदराई फ़सलोंकी झूमती हुई बालियोंकी तसवीरें थीं। फिर कुछ
विलासकी वस्तुओंके चित्र और उनके विज्ञापन। आगे कुछ आलीश
इमारतोंके फ़ोटो और उसके बाद युद्धस्थलकी भयंकर तसवीरें! बारू
उठते हुए गुबार, चीलकी तरह उड़ते हुए हवाईजहाज, धराशायी इमार
उजड़े हुए खेत, जिनमें सैनिक संगीनें आगे किये फ़सल रौंदते बढ़े आ र
थे। वे भी अच्छे नहीं लगे। पत्रिका बन्द कर दी। अन्तिम कवरक
दृश्य फिर सामने था—युद्धका महाभयंकर दृश्य। तबीयत अकुला उठी।
सैनिकोंकी लाशोंके ढेर, कटे हुए हाथ और टाँगें! धरतीकी सतहसे पृष्ठ-
भूमिमें उठता हुआ धुँएका समुद्र। जैसे धरतीके नीचे दबे किसी सुप्त
ज्वालामुखीने मुँह खोल दिया हो, अभी धुआँ है फिर लावा बह निकलेगा
और""और इस बची हुई कुचली-त्रस्त घास और कटे-पंगु शरीरको भी
ढक लेगा!

मित्रने कहा, "चलो।"

मैं चल दिया।

नुमायशसे कुछ तो खरीदना चाहिए, इसीलिए उसने औरोंकी
देखा-देखी एक बहुत बड़ा-सा गुब्बारा खरीद कर मेरे हाथमें थमा दिया
था। मुझे हँसी आ गयी कि क्या खरीदारोंका दिखावा जरूरी था? वह

अपनी साइकिलपर बढ़कर चला गया। गुब्बारा मेरे पास ही रह गया।

टहलता हुआ घर पहुँचा तो रात काफी जा चुकी थी। विचारोंका कोई मजबूत सिलसिला नहीं था। जब कुछ समझमें नहीं आया तो उस गुब्बारेको ही सीनेपर रखकर उँगलियोंसे धीरे-धीरे बजाकर तुप''तुप'''' की आवाज पैदा करता रहा। गुब्बारेसे कुछ हलकी बदबू आ रही थी, जैसे कोई विषैली गैस।

धीरे-धीरे मैं उस तुप''तुप''''की आवाजमें डूबता गया। एक अजीब मधुर संगीत था उसमें। बस केवल संगीत रह गया—और मैंने देखा, एक टिनके खाली डिब्बेपर दो नन्हें-नन्हें हाथ थापें दे रहे थे। वह मेरे पड़ोसकी बेबी थी। अपनी गुदारी हथेलियोंसे उस डिब्बेको बजा रही थी। अनोखा समाँ बाँध रखा था उसने। बड़ी मौजमें बजाये जा रही थी, तभी रानी आकर उससे बोली, "बुलउआ तो दे आयी।"

अपनी ढोलक बजाना छोड़ बेबी बोली, "तब तो मेहमान आते होंगे, मेरी गुड़िया नहायी भी नहीं।"

रानी बोली, "नहीं, पहले घरकी सफाई कर लो।"

बेबीने परेशानी दिखाते हुए कहा, "तुम्हें क्या, तुम लड़केवाली बनकर बैठ गयीं, हमें हज़ार काम हैं, लड़कीका ब्याह है, घरकी सफ़ाई-दावत''''सभी तो अकेले करना है।" और इतना कहकर चप्पल वाले दफ़्तीके डिब्बेसे गुड़ियाकी साड़ी निकालने लगी। एक रेशमी कतरन दिखाते हुए बोली, "ये गुड़ियाकी बनारसी साड़ी है, सितारेदार।"

"मैंने तो गुड्डेके कपड़े दिल्लीसे मँगवाये हैं।" रानीने शान दिखाते हुए कहा।

"बहुत-कुछ," बेबी डींग सुनकर बड़बड़ायी, "राधाकी अम्माकी गठरीमें-से चुराये हैं। हमने देखा था।" और बेबीने रानीकी तरफ़ मुँह बिचका दिया।

"हमने तो माँगे थे, तू चोट्टिन है, तूने राधाकी पेन्सिल चुरायी थी''''

चोट्टिन''''चोट्टिन।" रानीने बेबीकी पोल खोलते हुए ताली बजाकर कहा।

बेबीने तैशमें आकर रानीके कपड़ोंका डिब्बा फेंक दिया, सल्लाकर बोली, "हम नहीं खेलते, तू चोर''' गुड्डा चोर''' गुड्डेके घरवाले चोर।"

रानीने कपड़े बटोरते हुए समझदारीसे कहा, "ऐसे हम नहीं खेलते।"

''''फिर न जाने क्या, जैसे जलमें पड़ती परछाइयाँ हिलकर मिट गयी हों। कुछ हलचल। अजीब-सा शोर, जिसमें वे स्वर डूब गये थे, दृश्य धुँधले पड़ने लगे। कुहरा-सा छाने लगा। उस कुहरेके बीचसे सिर्फ रानीका मुख दिखाई दिया। वह कह रही थी, "बेबी खेलो न।"

"सच्ची सच्ची बोलो तो खेलूँगी''' हूँ'''।"—बेबीने उठाया हुआ सामान जमीनपर रखते हुए कहा।

"अच्छा भाई सच्ची सच्ची, गुड्डेके कपड़े दिल्लीसे नहीं, यहींसे खरीदे थे, बस!" रानीने समझौता कर लिया।

दोनों दफ्तीके बनाये घरोंके पास बैठ गयीं। एक दूसरेके सहारे खड़े थे दोनोंके घर। बस, दोनोंकी सीमाएँ नीमकी सींकें रखकर अलग कर दी गयी थीं। रानीके घरकी चौखटसे लगा गुड्डा खड़ा था, पर बेबीकी गुड़िया शरमके मारे घरके भीतर बैठी थी। दियासलाईका बना तराजू एक ओर रखा था और पालकी मकानके पीछे पड़ी थी। रानीके घरके सामने टीनकी मोटर बारातके लिए तैयार थी।

"बहू ज़रा खाना देख लेंठीं।" बेबी खुद बोली और स्वयं ही जवाब भी दे दिया, "अच्छा भाई आयी, फुरसत मिले तब तो, एक काम हो।" फिर रानीके घर सब तैयारी देखकर बोली "रानी, धीरे-धीरे करो भाई, तुम तो जल्दी मचाये हो।"

"अरे अभी बारात चल थोड़े ही रही है।"—रानीने कहा।

"हमने नहाया तक नहीं, चलो नहा लें।" बेबीने कहा और धोती

ठिसक कर बैठ गयी।

दोनों नहाने लगी। सिरपर हाथ ले जा कर गुदगुदी-सी बाँह मुड़ी और कलाई मुड़ते ही मुट्ठीसे पानी गिर गया""सू""सू की आवाज""और दोनों हाथ-पैर रगड़ने लगीं। नहाना खत्म हुआ तो कपड़े बदले। पैर तक दोनों हाथ गये, फिर कमरपर आकर हवामें गाँठ लगायी। कन्धेपर इधर-उधर हाथ चलाकर दुपट्टा डाला और दोनों तैयार हो गयीं। अब रानीका गुड्डा भी तैयार था। बेबीकी गुड़िया भी तैयार थी। पर बेबी खाना बनानेमें लगी थी। मिट्टीकी पूरी, कचौरी, लड्डू और बरफी।

रानीके घर बैण्ड बज उठा। रानी मुँहमें कागजकी तुरही लगाये आवाज करती जा रही थी। बीच-बीचमें झूमती हुई बोलती, "कुदम-कुदु मकी झइयम झइयम"" और बेबी भी अपने घर बैठी मुसकरा-मुसकरा कर दूल्हेके घरके बाजोंकी आवाजपर मटकती जा रही थी।

""पर बाजोंकी आवाज एकदम तेज हो गयी""गड़गड़ाहटमें बदल गयी""घोर गर्जन। विषैली-सी महक उड़ने लगी और धुएँके गहरे बादल चारों तरफ़ उभरने लगे। हवाई जहाज़ोंकी गन्नाहट और भगदड़का मिला-जुला शोर। दूर खड़ी फ़सलोंको रौंदकर बढ़ते हुए खूंखार सिपाहियोंके दस्ते""वरदी धारी""भारी बूट और बन्दूक़ोंमें लगी संगीनें। क्षण-भरमें ही वे सारे सिपाही अपनी लाल-लाल आँखें चमकाते, नथुने फड़काते एका-कार हो गये। वह सिर्फ़ एक सैनिक था। दैत्यकी तरह! जमीनपर टैंकों-की तरह बड़े-बड़े पैर गड़ाये आसमान तककी ऊँचाईमें खड़ा था। उसकी आँखोंमें ज्वालामुखी थे, नथुनोंसे विषैले धुएँके गुब्बार निकल रहे थे। फिर वह चला और आगे बढ़ते-बढ़ते उसका आकार छोटा होता गया, वह साधा-सा आदमी रह गया। अरे, यह तो जैकब साहबका लड़का था। वह कमर-पर हाथ रखे बहुत तेज नजरोंसे इधर-उधर पेड़की शाखोंको देख रहा था। जिधर किसी पत्तोके उड़नेकी सरसराहट सुनाई पड़ती, उधर ही उसकी

"हाँ हाँ, मार दो, जल्दी से," बेबीने खड़े होते हुए फुरतीसे कहा, "बहुत जल्दी, जल्दी।" और रानीने अपनी बाँह पीछे करके एक ढेला कबूतरकी तरफ़ फेंका। जैकब साहबका लड़का निशाना लगा रहा था। वह कंकड़ रोशनदानकी लकड़ीपर झटसे लगा। कबूतरने गरदन घुमायी और हलकी सरसराहटके साथ उड़ चला।

रानी और बेबी कूदती हुई तालियाँ बजा-बजाकर शोर मचा रही थीं, "कितना अच्छा हुआ.. .हो....हो।" उनकी तालियोंमें अजीब-सा संगीत था। उनके थिरकते पैरोंमें अनोखी लय थी।

इधर जैकब साहबका लड़का आग्नेय नेत्रोंसे इनको ताक रहा था। गुस्सेसे उसकी आँखोंमें आग-सी दहक उठी, नथुने फूल उठे। उसने जलती आँखोंसे दोनोंको देखा। वे हँस रही थीं। शोर मचा रही थीं। तालियाँ पीटे जा रही थीं। खामोश करनेके लिए उसने अपनी रायफ़िलसे उधर ऊपरकी ओर हवाई फ़ायर कर दिया। रानी और बेबी सहमीं, दोनोंने एक दूसरेकी बाहें भींच लीं तो जैसे साहस आ गया, अपार साहस!

धड़ाकेकी गूँज हुई और सब-कुछ बदल गया। जैकबका लड़का खो गया था। एक क्षणको वही राक्षसी रूप उभरा.. .धुएँके बादल उमड़े और सब साफ़ हो गया....चारों ओरसे हँसीकी हलकी खिलखिलाहटकी आवाज़ आ रही थी।

मेरी छातीकी रफ़्तार बहुत तेज़ हो गयी थी। नाकमें विदेशी सिगरेटकी महक भर रही थी।

क्षण-भर बाद ही चौंककर मेरी आँखें खुल गयीं। देखा, वह बड़ा-सा गुब्बारा फूट गया था, उसकी खाल मेरे पंजेमें थी और उसमेंसे बदबू आ रही थी। गुब्बारा भर रह गया। सुबह बाहर निखर आयी थी।

"हाइड्रोजन बम्बपर प्रतिबन्धकी माँग! आजकी ताज़ा ख़बर!"— चीख़ता हुआ अख़बारवाला नीचे सड़कसे गुज़र रहा था!

•

मुरदोंकी दुनिया

गरमी शुरू हो गयी थी। मोटरके अड्डेके सामनेवाले कुएँपर पिआऊ बैठा दिया गया था। नरायन पण्डित चौड़े मुँहके चार-पाँच मटके धरे, ईंटोंके चबूतरेपर सागर रखे, बल्लीकी खाँच-की नाली बनाये, सागरसे पानी उड़ेलते रहते और प्यासे आ-आकर, नीचे पड़ी पटियापर घुटने मोड़कर, चुल्लूसे पानी पीते और चले जाते। सामने इमलीके भारी-भरकम पेड़-तले दो-तीन मोटरें खड़ी रहतीं, जिनमें-से एक-आधकी मरम्मत होती रहती।

एटा कुरावलीका अड्डा कहलाता है यह! कुछ पत्थर-वालोंकी दूकानें यहाँ हैं, जो दिन-भर लाल-लाल पत्थरोंपर छेनियाँ घिसते और पत्थरको चक्की, सिल या लोढ़ेकी शक्लें प्रदान करते रहते। मोटरोंके क्लीनर और ड्राइवर या तो इमलीकी छाँहमें पड़े सोते, या मोटरकी मोटी-मोटी गद्दियाँ बिछाकर, जोड़-पत्ता खेलनेमें मशगूल रहते।

मोटर छूटे काफ़ी देर हो चुकी थी; इसलिए सब कुछ शान्त-सा था। नरायन पण्डितने 'हे राम' कहते हुए जमुहाई ली, जिसमें शब्द बिगड़कर 'हराम' हो गया। जोड़-पत्ता खेलनेवाला जमघट अपनी चालोंमें डूबा हुआ था। तख्तपर उकड़ूँ बैठे, जालीदार बनियान पहने निसारके कानोंमें पण्डित-की आवाज पड़ी तो एकदम अपने बकरेको छनबिछिया

खिलाते-खिलाते रुककर बोल पड़ा, "एक फंकी और लगे महाराज ! लाओ, जरा हम भी देखें तुम्हारी ओयवाकी तमाखू। चूना-चूना है डिबिया-में कि चाट गये ?"

"तुम तो अपनी खोदो तमाखू खाओ भरमुंह, यह भला तुम्हारे मुँह लगेगी ! कहाँ इस तमाखूकी एक चुटकी और कहाँ सुरसा-सा तुम्हारा मुँह ! ऊँटके मुँहमें जीरा...."—कह कर नरायन पण्डित हथेलीपर रखी तमाखू रगड़ने लगे।

"वाह रे महाराज ! बस अंगुल-भरका करेजा है तुम्हारा; जरा-सी तमाखूमें पिस्सा दे गये !"—निसारने कहा और अपने तहमदको घुटने तक सरकाकर, बकरेको छरबिड़िया खिलानेमें उलझ गया।

तभी कंकड़की सड़कके किनारे गद्दे-जैसे नरम और बेहद गरम भुल-भुलको पार करके आते हुए ठेकेदारने पूछा, "कुरावली वाली लारी कब तक आयेगी, निसार मियाँ ?"

निसारने कड़ी नजरसे ठेकेदारको ताका और छरबिड़ियाकी फली तोड़ने लगा, जो चाँदीके दोनोंकी तरह झनझना उठीं।

"बताया नहीं तुमने, कब तक आयेगी ?" ठेकेदारने फिर पूछा।

"का पूछो न, यह मिर्ची-बिर्ची क्या झोंक देते हो ?" निसारने जवाब दिया और फिर जैसे खुदसे कहने लगा, "भला बताइए, क्या दस्तूर है !" फिर उसकी तरफ नजर घुमाकर बोला, "अब आनेवाली है घण्टे आध घण्टेमें, क्यों, कोई आनेवाला है क्या ?"

"हाँ !"—कहकर ठेकेदार दिबाऊकी ओर बढ़ गया।

निसारने अपने बकरेके पुट्ठे सहलाये और पिछली टाँगको दबाने लगा। फिर पुचकारते हुए, बड़े प्यारसे उसकी जाँघपर एक धप्पी दी। बड़ा निराला बकरा था नूर, दही मान का उसका। बोकी बाल और नन्हें-नन्हें सियाह खुर, जिनपर रख तपड़ें ओर भरी हुई काटाका बाट

चिकनी लाठी पकड़े, उसीमें खानेकी छोटी-सी गठरी लटकाये। आखिर वह भी भीड़में सट कर ही निकली।

"सावित्तरी आ गयी! ललुआ नहीं साथ आया?" ठेकेदारने अपनी लड़कीके पास जाते हुए पूछा।

निसारकी आँखें सावित्तरीपर जा टिकीं! एक मिनिट देखता रह गया। भरा हुआ शरीर, औसत औरतसे काफ़ी लम्बी और तगड़ी, उठी हुई नाक, कसकर बाँधे हुए बाल, दाँतोंकी दरारमें मिस्सीकी लकीरें, पुष्ट कलाईमें रंगीन चूड़ियाँ, भरी हुए हथेली। पास खड़े क्लीनरोंमें फुसफुसाहट हुई, आपसमें फ़बतियाँ कसी गयीं। उसके बदनको देखकर बर्फ़वालेने उसकी पसन्दकी पहचान की और चिल्लाने लगे, "सोडा-लेमन, नीबूका शरबत""ठण्डा बर्फ़!"

निसारकी नज़रोंसे प्रशंसा झाँक उठी। उसने ट्रंकबक्समें अपना बेल-बूटा कुरता निकाला और पहनकर बाँहें समेटने लगा। ठेकेदार सावित्तरीका टोकरा बगला उठाकर चलने लगा, तो निसारने टोका, "ज़रा ठण्डे हो लेते, ठेकेदार! धूपमें कबसे परेशान घूम रहे थे!!"

सावित्तरीने निसारको देखा, और ठोस क़दम रखती हुई बढ़ने लगी। निसार पीछेसे देखता रह गया—सावित्तरीकी मरदानी चाल, कंकड़की ऊँची-नीची पड़कर पड़नेवाले उसके जमे हुए क़दम, जिनसे मानो उभरे कंकड़ दब रहे हों।

धीरे-धीरे सब ख़ामोश हो गया। धूलके गड्ढेमें धँसे पहियोंको निकालती और पेट्रोलकी गन्ध छोड़ती, लदी हुई लारी स्टार्ट होकर इमली तले खड़ी हो गयी। आनेवाली लारी उस जगह लग गयी। भराई शुरू हो गयी थी। मोटरका हॉर्न और निसारकी आवाज़ एकके बाद एक गूँज उठती। वह चीख रहा था, "एटा फुराबलो! एटा फुराबलो!" उसका गला सूख गया, सिराऊके पास कीचड़में बैठे, हौदके मटियल कुल्होंका

खदेड़ता हुआ, वह पानीकी धारके सामने झुक गया।

"यह मेहरारू शायद ठेकेदारकी बिटिया थी।" पानी पिलाते हुए पण्डितने जैसे कुछ याद करते हुए कहा, "तीन बरस पहले बेवा हुई थी। हमारे गाँवसे चार कोसपर ससुराल है इसकी।"

निसारको गौरसे सुनते देख, वह कहता गया "इसीके पीछे इसके आदमीका क़तल हुआ; पर रोआ तक न छू पाया कोई, बड़ी मरदानी है!"

शामको अपने बकरेको लिये निसार अपनी कोठरीकी तरफ़ चला तो नुक्कड़पर ठेकेदारके छप्परमें बकरी देखकर रुक गया। साबित्रीका ध्यान आते ही चलने लगा, देखा साबित्री उसे खड़ा देख चुकी है, वह बकरीके लिए पीपलके पत्ते डालने उधर ही आ रही थी। सकपकाकर निसार पूछ बैठा, "यह बकरी कब खरीदी ठेकेदारने?"

साबित्रीने उसकी ओर देखा, तो न जाने कैसी मुद्रा बन गयी, चेहरेका हर हिस्सा सिकुड़ा और फैल गया। फिर जैसे उसकी बातको अहमियत न देते हुए बोली, "अभी साल-भरकी बड़ी नहीं मालूम पड़ती।" और उसने बकरीका होठ मोड़कर कच्चे दानोंकी तरह झाँकते सड़े हुए दाँत खोल दिये, और उसका मुँह निसारकी तरफ़ करते हुए बोली, "क्यों, है न?"

निसारको जैसे पैर जमानेका मौक़ा मिल गया हो, झट आगे बढ़कर निकट पहुँचते हुए उसने बकरीके दूधिया दाँतपर पारखीकी तरह आँखें गड़ा दीं। फिर तो सिलसिला चल निकला। अपने बकरेके बारेमें सब कुछ साबित्रीको सुना गया। साबित्री बोली, 'बकरा पालनेसे क्या फ़ायदा? अरे, कोई क़साई पचास-साठ दे देगा; बकरी पालो तो जिन्दगीभर सिफ़ाई आती!"

'अकेले पचकड़के घर कौन खटराग करे, इस गूदेको मैंने बेचनेके

लिए नहीं पाला है। अरे, मर्द बच्चा है, दिन-भर साथ तो रहता है।"
निसारने कहा।

काफ़ी देर बातें चलती रहीं। ठेकेदार भी आ गया था। उस रात जब निसार घर लौटा, तब सावित्तरी उसके लिए नयी न रह गयी थी। और वह सोच रहा था—'बस, एक ही औरत है, हजारोंमें एक! बात करती है तो आज़ादीसे, चलने-फिरने तकमें लापरवाह खुलापन है!

इसके बाद रोज़ ही वह अपने नम्बरकी गाड़ी भरकर और अपने कमीशनके पैसे लेकर सावित्तरीके पास आ बैठता। सिर्फ़ सावित्तरी होती। कभी-कभी कुछ लोग और आ जाते, जिनसे सावित्तरीको जान-पहचान हो चुकी थी। निसार और सावित्तरीके बारेमें कुछ लोग फुसफुसाने लगे थे। उस दिन दोपहरमें निसार छप्परका टट्टर लगाये उसके पास बैठा था। लू काफ़ी तेज़ीसे चल रही थी। गरमी बहुत थी। सावित्तरी एक हलकी-पुरानी धोती पहने पास बैठी अपनी फतोईमें बटन टाँक रही थी। निसार गहरी नज़रोंसे उसको देखता और उसकी आँखोंकी चमक बढ़ जाती। आख़िर उससे न रहा गया और उसने सावित्तरीका हाथ पकड़कर, बाँह ज़मीनपर टिका दी, और अपने हाथोंकी उँगलियोंको ऐसे फैलाकर, जैसे गला घोटनेके लिए हाथ उठे हों, सावित्तरीको बाँहके इर्द-गिर्द उँगलियाँ लपेट दीं। सामने दोनों अँगूठे सींगकी तरह निकले रह गये, तो बोला, "हूँ, मैं तो समझता था कि तुम्हारी बाँह कम-से-कम दो बालिश्त तो मोटी होगी, यह तो आधी भी नहीं निकली! बाँहपर गोश्त है कि मड़ा हुआ आटा····बिलकुल थल-थल!"

सावित्तरी जैसे गुम्राई हो, बोली, "मेरी बाँहसे तुम्हें मतलब, लोहा है तो, आटा है तो!' और फिर कुछ सोचकर हँस पड़ी और हँसती रही। निसार भौंहें टेढ़ी किये ताकता रहा।

तभी टट्टर खिसकाकर गोरख भीतर आया। मड़ुआया, सँग भी,

पर जैसे कुछ पकड़ पा गया हो, व्यंग्यसे मुसकराकर आँखें
हुए और निसारको ताकते हुए बोला, 'शायद ठोकेदार नहीं है
निसार अपने हाथ सावित्तरीकी बाँह परसे हटा चुका था,
लियाँ जैसे थरथरा गयी थीं। सावित्तरीने पैर सरकाया तो एक
गयी। निसारसे बोली, "अरे, जरा पैरको उँगली खींचना, एक
चढ़ गयी शायद।" फिर अपने-आप पैर झटकते हुए ठीक
बैठ गयी। गोरखने निसारको चिढ़ानेके स्वरमें कहा, "अरे मिय,
तुम्हारा चरकटा बच्चन अड्डेपर तुम्हें खोज रहा था क्या बात है
कल, तुम्हारे पैसेसे तो उसकी पहलवानी चल रही है, और तुम भी
वसूल कर लेते....." कहते-कहते गोरखने कनखीसे सावित्तरीको दे
और बात अधूरी छोड़ दी। फिर वह चढ़ते-उतरते रंगोंसे तब्दील हो
निसारके चेहरेको देखने लगा। सावित्तरीने सब सुना। वह बारी-बारीसे
निसार और गोरखकी तरफ़ उत्कण्ठा-भरी दृष्टिसे देख रही थी।
निसार एकदम अपना तहमद सँभालते हुए उठकर खड़ा हो गया।
उसके सीनेमें कोई चीज फूल रही थी। होंठ चबाते हुए चलने लगा तो न
रहा गया। शायद इस तरह चल देना कोई कमजोरी समझ ली जाये।
सावित्तरी तो जैसे उसके दिमागसे उतर चुकी थी; बोला, "क्या वाहियात
खयालात हैं तुम लोगोंके! बच्चन हजारमें एक मर्द है, पैसेसे बेचारा कम-
जोर पड़ता था, पहलवानीके लिए खातिर चाहिए, खातिर! है कोई
क़स्बे-भरमें उस-सा जवान पट्ठा?"
गोरखने व्यंग्यसे 'हूँ' कर दिया; सावित्तरी गम्भीर थी। निसार अपने
...कर नूरकी डोरी खोलने लगा, तो सावित्तरी बोली, "जब हफ़्ते-भरसे
...हीं रहा है तो बँधा रहने दो, कोई आजकी धूपमें ही नहीं मर जायेगा!"
वह चुपचाप नीचे उतर गया। उतारी हुई बनियाइन भी लेना भूल
...। सावित्तरीने उसकी मैली जालीदार बनियाइन एक ओर सरका दी,
...कर गोरख बोला, "सावित्तरी, कितनी शरमकी बात है, एक मुसल-

नदी-से उफनते हैं फिर नाली-से बहने लगते हैं। सुबहका वक्
पर कट जाता है। बच्चनके पुट्ठे और शेर-सी कमर, ग़फ़ूर
गठीली बाँहें और हाथी-सी गरदन, सब बेजोड़ हैं। पर अल
निकलते-निकलते बिखर जाता है। फिर क्या करूँ ? थोड़ी देर
नम्बरकी मोटर भर दी, फिर इसके बाद ? अगर सावित्तरीके
लेता हूँ, तो बुरा क्या है ? दिनभर सावित्तरीका साथ और रात
साथ ! सावित्तरी है भी बड़े खुले दिलकी औरत ! तभी इतनी अ
लोग उठते-बैठने लगे उसके पास ! सोचते-सोचते एकदम दिल न
भर आया, और तबीयत हुई कि नूरको खोल लाये, अकेला होगा

तभी शोर मच उठा। आयी हुई मोटरके टायरोंसे कंकड़ बुदबुदा
धूलका धुआँ फैल गया। आयी हुई मोटरका एक पहिया कच्ची प
धूलके मख़मली-मटमैले गद्देपर बेलबूटेदार निशान छोड़ता निकल
मोटर रुकी और उसमें-से मोटरोंके मालिक माखनलाल उतरे। सब
चारियोंने घेर लिया उन्हें। पता चला कि बहुत कोशिश करनेपर
सरकारने बात नहीं मानी। अब पहली तारीखसे सरकारी बसें
लाइनपर चलेंगी। इसलिए वे 'प्रायवेट कैरियर'का लैसन्स लेने लखन
जा रहे हैं। शायद एक-आध ड्राइवर खप जायें उनमें, बाकी लो
बेकार हो जायेंगे।

निसार सुन्न-सा रह गया। दिल और बैठ गया। भीतर कोठरीमें
जाकर सीटकी एक गद्दी बिछाकर लेट रहा, उदास-सा। सिरमें कुछ दर्द
था। सावित्तरीका ध्यान आया, तो लगा जैसे वह अकेला ही था और
अकेला ही है। सोचने लगा—गोरखकी बैठक बहुत है उसके पास। गोरख-
की बातोंमें भी ऐसा गुमान है, जैसे सावित्तरीपर उसका पूरा हक़ हो।
गोरख उसे सिर्फ़ औरत मानता है, औरतसे ज्यादा कुछ नहीं। और सावि-
त्तरी भी जरूर एक औरतकी ही तरह उसके साथ पेश आती होगी; जरूर
उसके वहशी इरादोंके सामने घुटने टेक देती होगी, आख़िर औरत है वह,

वह मर्द नहीं हो सकती। उसके बदनमें अकड़ है, पर गोरखके सामने वह भी खो जाती होगी, उसके दिलमें वही मैलापन, कमजोरी जरूर होगी! आदमी आदमी है, औरत औरत। साबित्तरी आखिर औरत है! सोचते-सोचते वह न जाने कब सो गया। आंख खुली, तब रात झुक आयी थी।

बाहर निकला, अड्डेपर सन्नाटा था। छप्परके लट्ठेमें गड़ी कीलपर एक बीमार-सी लालटेन जल रही थी, जिसके प्रकाश लट्ठेके काले-काले पपड़े अजगरके काले पपोटोंकी तरह चमक रहे थे। मोटरकी छतोंपर क्लीनरोंने बिस्तर लगा लिये थे। अड्डेके वीरानेपनमें मोहक खामोशी थी; वही खामोशी, जो सुबह होते-होते खड़खड़ाहट, हॉर्नकी आवाज और लारियोंकी ढीली टीनकी बाँडीके शोरमें दुबक जाती। दोपहरमें ताश-पत्तों, गालियों और सस्ते मजाकोंमें छुप जाती, शामको पैसोंके लिए झगड़ते और ऊँची आवाज़में हिसाब मिलाते मुन्शियोंकी इनसानियतकी तरह मुरदा रहती, और रात होते थके-मांदे मेहनतकश लोगोंकी गोदमें ले, चिन्ता-हीन-सी छा जाती।

निसार घरकी तरफ़ चल दिया, नूरको लेने; जो साबित्तरीके छप्परमें पहुँचा, अजीब-सा दृश्य सामने था। दो-तीन सिपाही तलाशी ले रहे थे, सामान उलट-पुलट कर रहे थे। ठेकेदार कमरपर हाथ रखे, सिर झुकाये पत्थेश्वर सहारा लिये खड़ा था, और साबित्तरी बड़बड़ा रही थी, कोना-कोना देख डालो, पर थोड़ेका नुकसान न होने पाये! ए हवलदार साहब! उसमें कांचकी चूड़ी है, हां...!" काफ़ी भीड़ जमा हो गयी थी। निसार सारी घटनाका कोई सिलसिला न बैठा पाया। इसलिए कुछ पूछना ठीक न समझ, वह नूरको खोलने लगा। सिपाही ठेकेदारको लेकर थानेकी तरफ़ चल दिये। निसार चुपचाप-सा नूरको लेकर घरकी तरफ़ चला गया। सोचा, सुबह अकेलेमें साबित्तरीसे पूछ लेगा।

रातको खाटके पायेसे नूरको बाँधकर लेट रहा, तो ख्याल आया कि

महीना खतम होनेमें पाँच दिन रह गये हैं। तब वह यहाँ क्या करेगा? कौन-सा काम मिल सकेगा इस छोटे-से क़स्बेमें? नूरका पेट कहाँसे पलेगा? उसने लेटे लेटे बकरेकी गरदन घुमायी और उसका मुँह अपने गालोंसे रगड़कर अपनी गरदनसे चिपका लिया। धीरे-धीरे नींद आ गयी।

सुबह एक छोटी-सी गठरी बाँधे, नूरकी रस्सी पकड़े, वह साबित्तरीके छप्परमें पहुँचा। दिन काफ़ी चढ़ आया था। साबित्तरी देखते ही पूछ बैठी, "क्यों, आज नूरको दौड़ाने नहीं ले गये? चलो अच्छा किया, चरबी चढ़ेगी, तो खासे दामोंमें बिक जायेगा!"

निसारको जैसे बात काट गयी, पर मजबूरी थी, बोला, "इसी पहली मोटरसे करीमगंज जा रहा हूँ। यहाँ तो अब धन्धा खतम हो रहा है; वहाँ मेरे एक मामू हैं। शायद कोई नया जरिया निकल आये। दो-तीन रोजमें आ जाऊँगा। नूरको तुम्हें सौंपे जा रहा हूँ।"—कहते-कहते उसने बकरेकी डोरी टट्टरसे बाँध दी।

साबित्तरीने साधारण तरीक़ेसे ताका, फिर बोली, "मोटर जानेमें देर है अभी।"

"मोटर काफ़ी तड़के छूटती है, यह लारी छूट गयी तो दिन-भर खराब हो जायेगा!"—कहते-कहते वह चलने लगा। क़दम तेज होते गये और लम्बे-लम्बे डग भरता, वह कंकड़की सड़कपर मुड़ गया। नूर गरदन उठाये मासूमियतसे उधर ताक रहा था।

निसारको करीमगंजसे वापस आनेमें दस रोजके करीब लग गये। वहाँसे वह एक नजदीकके गाँव चला गया था, कामकी तलाशमें। यह गाँव ताजिया बनानेवालोंका गढ़ था। कुछ काम मिल जानेकी उम्मीद थी यहाँ, क्योंकि दूर दूर तकके ताजिये यहाँ बनने आते थे और काम साल-भर चालू रहता।

इक्केके सफ़रने उसका जोड़-जोड़ खोल दिया था। मोटरके अड्डेपर

आकर जब इक्का रुका, तो जैसे वह भौंचक्का रह गया। पहलेसे जानते हुए भी सब-कुछ उसे बड़ा अजीब-सा लगा। दुनिया बदल गयी थी। चम-चमाती सरकारी बसें खड़ी थीं। खाकी वरदी पहने और तदउदीकी तरह हैट लगाये कुछ कमज़ोर बदनवाले लोग इधर-उधर आ-जा रहे थे। पिआऊ-वाले नुक्कड़पर एक शरणार्थीने शर्बत-लस्सीकी दूकान खोल दी थी। लट्ठोंपर सधे, टीनके शेडमें दो-तीन नीली-नीली बसें खड़ी थीं। इधर-उधर झण्डियाँ लटक रही थीं।

वह अवाक् ताकता रह गया। गहरी ठेस लगी। वह सब कहाँ गया? दिन-दिन-भर लड़ने-झगड़नेपर मिलकर बैठनेवाले चेहरे कहाँ चले गये? इमलीके नीचे मोटरकी पट्टियोंपर लगनेवाली ताशकी महफ़िल वीरान थी। दिन-दिन-भर मरम्मत होनेवाली और रह-रहकर, गुर्राकर रुक जानेवाली लारियोंकी आवाज़ खामोश थी। एक तरफ़ मेज़-कुरसी पड़ी थी। नया ही दौर था, नयी तरहकी चहल-पहल थी। बसोंको देखा, तो अच्छी लगीं; पर यह भी महसूस हुआ कि उन्होंने ही पेटपर लात मारी है। घृणा, पश्चात्ताप और वेदनामें वह केवल यही सोच पाया था—इनपर कभी पैर न रखूँगा। वह सीधा सावित्तरीके छप्परकी ओर लपका, इस आशासे कि वहाँ वह पुरानापन, वह पहचानी फ़िज़ा मिल जायेगी।

पैर रुके और नज़र उठी, देखा कोठरीमें ताला बन्द। झुँझला-सा उठा वह। बढ़कर बफ़्लवाकी दूकानपर पहुँचा, सोनू भुर्जीसे पूछा, "कुछ पता है, कहाँ है सावित्तरी?"

"सावित्तरी?" सोनू बोला, आजकल सतो-सीता और सावित्तरी हो रह गयी है सब! बड़ी चलती औरत निकली, हम लोगोंका भी मुँह काला करके गयी। आज तक इस ठिकाने अज़ीम-अज़ीमका चक्कर कभी सुना था?"

"अज़ीम? क्या हुआ, ठीक-ठीक बताओ न!"—निसारने उत्सुकतासे पूछा। "अरे भाई, हाँ अज़ीम! वह लम्बूरी अज़ीम बेचती थी। सो एक

ाठ-दस दिन पहले पुलिसको सुराग मिला, तलाशी हुई; पर अफ़ीम
र नहीं हुई। सो उस बार तो ठेकेदारको खबरदार करके छोड़ दिया।
फिर तलाशी हुई, आधपाव अफ़ीम पकड़ी गयी। गोरख लाके देता
ौर सती सावित्तरी बेचती थी। सो ठेकेदार तो हवालातमें बन्द है
रे, और जबतक पुलिस दुबारा आये, वह गोरखके साथ छू-मन्तर
यी !"

निसारने सुना, तो रही-सही ताक़त भी जाती रही। कुएँकी मनपर
फैलाकर बैठ गया। कुछ ठीक होते हुए पूछा, "अच्छा, हमारे बकरेका
पता है ? साथ ले गयी थी कि कहीं रख गयी है उसे ?"

"बकरा तो औने-पौनेमें बेच गयी, उसी जाहिद क़साईके हाथ, सो
। कसाईके सिवा कौन खरीदता जल्दबाजीमें ? रुपयेकी दरकार रही
ी !" सोनूने निर्लिप्त भावसे कह दिया, जैसे इसमें कुछ असाधारण
ं था।

निसारने सुना, सारा खून पानी हो गया; पर एकदम, एक बार ज़ोरसे
की हड्डियोंमें कड़ापन आया, खालमें खिंचाव हुआ और दाँत भिंच
ी। नाक फूली और भौहें ऊपर सरक गयी। उसने फेंटमें हाथ डाला,
हुए नोटकी गड्डी हथेलीमें आ गयी। गिनतीमें रुपये पचास थे।

बौखलाया-सा, तेज़ क़दमोंसे वह जाहिद क़साईकी दूकानपर पहुँचा।
क हटायी और भरभरा उठा, कितनेमें बेचा है उसने नूरको ?"

"पचीसमें ! लेकिन निसार भाई मैंने तब खरीदा था, जब उसने
क़ीन दिला दिया था कि तुम इसे बेचकर गये हो। अल्लाह गवाह है, जो
ारा भी झूठ हो इसमें !" क़साई निसारकी दशा देखते हुए और सारी
रिस्थिति समझकर, एक साँसमें कहता गया था।

"ज्यादा बातसे मतलब नहीं, यह लो पचास रुपये, बस ! चलो बकरा
खोलो फ़ौरन !"—झुँझलाते हुए निसारने कहा, और कड़ी नज़रोंसे एक
बार उसे ताका, जैसे ज़रा भी देर होनेपर खून ही पी लेगा। क़साई एक

क्षण हिचका। मायूसी-भरी नजर उसने निसारपर डाली। निसार बुरी तरह ऊब रहा था।

तभी क़साई बोला, "लेकिन""लेकिन उसे तो ज़िबा कर डाला आज सुबह ही, क्या बताऊँ, खुदा क़सम सामनेवाली रास है।" दबी ज़बानसे वह बोला और कहते-कहते रुक-सा गया।

निसारके बदनकी हर नस, हर नलीकी राह जैसे पिघला सीसा गुज़र गया हो। उसके हाथसे चिक छूट गयी। और उसने देखा—नूर, उसका दिन और रातका अकेला साथी, मर्द बच्चा! बेडौर, बेकश, मरियल, उघड़ी चमड़ी लिये, उलटा लटका, परदानशीन औरतकी तरह चिकके पीछेसे झाँक रहा था।

किसी तरह उसके पैर उसे अड्डे तक लाये। नसोंकी मरदानगी, बदनका ज़ोर और अकड़ सब मिट-सी गयी थी। नयी मोटर-बसोंकी आवाज़में वह जोश न था, उनके इंजन हलकी रगड़से चालू हो रहे थे। उनमें पुरानी लारियोंका जोश-खरोश और चीख-पुकार न थी। ड्राइवर और क्लीनर, सब जैसे धीरे-धीरे मरियल और बेजान आदमियोंकी तरह घिसट रहे थे। और वह सोच रहा था, क्या ज़िन्दगी कशमकश, ताज़गी और ज़िन्दा-दिलीकी दुनियासे वह मुरदोंकी दुनियामें क़दम बढ़ाने जा रहा है?

क्या वह करीमगंज जायेगा? वहाँ ताज़िये बनायेगा? वे ताज़िये, जिनके आगे-आगे मुरदोंका एक जुलूस चलता है जो छाती पीटते और मरसिये गाते, निरन्तर क़ब्रिस्तानकी ओर बढ़ते जाते हैं!

तिरस्कारसे उसका जी भर गया" इन मुरदोंकी दुनियामें वह नहीं रहेगा""उसे ज़िन्दा रहनेके लिए जोश-खरोश और भीड़-भड़क्का चाहिए।

और अपने पाँवोंसे धूल उड़ाता वह बस्तीकी ओर चला गया।

•

आत्माकी आवाज़

मैं अपना काम ख़त्म करके वापस घर आ गया था। घरमें कोई परेशान करनेवाला तो नहीं था, पर बड़ी झिझक लग रही थी। गोपाल दूरके रिश्तेसे बड़ा भाई होता है, पर मेरे लिए वह मित्रके रूपमें अधिक निकट था। आँगनमें चारपाई पड़ी थी, उसीपर बैठ गया। भाभी ख़ामोश-सी चौकेमें बैठी थीं। चूल्हे-की आग मँदा गयी थी; एक-आध सुलगते कोयलेपर घीकी कटोरी गर्म होनेके लिए रखी थी। मैं पहली बार इस घरमें आया था, सकुचित-सा बैठ गया। भाभीके पास इस तरह अकेलेमें बैठना भी अजीब लग रहा था और जाकर बैठकमें चुपचाप बैठनेपर संकोच लगता था; क्योंकि पराया घर और भाभीसे पहली मुलाक़ात—क़दम एकदम नहीं उठ पा रहे थे।

शाम काफ़ी झुक आयी थी। लालटेन जलाकर भाभी फिर वहीं चूल्हेके पास आकर बैठ गयीं। उस उमस और ख़ामोशीके वातावरणमें जी घबराने लगा। आँगनमें बँधे तारपर पड़े कपड़ोंकी सलवटोंमें अँधेरा भरता जा रहा था और जलती लालटेनका पीला-पीला बीमार-सा थकन-भरा प्रकाश! और उसके सामने पड़नेवाली वस्तुओंकी फैली हुई लम्बी-लम्बी काली छायाएँ! घुटन-सी महसूस करते हुए, बहुत झिझकते-झिझकते कई बार कोशिश करनेके बाद, एक बार आवाज़ फूट ही पड़ी, "क्या गोपाल भैया बहुत देरसे आते हैं?"

"अकसर देर हो जाती है।" वैसे ही बैठे भाभीने निर्लिप्त भावसे कह दिया।

मैं ख़ामोश हो गया, अब और कोई प्रश्न भी नहीं था। निदान चौकेकी तरफ ताकता रहा। चौकेकी छतको टिकाये रखनेवाले दोनों खम्भोंकी चौड़ी काली-काली छायाएँ, फ़र्शपर पड़कर फिर भीतरी दीवार-की कालिखमें गुम हो गयी थीं, और उनके बीचमें दबी-सकुची-सी भाभी बैठी थीं। बड़ी थालीमें आटे और पानीका घोल तैर रहा था, उसीमें चकला उलटा रखा था, उसी तरफ एक लुढ़का हुआ बेलन और वह चमचा भी, जो छौंकना लगानेके लिए तपाया गया था। चूल्हेपर उफ़ान-की लम्बी-सी लकीर और फेन-सा चारों तरफ़ उड़े परथनका मोटा-मोटा बूर! काला तवा एक ओर टिका था, जिसपर बिन्दी-सी आखिरी चंदिया चिपकी थी। भाभीके पैरके पास ही आमके छल्लेदार छिलके और पोदीनेके डण्ठल पड़े थे। कोनेमें काले मुँहकी ठिगरी जली हुई पड़ी थी, जो अब भी, 'सुन्-सुन्' करती धीरे-धीरे आपदार धुआँ छोड़ रही थी। मैं उकताकर उठना ही चाहता था कि भाभी बोलीं, "आप खा लीजिए, भूख लग रही होगी।"

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं, अब शायद आते ही होंगे। हमसे कहा था कि दस बजे तक जरूर आ जायेंगे।"—बहुत सँभलते हुए घरेलू तरीकेसे मैंने कहा।

"देख लीजिए और थोड़ी देर।"—कहकर भाभीने अपनी सपाट किनारीकी धोतीको ज़रा और सिरपर खींच लिया। एक निगाह उन्होंने बढ़ते हुए अँधेरेकी तरफ डाली और एक गहरी साँस खींचकर फिर सिर झुका लिया। भण्डारमें-से चूहोंके दौड़नेकी सहमी-सी आवाज़ आयी। 'खुर-खुर' करके उसने शायद कुछ टटोला और खो गया। चौकेका धुआँ अबतक साफ़ हो चुका था, पर घरके और हिस्सोंसे अधिक कालिख उसमें फैल चुकी थी। मैं ग़ौरसे भाभीको ताक रहा था; क्योंकि यह तय था कि

...रो और नहीं उठेगा ।

...काला-काला-सा मारीपन वहाँकी वायुमें भर रहा था—कोई
...ही, ठहरा-ठहरा-सा सब कुछ निस्पन्द ! अँधेरा हम लोगोंके बोले
...ी गूँज भी तेज़ीसे पी जाता था—कुछ बेबसी, अलस उदासी-सी
... जगह पसरा बैठा था । गहरी पड़ती शाम, अँधेरा, चौकेकी
...त, सब कुछ जैसे एक बेबसीके क्रममें आबद्ध थे । भाभी जैसे
...ी जीवनमें ढालकर अभ्यासी बन चुकी थीं । अभी शादीको
...धिक नहीं हुआ होगा, लेकिन यह गतिहीन ठहराव...जैसे
...रंगीनीको मिटा चुका है ।

... उठा, भाभीने उँगलियोंसे पकड़कर हटा दिया, कुछ इतनी
...से गर्म धातु ज़रा भी असर नहीं करती; न उँगली थर-
...ने जल्दी की । धुआँ छोड़ती हुई ठिगरी भी अबतक
...यी थी । भाभीका इस तरह निरपेक्ष होकर बैठना कोई
...ण भी नहीं लग रहा था । मैं बैठा यही सोच रहा था
...यामें ही भाभीके वे नारीत्वके गुण—चंचलता, मुख-
...गता आदि सभी लुप्त हो गये हैं । वे जान रही थीं
... हैं, पर जैसे इसमें सकुचाने या सिमटनेकी कोई बात
... देर बाद वह ऊबती हुई कुछ कहने जा रही थीं कि
...ें देखते ही वह बोल पड़ा, "काफ़ी अकेलापन मह-
... बताऊँ देर हो गयी ।"

...ह कमीज़ उतारते हुए कहने लगा, "इन्हें तो बस
... अगर कनस्तर, डिब्बे और शीशियाँ ज़रा भी
... तो शायद हमसे भी बात करनेकी नौबत न
...ा की होंगी ।"

...ओर मालूम पड़ती हैं ।" कहकर मैंने उनकी

तरफ नजर डाली। उनमें कुछ हरकत-सी हुई थी, पर वह शायद पटा डालनेके लिए थी।

"नॉट हॉलिस बट गिली!"—गोपाल कहता हुआ भीतर कमीज टाँगने चला गया।

खाना खाते वक्त गोपाल कुछ विरक्त-सा रहा था। हर चौथे-पाँचवें कौरके बाद पानी पीता जाता था। हम दोनों साथ ही खा रहे थे। कुछ बात चल पड़ी थी, वह कह रहा था, "दुनियामें बहुत-से जंजाल हैं, कुछ धर्मके मामलेर, कुछ गृहस्थोंके मामलेर; इन जालोंमें आदमी फँसता है, जब कि ये सब कतई जरूरी नहीं हैं, बिलकुल बेकार हैं।"

भाभीने चिमटेसे हाथसे रोटी थालीमें रख दी। गोपालने जल्दी उठाकर रोटीके चार टुकड़े कर दिये, कुछ इतनी आसानीसे कि कोई खास बात नहीं थी।

"अरे, टुकड़े करनेकी क्या जरूरत? गरम तो नहीं है और मैं अल्हड़ मजुआ भी नहीं, जो इतना तकल्लुफ बरत रहे हो!" मैंने गोपालसे कहा, क्योंकि रोटी तोड़नेमें मुझे कठिनाई नहीं थी।

बाद फिर जब मिस्सी रोटी आयी, गोपालने तोड़कर चार कर डाले। मैंने उसके तकल्लुफपर मुसकरा-भर दिया। गोपालने मेरी तरफ कुछ इस तरह देखा जैसे कि मैं नादान-सा हूँ, अभी तकल्लुफ, बनावट और बच्चों दुनियासे ऊपर नहीं पाया हूँ, इसीलिए शायद हर बातमें मुझे ये ही चीजें खटकती दिखती हैं।

तीसरी बार भी जब वह नहीं माना, तो मेरे मुँहसे निकल ही गया, "हद कर दी यार तुमने भी! यह मेरी उँगलियाँ अभी साबित हैं!" यह कहकर मैं मेहमानपनको कुछ मिटाना चाहता था।

"ये उँगली हैं या नाखून... कोई अँगुलोवाला, कोई अँगूठेवाला!" गलेसे एक अजीब आवाज करता हुआ वह कुछ ठीकर और ऐंठ कोई

भारी बात भीतर दबा गया। भाभीने किनारीकी कोरसे मेरी तरफ़ देखा और कुछ डूबती हुई-सी, दाल परसने लगी।

मैं कुछ अप्रतिभ-सा हो गया। यदि मैं बार-बार न टोकता, तो शायद भाभीको यह लतीफ़ा न सुनना पड़ता।

थोड़ी देर बाद जब बाहर कमरेमें आ गया, तो बड़ी अजीब-सी बात सुन पड़ी। शायद बग़लवाले कमरेमें ही गोपाल था; काफ़ी साफ़ सुनाई पड रहा था। वह कह रहा था, "मैं पानीकी तरह रुपया बहाकर घरको ठीक रखना चाहता हूँ और कुछ नहीं तो आज एक नया ढंग पेश किया तुमने। इसी तरहकी शर्मिन्दगी मुझे हमेशा उठानी पड़ती है, और तुम अपने तौर-तरीक़ोंसे बाज़ नहीं आती!"

"........" भाभीने कुछ कहा था।

"तुम्हारी इतनी मजाल, रोटियाँ लग गयी हैं!" गोपाल तैशमें कह रहा था।

"........" भाभी कुछ बोली थी।

चटाक्‌की आवाज़ और गोपालका गूँजता हुआ स्वर, "यही चाहती थी न? मैं सोचता था, कौन हाथ छोड़े! नहीं समझमें आता और फिर हर बातका मुँहपर जवाब""बड़ी गम्भीर बनी फिरती है!"

मैं सकपका-सा गया। भीतर जाना भी ठीक नहीं था। उन दोनोंके बीचमें पड़ना कहाँतक ठीक था! पर मेरी साँस घुट रही थी और आत्म-ग्लानिसे मेरा शरीर जल रहा था। यह सब मेरी वजहसे हुआ। उफ़! उस रोटीके लिए तीन बार टोक देना सारे फ़सादकी जड़ बन गया। मैंने सोचा कि गोपालको आवाज़ ही दे दूँ पर यह तो भाभीकी इज़्ज़तके लिए और भी बुरा होगा! कुछ बोल नहीं पाया, ख़ामोशीसे उठकर बाहर चला गया।

दूसरे दिन जब विदा होने लगा, तो जीमें आया कि गोपालसे उसके

जीवनमें महान् परिवर्तन होता है, विवाहके बाद पुरुषको रहन-सहनका कुछ ढंग ही बदलना पड़ता है, पर लड़कियोंको तो पूरी आत्मा बदलनी पड़ती है, यह मेरा स्वयंका अनुभव है, मैंने अपनी आत्माको बदलनेकी चेष्टा की है। एक क़ीमती आत्माकी हत्या भी इसलिए की कि वह तुम्हें प्यार करती थी। जब मैंने इस नये घरमें क़दम रखा था, तो यही सोचकर कि मेरी आत्मा सदैवके लिए तुम्हारे पास है, शरीर इस नये घरका है। लेकिन बहुत ईमानदारीसे कहूँ, बुरा मत मानना, कुछ दिनों बाद मेरी पसलियोंकी कायामें कुछ नरम स्पर्श-सा महसूस होने लगा, आत्माका स्पन्दन होने लगा, और तभीसे इस घरके दुःख-सुख मुझे सताने लगे।

मुझे तुम्हारी उदारतापर विश्वास है, इसीलिए लिख रही हूँ। मेरी कही हुई बातकी ईमानदारीको यदि तुमने न समझा, तो मेरे साथ अन्याय करोगे।

सच यह है कि मैं तुम्हे भूलने लगी थी और अब भी बहुत याद नहीं करती। अब मुझे लगता है कि मेरी आत्मा पूर्णतया मेरे अधिकारमें है, वह तुम्हारे पास नहीं है। इसका एक बहुत बड़ा कारण है।

मैं यहाँ बहुत सुखी हूँ। सारे आराम यहाँ हैं। मेरी माँ और पापाका अरमान कि उनकी इकलौती लड़कीका रिश्ता किसी ऊँचे घरमें हो, पूरा हो ही गया है, इससे भी मुझे बहुत सन्तोष मिलता है। शादी होनेसे पहले मुझे तुम्हारा मोह था, तुम्हारी ज़िन्दगीके रूपके प्रति लगाव था। तुमसे दूर होनेकी सोचकर मैं घबरा जाती थी। तब तुम मेरे लिए सब कुछ थे, तुम मेरे चारों ओर थे, हर तरफ़, हर साँसमें थे। पर अब यह सब एक मुलम्मेकी तरह उतर चुका है। यहाँ इज़्ज़त भी है, शान भी, आराम भी और पैसा भी। पैसा काफ़ी बड़ी शक्ति है, जिसके प्रति तुमने सदा उदासीनता ही दिखायी है। ख़ैर, मैं जब यहाँ आयी थी, तो तुम्हारी बातें, तुम्हारे साथ बिताये क्षण, उन स्थानोंकी स्मृतियाँ, जहाँ हम साथ-साथ घूमते थे, सभी मेरे साथ थे। पर 'ये', जिन्हें तुम अपना 'खुशनसीब

ज़ालिम मित्र' कहते हो, बहुत-कुछ तुम्हारी तरह ही हैं, तुम्हारी तरह हँसते हैं, वैसे ही बात करते हैं, उसी तरह चलने-फिरते हैं, सब अन्दाज वे ही हैं। हाँ, तुम्हारी आँखें ज़रा अधिक गहरी हैं, जिनको बरबस आज मुझे याद आ गयी। बाक़ी सब हाव-भाव, चाल-ढाल, तौर-तरीक़े, जैसे तुम्हारे थे, वैसे ही इनके भी हैं। तुम ज़रा संकोची हो, ये बहुत खुले हुए। इसीलिए मैं तुम्हें भूल गयी और तुम्हें भूल जाना अच्छा भी था।

आज खाना पकानेवाली महराजिन नहीं आयी। घरकी बहू हूँ मैं, खाना पकानेके लिए रसोईघरमें गयी, शायद पहली बार। जब वहाँ घुसी, तो बरबस यह भाव जाग उठा कि तुम्हारे साथ यदि जीवन बीतता होता, तो रोज ऐसे ही मुझे खाना पकाना पड़ता। तुम्हारे साथ जीवनकी तमाम कल्पनाएँ मेरे दिमाग़में आ-आकर समाती जा रही थीं। मुझे इस तरह रहना पड़ता, मैं यह करती, मैं वह करती, शामको तुम्हारे आनेकी राह देखती; मैं खाना पकाती, तुम बीच-बीचमें आकर छेड़ते, कभी दाल-में पानी ज़्यादा बताते, कभी रसोईघरमें गरमीसे परेशान देखकर मुझे बाहर ले जाते।

मेरी हालत अजीब-सी हो रही थी। तुम्हारी हर बात याद आने लगी। अकेले ही रोटी बनाने बैठी, लगा कि जैसे तुम अभी छेड़ने आ रहे हो, तुम मेरी आँखोंके सामने पूरी तरहसे उभरे हुए थे, मेरी हर साँसमें तुम बस गये थे। मेरे चारों ओर तुम थे। तुम्हारे पैरोंकी आहट हर तरफ़से आ रही थी और मेरी हर रोटी टेढ़ी हो जाती थी। सच कहती हूँ, हर गोल बनती रोटी अपने-आप टेढ़ी होकर बदशक्ल हो जाती। यह सब मुझे बहुत अपना-सा लग रहा था, जैसे पुरानी आत्मा अपने पुराने रूपमें मुझे वापस मिल गयी हो।

खाते वक़्त उन्होंने हँसते हुए कहा था, "वाह, यह किसी ख़ास जगह-की रोटियोंका नमूना है शायद !"

माताजी बोली थीं, "अरे, सीख जायेगी, इसमें हँसनेकी क्या बात,

राजा निरबंसिया

"एक राजा निरबंसिया थे,"—माँ कहानी सुनाया करती थीं। उनके आस-पास ही चार-पाँच बच्चे अपनी मुट्ठियोंमें फूल दबाये कहानी समाप्त होनेपर गौरोंपर चढ़ानेके लिए उत्सुक-से बैठ जाते थे। आटेका सुन्दर-सा चौक पुरा होता, उसी चौकपर मिट्टीकी छह गौरें रखी जातीं, जिनमें-से ऊपर-वालीके बिंदिया और सिन्दूर लगता, बाक़ी पाँचों नीचे दबी पूजा ग्रहण करती रहतीं। एक ओर दीपककी बाती स्थिर-सी जलती रहती और मंगल-घट रखा रहता, जिसपर रोलीसे सथिया बनाया जाता। सभी बैठे बच्चोंके मुखपर फूल चढ़ानेकी उतावलीकी जगह कहानी सुननेकी सहज स्थिरता उभर आती।

"एक राजा निरबंसिया थे," माँ सुनाया करती थीं, "उनके राजमें बड़ी खुशहाली थी। सब वरणके लोग अपना-अपना काम-काज देखते थे। कोई दुःखी नहीं दिखाई पड़ता था। राजाके एक लक्ष्मी-सी रानी थी, चन्द्रमा-सी सुन्दर और""और राजाको बहुत प्यारी। राजा राज-काज देखते और सुखसे रानीके साथ महलमें रहते""

मेरे सामने मेरे खयालोंका राजा था, राजा जगपती! तब जगपतीसे मेरी दाँतकाटी दोस्ती थी, दोनों मिडिल स्कूलमें पढ़ने

जाते। दोनों एक-से घरके थे, इसलिए बराबरीकी निभती थी। मैं मैट्रिक पास करके एक स्कूलमें नौकर हो गया और जगपती क़स्बेके ही वकीलके यहाँ मुहर्रिर। जिस साल जगपती मुहर्रिर हुआ, उसी वर्ष पासके गाँवमें उसकी शादी हुई, पर ऐसी हुई कि लोगोंने तमाशा बना देना चाहा। लड़की-वालोंका कुछ विश्वास था कि शादीके बाद लड़कीकी बिदा नहीं होगी। ब्याह हो जायेगा और सातवीं भाँवर तब पड़ेगी, जब पहली बिदाकी सायत होगी और तभी लड़की अपनी ससुराल जायेगी। जगपतीकी पत्नी थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी थी, पर घरकी लीकको कौन मेटे! बारात बिना बहूके वापस आ गयी और लड़केवालोंने तै कर लिया कि अब जगपतीकी शादी कहीं और कर दी जायेगी, चाहे कानी-लूलीसे हो, पर वह लड़की अब घरमें नहीं आयेगी। लेकिन साल खतम होते-होते सब ठीक-ठाक हो गया। लड़कीवालोंने माफ़ी माँग ली और जगपतीकी पत्नी अपनी ससुराल आ हो गयी।

जगपतीको जैसे सब-कुछ मिल गया और माँने बहूकी बलइयाँ लेकर घरकी सब चाभियाँ सौंप दीं, गृहस्थीका ढंग-चार समझा दिया। जगपती-की माँ न जाने कबसे आस लगाये बैठी थीं। उन्होंने आरामकी साँस ली। पूजा-पाठमें समय कटने लगा, दोपहरियाँ दूसरे घरोंके आँगनमें बीतने लगीं। पर साँसका रोग था उन्हें, सो एक दिन उन्होंने अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए चन्दाको पास बुलाकर समझाया था—'बेटा, जगपती बड़े लाड़-प्यारका पाला है। जबसे तुम्हारे ससुर नहीं रहे, तबसे इसके छोटे-छोटे हठको पूरा करती रही हूँ....अब तुम ध्यान रखना।' फिर रुक-कर उन्होंने कहा था, 'जगपती किसी लायक़ हुआ है, तो रिश्तेदारोंकी आँखोंमें करकने लगा है। तुम्हारे बापने ब्याहके वक़्त नादानी की, जो तुम्हें बिदा नहीं किया। मेरे दुश्मन देवर-जेठोंको मौक़ा मिल गया। तूमार खड़ा कर दिया कि अब बिदा करवाना नाक कटवाना है।....'जगपतीका ब्याह क्या हुआ, उन लोगोंकी छातीपर साँप लोट गया। सोचा, घरकी इज्जत

राजा निरबंसिया

"एक राजा निरबंसिया थे,"—माँ कहानी सुनाया करती थीं। उनके आस-पास ही चार-पाँच बच्चे अपनी मुट्ठियोंमें फूल दबाये कहानी समाप्त होनेपर गौरोंपर चढ़ानेके लिए उत्सुक-से बैठ जाते थे। आटेका सुन्दर-सा चौक पुरा होता, उसी चौकपर मिट्टीकी छह गौरें रखी जातीं, जिनमें-से ऊपर-वालीके बिंदिया और सिन्दूर लगता, बाकी पाँचों नीचे दबी पूजा ग्रहण करती रहतीं। एक ओर दीपककी बाती स्थिर-सी जलती रहती और मंगल-घट रखा रहता, जिसपर रोलीसे सथिया बनाया जाता। सभी बैठे बच्चोंके मुखपर फूल चढ़ानेकी उतावलीकी जगह कहानी सुननेकी सहज स्थिरता उभर आती।

"एक राजा निरबंसिया थे," माँ सुनाया करती थीं, "उनके राजमें बड़ी खुशहाली थी। सब बरणके लोग अपना-अपना काम-काज देखते थे। कोई दुःखी नहीं दिखाई पड़ता था। राजाके एक लक्ष्मी-सी रानी थी, चन्द्रमा-सी सुन्दर और"""और राजाको बहुत प्यारी। राजा राज-काज देखते और सुखसे रानीके साथ महलमें रहते""""

मेरे सामने मेरे खयालोंका राजा था, राजा जगपती! तब जगपतीसे मेरी दाँतकाटी दोस्ती थी, दोनों मिडिल स्कूलमें पढ़ने

जाते। दोनों एक-से घरके थे, इसलिए बराबरीकी निभती थी। मैं मैट्रिक पास करके एक स्कूलमें नौकर हो गया और जगपती क़स्बेके ही वकीलके यहाँ मुहर्रिर। जिस साल जगपती मुहर्रिर हुआ, उसी वर्ष पासके गाँवमें उसकी शादी हुई, पर ऐसी हुई कि लोगोंने तमाशा बना देना चाहा। लड़कीवालोंका कुछ विश्वास था कि शादीके बाद लड़कीकी बिदा नहीं होगी। ब्याह हो जायेगा और सातवीं भाँवर तब पड़ेगी, जब पहली बिदाकी सायत होगी और तभी लड़की अपनी ससुराल जायेगी। जगपतीकी पत्नी थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी थी, पर घरकी लीकको कौन मेटे! बारात बिना बहूके वापस आ गयी और लड़केवालोंने ठै कर लिया कि अब जगपतीकी शादी कहीं और कर दी जायेगी, चाहे कानी-लूलीसे हो, पर वह लड़की अब घरमें नहीं आयेगी। लेकिन साल खतम होते-होते सब ठीक-ठाक हो गया। लड़कीवालोंने माफ़ी माँग ली और जगपतीकी पत्नी अपनी ससुराल आ ही गयी।

जगपतीको जैसे सब-कुछ मिल गया और सासने बहूको बलइयाँ लेकर घरकी सब चाभियाँ सौंप दीं, गृहस्थीका ढंग-चार समझा दिया। जगपतीकी माँ न जाने कबसे आस लगाये बैठी थीं। उन्होंने आरामकी साँस ली। पूजा-पाठमें समय कटने लगा, दोपहरियाँ दूसरे घरोंके आँगनमें बीतने लगीं। पर साँसका रोग था उन्हें, सो एक दिन उन्होंने अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए चन्दाको पास बुलाकर समझाया था—'बेटा, जगपती बड़े लाड़-प्यारका पाला है। जबसे तुम्हारे ससुर नहीं रहे, तबसे इसके छोटे-छोटे हठको पूरा करती रही हूँ...अब तुम ध्यान रखना।' फिर रुककर उन्होंने कहा था, 'जगपती किसी लायक़ हुआ है, तो रिश्तेदारोंकी आँखोंमें करकने लगा है। तुम्हारे बापने ब्याहके वक़्त नादानी की, जो तुम्हें बिदा नहीं किया। मेरे दुश्मन देवर-जेठोंको मौक़ा मिल गया। तूमार खड़ा कर दिया कि अब बिदा करवाना नाक कटवाना है।'...जगपतीका ब्याह क्या हुआ, उन लोगोंकी छातीपर साँप लोट गया। सोचा, घरकी इज़्ज़त

राजा निरबंसिया

रखनेको आड़ लेकर रंगमें भंग कर दें।""अब, बेटा, इस घरकी लाज तुम्हारी लाज है। आजको तुम्हारे ससुर होते, तो भला"' कहते-कहते माँकी आँखोंमें आँसू आ गये, और वह जगपतीकी देख-भाल उसे सौंपकर सदाके लिए मौन हो गयी थीं।

एक अरमान उनके साथ ही चला गया कि जगपतीकी सन्तानको, चार बरस इन्तज़ार करनेके बाद भी वह गोदमें न खिला पायीं। और चन्दाने मनमें सब्र कर लिया था, यही सोचकर कि कुल-देवताका अंश तो उसे जीवन-भर पूजनेको मिल गया था। घरमें चारों तरफ़ जैसे उदारता बिखरी रहती, अपनापा बरसता रहता। उसे लगता, जैसे घरकी अँधेरी, एकान्त कोठरियोंमें वह शान्त शीतलता है जो उसे भरमा लेती है। घरकी सब कुण्डियोंकी खनक उसके कानोंमें बस गयी थी, हर दरवाजेकी चरमराहट पहचान बन गयी थी।""

"एक रोज़ राजा आखेटको गये," माँ सुनाती थी, "राजा आखेटको जाते थे, तो सातवें रोज़ ज़रूर महलमें लौट आते थे। पर उस दफ़ा जब गये, तो सातवाँ दिन निकल गया, पर राजा नहीं लौटे। रानीको बड़ी चिन्ता हुई। रानी एक मन्त्रीको साथ लेकर खोजमें निकलीं""

और इसी बीच जगपतीको रिश्तेदारीकी एक शादीमें जाना पड़ा। उसके दूरके रिश्तेके भाई दयारामकी शादी थी। वह गया था कि दसवें दिन ज़रूर वापस आ जायेगा। पर छठे दिन ही खबर मिली कि बारात घर लौटनेपर दयारामके घर डाका पड़ गया। किसी मुखबिरने सारी खबरें पहुँचा दी थीं कि लड़कीवालोंने दयारामका घर सोने-चाँदीसे पाट दिया है""आखिर पुश्तैनी ज़मींदारकी इकलौती लड़की थी। घर आये मेहमान लगभग विदा हो चुके थे। दूसरे रोज़ जगपती भी चलनेवाला था। पर उसी रात डाका पड़ा। जवान आदमी, भला खून मानता है। डाकेवालोंने जब बन्दूकें चलायीं, तो सबकी घिग्घी बँध गयी। पर जगपती और दया-

रामने छाती ठोंककर लाठियाँ उठा लीं। घरमें कुहराम मच गया।"""फिर सन्नाटा छा गया। डाकेवाले बराबर गोलियाँ दाग रहे थे। बाहरका दरवाजा टूट चुका था। पर जगपतीने हिम्मत बढ़ाते हुए हाँक लगायी, "ये हवाई बन्दूकें इन तेल पिलायी लाठियोंका मुक़ाबला नहीं कर पायेंगी, जवानो!"

पर दरवाज़े तड़-तड़ टूटते रहे और अन्तमें एक गोली जगपतीकी जाँघको पार करती निकल गयी और दूसरी उसकी जाँघके ऊपर कूल्हेमें समाकर रह गयी।

चन्दा रोती-कलपती और मनौतियाँ मानती जब वहाँ पहुँची, तो जगपती अस्पतालमें था। दयारामके थोड़ी चोट आयी थी। उसे अस्पतालसे छुट्टी मिल गयी थी। जगपतीकी देखभालके लिए वहीं अस्पतालमें मरीज़ों-के रिश्तेदारोंके लिए जो कोठरियाँ बनी थीं, उन्हींमें चन्दाको रुकना पड़ा। क़स्बेके अस्पतालसे दयारामका गाँव चार कोस पड़ता था। दूसरे-तीसरे वहाँ-से आदमी आते-जाते रहते, जिस सामानकी जरूरत होती, पहुँचा जाते।

पर धीरे-धीरे उन लोगोंने भी खबर लेना छोड़ दिया। एक दिनमें ठीक होनेवाला घाव तो था नहीं। जाँघकी हड्डी चटख गयी थी और कूल्हे-में ऑपरेशनसे छह इंच गहरा घाव हो गया था।

क़स्बेका अस्पताल था। कम्पाउण्डर ही मरीज़ोंकी देखभाल रखते। बड़ा डॉक्टर तो नामके लिए था या क़स्बेके बड़े आदमियोंके लिए। छोटे लोगोंके लिए तो कम्पोटर साहब ही ईश्वरके अवतार थे। मरीज़ोंकी देखभाल करनेवाले रिश्तेदारोंको खाने-पीनेकी मुश्किलोंसे लेकर मरीज़की नब्ज तक सँभालते थे। छोटी-सी इमारतमें अस्पताल आबाद था। रोगियोंके लिए सिर्फ़ छह-सात खाटें थीं। मरीज़ोंके कमरेसे लगा दवा बनानेका कमरा था, उसीमें एक ओर एक आराम-कुरसी थी और एक नीची-सी मेज। उसी कुरसीपर बड़ा डाक्टर आकर

कभी-कभार बैठता, नहीं तो बचनसिंह कम्पाउण्डर ही जमे रहते। अस्पतालमें या तो फ़ौजदारीके मरीज़ आते या गिर-गिराके हाथ-पैर तोड़ लेनेवाले एक-आध लोग। छठे-छमासे कोई औरत दिख गयी, तो दिख गयी, जैसे उन्हें कभी रोग घेरता ही नहीं था। कभी कोई बीमार पड़ती, तो घरवाले हाल बताके आठ-दस गोलियाँ दवा एक साथ ले जाते और फिर उसके जीने-मरनेकी ख़बर तक न मिलती।

उस दिन बचनसिंह जगपतीके घावकी पट्टी बदलने आया। उसके आनेमें और पट्टी खोलनेमें कुछ ऐसी लापरवाही थी, जैसे ग़लत बँधी पगड़ीको ठीकसे बाँधनेके लिए खोल रहा हो। चन्दा उसकी कुरसीके पास ही साँस रोके खड़ी थी। वह और रोगियोंसे बात भी करता जा रहा था। इधर मिनिट-भरको देखता, फिर जैसे अभ्यस्त-से उसके हाथ अपना काम करने लगते। पट्टी एक जगह ख़ूनसे चिपक गयी थी, जगपती बुरी तरह कराह उठा। चन्दाके मुँहसे चीख़ निकल गयी। बचनसिंहने सतर्क होकर देखा तो चन्दा मुखमें धोतीका पल्ला खोंसे अपनी भयातुर आवाज़ दबानेकी चेष्टा कर रही थी, जगपती एक बारगी मछली-सा तड़पकर रह गया। बचनसिंहकी उँगलियाँ थोड़ी-सी थरथरायीं कि उसकी बाँहपर टप-से चन्दाका आँसू चू पड़ा।

बचनसिंह सिहर-सा गया और उसके हाथोंकी अभ्यस्त निठुराईको जैसे किसी मानवीय कोमलताने धीरेसे छू दिया। आहों, कराहों दर्द-भरी चीखों और चटखते शरीरके जिस वातावरणमें रहते हुए भी वह बिलकुल अलग रहता था, फोड़ोंको पके आम-सा दाब देता था, खालको आलू-सा छील देता था"'उसके मनमें जिस दरदका अहसास उठ गया था, वह उसे आज फिर हुआ और वह बच्चेकी तरह फूँक-फूँककर पट्टीको नम करके खोलने लगा। चन्दाकी ओर धीरेसे निगाह उठाकर देखते हुए फुसफुसाया, "च्"'च्"'रोगीकी हिम्मत टूट जाती है ऐसे।"

पर ऐसे यह कहते-कहते उसका मन खुद अपनी बातसे उचट गया। यह बेहयाई तो थी और कराहोंकी एकरसतासे उसे मिली थी, रोगोंको हिम्मत बढ़ानेकी कोशिश-निठाने नहीं। जबतक वह घावकी मरहम-पट्टी करता रहा, तबतक किन्हीं दो आँखोंकी करुणा उसे घेरे रही।

और हाथ धोते समय वह चन्दाकी उन चूड़ियोंसे भरी कलाइयोंको बेझिझक देखता रहा, जो अपनी मुक्ति उससे माँग रही थीं। चन्दा पानी डालती जा रही थी और बचनसिंह हाथ धोते-धोते उसकी कलाइयों, हथेलियों और पैरोंको देखता जा रहा था। दवाखानेकी ओर जाते हुए उसने चन्दाको हाथके इशारेसे बुलाकर कहा, "दिल छोटा मत करना... जाँघका घाव तो दस रोज़में भर जायेगा। कूल्हेका घाव कुछ दिन ज़रूर लेगा। अच्छीसे अच्छी दवाई दूँगा। दवाइयाँ तो ऐसी हैं कि मुरदेको चंगा कर दें, पर हमारे अस्पतालमें नहीं आतीं, फिर भी..."

"तो किसी दूसरे अस्पतालसे नहीं आ सकतीं वो दवाइयाँ?" चन्दाने पूछा।

"आ तो सकती हैं पर मरीज़को अपना पैसा खरचना पड़ता है, उनमें..." बचनसिंहने कहा।

चन्दा चुप रह गयी तो बचनसिंहके मुँहसे अनायास ही निकल पड़ा, "किसी चीज़की ज़रूरत हो तो मुझसे बताना।...रही दवाइयाँ, सो कहीं-न-कहींसे इन्तज़ाम करके ला दूँगा। महकमेसे मँगायेंगे, तो आते-आते महीनों लग जायेंगे। शहरके डॉक्टरसे मँगवा दूँगा। ताक़तकी दवाइयोंकी बड़ी ज़रूरत है उन्हें। अच्छा, देखा जायेगा..." कहते-कहते वह रुक गया।

चन्दाने कृतज्ञता-भरी नज़रोंसे उसे देखा और उसे लगा जैसे आँधीमें उड़ते पत्तेको कोई अटकाव मिल गया हो। आकर वह जगपतीकी खाट-से लगकर बैठ गयी। उसकी हथेली लेकर वह सहलाती रही। नाखूनोंको

अपने पोरोंसे दबाती रही।

धीरे-धीरे बाहर अँधेरा बढ़ चला। वचनसिंह तेलकी एक लालटेन लाकर मरीज़ोंके कमरेके एक कोनेमें रख गया। चन्दाने जगपतीकी कलाई दाबते-दाबते धीरेसे कहा, "कम्पाउण्डर साहब कह रहे थे····" और इतना कहकर वह जगपतीका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए चुप हो गयी।

"क्या कह रहे थे?"—जगपती अनमने स्वरमें बोला।

"कुछ ताक़तकी दवाइयाँ तुम्हारे लिए ज़रूरी हैं!"

"मैं जानता हूँ।"

"पर····"

"देखो चन्दा, चादरके बराबर ही पैर फैलाये जा सकते हैं। हमारी औक़ात इन दवाइयोंकी नहीं है।"

"औक़ात आदमीकी देखी जाती है कि पैसेकी, तुम तो····"

"देखा जायेगा।"

"कम्पाउण्डर साहब इन्तज़ाम कर देंगे, उनसे कहूँगी मैं।"

"नहीं चन्दा, उधारखातेसे मेरा इलाज नहीं होगा····चाहे एकके चार दिन लग जायें।"

"इसमें तो····"

"तुम नहीं जानतीं, क़र्ज़ कोढ़का रोग होता है, एक बार लगनेसे तन तो गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है।"

"लेकिन····" कहते-कहते वह रुक गयी।

जगपती अपनी बातकी टेक रखनेके लिए दूसरी ओर मुँह घुमाकर लेट रहा।

और तीसरे रोज़ जगपतीके सिरहाने कई ताक़तकी दवाइयाँ रखी थीं, और चन्दाकी ठहरनेवाली कोठरीमें उसके लेटनेके लिए एक खाट

भी पहुँच गयी थी। चन्दा जब आयी, तो जगपतीके चेहरेपर मानसिक पीड़ाकी असंख्य रेखाएँ उभरी थी, जैसे वह अपनी बीमारीसे लड़नेके अलावा स्वयं अपनी आत्मासे भी लड़ रहा हो....चन्दाकी नादानी और स्नेहसे भी उलझ रहा हो और सबसे ऊपर सहायता करनेवालेकी दयासे जूझ रहा हो।

चन्दाने देखा तो जैसे यह सब सह न पायी। उसके जीमें आया कि कह दे, क्या आज तक तुमने कभी किसीसे उधार पैसे नही लिये? पर वह तो खुद तुमने लिये थे और तुम्हे मेरे सामने स्वीकार नही करना पड़ा था। इसीलिए लेते झिझक नही लगी, पर आज मेरे सामने उसे स्वीकार करते तुम्हारा झूठा पौरुष तिलमिलाकर जाग पड़ा है। पर जगपतीके मुखपर बिखरी हुई पीड़ामें जिस आदर्शकी गहराई थी, वह चन्दाके मनमें चोरकी तरह घुस गयी, और बड़ी स्वाभाविकतासे उसने उसके माथेपर हाथ फेरते हुए कहा, "ये दवाइयाँ किसीकी मेहरबानी नहीं है, मैंने हाथका कड़ा बेचनेको दे दिया था। उसीसे आयी है।"

"मुझसे पूछा तक नही और...." जगपतीने कहा और जैसे खुद मनकी कमजोरीको दाब गया—कड़ा बेचनेसे तो अच्छा था कि बचनसिंहकी दया ही ओढ़ ली जाती। और उसे हलका सा पछतावा भी था कि नाहक वह रौ में बड़ी-बड़ी बातें कह जाता है, ज्ञानियोंकी तरह सीख दे देता है।

और जब चन्दा अंधेरा होते उठकर अपनी कोठरीमें सोनेके लिए जानेको हुई, तो कहते-कहते यह बात दबा गयी कि बचनसिंहने उसके लिए एक खाटका इन्तजाम भी करा दिया है। कमरेसे निकली, तो सीधी कोठरीमें गयी और हाथका कड़ा लेकर सीधे दवाखानेकी ओर चली गयी, जहाँ बचनसिंह अकेला डॉक्टरकी कुरसीपर आराममें टाँगें फैलाये लैम्पकी पीली रोशनीमें लेटा था। जगपतीका व्यवहार चन्दाको लग गया था, और यह भी कि वह क्यों बचनसिंहका एहसान अभीसे लाद ले, पतिके

धीरेसे उसकी ओर बढ़ा दिया, जैसे देनेका साहस न होते हुए भी वह काम आवश्यक था।

बचनसिंहने उसकी सारी कायाको एक बार देखते हुए अपनी आँखें उसके सिरपर जमा दीं, जिसके ऊपर पड़े कपड़ेके पार नरम चिकनाई भरे लम्बे-लम्बे बाल थे, जिनकी भाफ-सी महक फैलती जा रही थी। वह धीरेसे बोला, "लाओ।"

चन्दाने कड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। कड़ा हाथमें लेकर वह बोला, "सुनो।"

चन्दाने प्रश्न-भरी नजरें उसकी ओर उठा दीं।

उनमें झाँकते हुए, पर अपने हाथसे उसकी कलाई पकड़ते हुए उसने वह कड़ा उसकी कलाईमें पहना दिया।

चन्दा चुपचाप कोठरीकी ओर चल दी और बचनसिंह दवाखानेकी ओर। कालिख बुरी तरह बढ़ गयी थी और सामने खड़े पेड़की काली परछाईं गहरी पड़ गयी थी। दोनों लौट गये थे। पर जैसे उस कालिखमें कुछ रह गया था, छूट गया था। दवाखानेका लैम्प जो जलते-जलते एक बार भभका था, उसमें तेल न रह जानेके कारण बत्तीकी लौ बीचसे फट गयी थी, उसके ऊपर धुएँकी लकीरें बल खातीं, साँपकी तरह अँधेरेमें विलीन हो जाती थीं।

सुबह जब चन्दा जगपतीके पास पहुँची और बिस्तर ठीक करने लगी, तो जगपतीको लगा कि चन्दा बहुत उदास थी। क्षण-क्षणमें चन्दाके मुख-पर अनगिनत भाव आ-जा रहे थे, जिनमें असमंजस था, पीड़ा थी और निरीहता। कोई अदृश्य पाप कर चुकनेके बाद हृदयकी गहराईमें किये गये पश्चात्ताप-जैसी धूमिल चमक!....

"रानी मन्त्रीके साथ जब निराश होकर लौटी, तो देखा, राजा महलमें उपस्थित थे। उनकी खुशीका ठिकाना न रहा।" माँ सुनाया करती थीं,

"पर राजाको रानीका इस तरह मन्त्रीके साथ जाना अच्छा नहीं लगा। रानीने राजाको समझाया कि वह तो केवल राजाके प्रति अटूट प्रेमके कारण अपनेको न रोक सकी। राजा रानी एक-दूसरेको बहुत चाहते थे। पर दोनोंके दिलोंमें एक बात शूल-सी गड़ती रहती कि उनके कोई सन्तान न थी""राजवंशका दीपक बुझने जा रहा था। सन्तानके अभावमें उनका लोक-परलोक बिगड़ा जा रहा था और कुलकी मर्यादा नष्ट होनेकी शंका बढ़ती जा रही थी।....."

दूसरे दिन बचनसिंहने मरीज़ोंकी मलहम-पट्टी करते वक्त बताया था कि उसका तबादला मैनपुरीके सदर अस्पतालमें हो गया है और वह परसों यहाँसे चला जायेगा। जगपतीने सुना, तो उसे भला ही लगा।""आये दिन रोग घेरे रहते हैं, बचनसिंह उसके शहरके अस्पतालमें पहुँचा जा रहा है, तो कुछ मदद मिलती ही रहेगी। आखिर वह ठीक तो होगा ही और फिर मैनपुरीके सिवा कहाँ जायेगा? पर दूसरे ही क्षण उसका दिल अधक भारीपनसे भर गया। पता नहीं, क्यों चन्दाके अस्तित्वका ध्यान आते ही उसे इस सूचनामें कुछ ऐसे नुकीले काँटे दिखाई देने लगे, जो उसके शरीर-में किसी भी समय चुभ सकते थे, ज़रा-सा बेख़बर होनेपर बींध सकते थे। और तब उसके सामने आदमीके अधिकारकी लक्ष्मण-रेखाएँ धुएँकी लकीरकी तरह काँपकर मिटने लगीं और मनमें छिपे सन्देहके राक्षस बाना बदल योगीके रूपमें घूमने लगे।

और पन्द्रह-बीस रोज़ बाद जब जगपतीकी हालत सुधर गयी, तो चन्दा उसे लेकर घर लौट आयी। जगपती चलने-फिरने लायक हो गया था। घरका ताला जब खोला, तब रात झुक आयी थी। और फिर उनकी गलीमें तो शामसे ही अँधेरा भरना शुरू हो जाता था। पर गलीमें आते ही उन्हें लगा, जैसे कि बनवास काटकर राजधानी लौटे हों। नुक्कड़पर हो जमना सुनारकी कोठरीमें सुरही फिंक रही थी, जिसके दराज़दार दर-

वाज़ोसे लालटेनकी रोशनीकी लकीर झांक रही थी और
धुआँ रुँधी गलीके मुहानेपर बुरी तरह भर गया था।
अपनी जिंगला खटियाके गड्ढेमें, कुप्पीके मद्धिम प्रकाश
बिछाये मोजाल लगानेमें मशगूल थे। जब जगपतीके
खड़का, तो अँधेरेमें उसकी चाचीने अपने जँगलेसे देखा
बैठे अपने घरके भीतर ऐलान कर दिया—"राजा निरब
लौट आये····कुलमा भी आयी हैं।"

ये शब्द सुनकर घरके अँधेरे बरोठेमें घुसते ही जगप
गया, झुंझलाकर चन्दासे बोला, "अँधेरेमें क्या मेरे हाथ-
भीतर जाकर लालटेन जला लाओ न।"

"तेल नही होगा, इस वक्त ज़रा ऐसे ही काम····"

"तुम्हारे कभी कुछ नही होगा····न तेल न····" वह
एकदम चुप रह गया। और चन्दाको लगा कि आज पहल
उसके व्यर्थ मातृत्वपर इतनी गहरी चोट कर दी, जि
उसने कभी कल्पना नहीं की थी। दोनो खामोश, बिना
अन्दर चले गये।

रातके बढ़ते सन्नाटेमें दोनोंके सामने दो बातें थी····

जगपतीके कानोंमें जैसे कोई व्यग्यसे कह रहा था—
सिया अस्पतालसे आ गये!

और चन्दाके दिलमें वह बात चुभ रही थी—तुम्हा
नहीं होगा····

और सिसकती-सिसकती चन्दा न जाने कब सो गयी
की आंखोंमें नींद न आयी। खाटपर पड़े-पड़े उसके चारों
भयावना-सा जाल फैल गया। लेटे-लेटे उसे लगा, जैसे
आकार बहुत क्षीण होता होता बिन्दु-सा रह गया, पर

पैर थे और दिलकी धड़कन भी। कोठरीका घुटा-घुटा-सा अँधियारा, मटमैली दीवारें और गहन गुफाओं-सी अलमारियाँ, जिनमें-से बार-बार कोई झाँककर देखता था""और वह सिहर उठता था""फिर जैसे सब-कुछ तबदील हो गया हो।""उसे लगा कि उसका आकार बढ़ता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है। वह मनुष्य हुआ, लम्बा-तगड़ा तन्दुरुस्त पुरुष हुआ, उसकी शिराओंमें कुछ फट पड़नेके लिए व्याकुलतासे खौल उठा। उसके हाथ शरीरके अनुपातसे बहुत बड़े, डरावने और भयानक हो गये, उनमें लम्बे-लम्बे नाखून निकल आये""वह राक्षस हुआ, दैत्य हुआ"" आदिम बर्बर !

और बड़ी तेजीसे सारा कमरा एकबारगी चक्कर काट गया।""फिर सब धीरे-धीरे स्थिर होने लगा और उसकी साँसें ठीक होती जान पड़ीं। फिर जैसे बहुत कोशिश करनेपर घिग्घी बँध जानेके बाद उसकी आवाज़ फूटी, "चन्दा !"

चन्दाकी नरम साँसोंकी हलकी सरसराहट कमरेमें जान डालने लगी। जगपती अपनी पाटीका सहारा लेकर झुका। काँपते पैर उसने जमीनपर रखे और चन्दाकी खाटके पायेसे सिर टिकाकर बैठ गया। उसे लगा, जैसे चन्दाकी इन साँसोंकी आवाज़में जीवनका संगीत गूँज रहा है। वह उठा और चन्दाके मुखपर झुक गया। ""उस अँधेरेमें आँखें गड़ाये-गड़ाये जैसे बहुत देर बाद स्वयं चन्दाके मुखपर आभा फूटकर अपने-आप बिखरने लगी""उसके नक्श उज्ज्वल हो उठे और जगपतीकी आँखोंको ज्योति मिल गयी। वह मुग्ध-सा ताकता रहा।

चन्दाके बिखरे बाल, जिनमें हालके जनमे बच्चेके गबुआरे बालोंकी-सी महक""दूधकी कचआँइघ"" शरीरके रसकी-सी मिठास और स्नेह-सी चिकनाहट और वह माथा जिसपर बालोंके पास तमाम छोटे-छोटे, नरम-नरम-से रोएँ""रेशम-से""और उसपर कभी लगायी गयी सेंदुरकी

बिन्दीका हलका मिटा हुआ-सा आभास····नन्हें-नन्हें निर्द्वन्द्व सोये पलक! और उनकी मासूम-सी काँटोंकी तरह बरौनियाँ और साँसमें घुलकर आती हुई वह आत्माकी निष्कपट आवाजकी लय····फूलकी पंखुरी-से पतले-पतले होंठ, उनपर पड़ी अछूती रेखाएँ, जिनमें सिर्फ दूध-सी महक!

उसकी आँखोंके सामने ममता-सी छा गयी, केवल ममता, और उसके मुखसे अस्फुट शब्द निकल गया, 'बच्चो!'

डरते-डरते उसके बालोंकी एक लटको बड़े जतनसे उसने हथेलीपर रखा और उँगलीसे उसपर जैसे लकीरें खींचने लगा। उसे लगा, जैसे कोई शिशु उसके अंकमें आनेके लिए छटपटाकर निराश होकर सो गया हो। उसने दोनों हथेलियोंको पसारकर उसके सिरको अपनी सीमें भर लेना चाहा कि कोई कठोर चीज उसकी उँगलियोंसे टकरायी। वह जैसे होशमें आया।

बड़े सहारेसे उसने चन्दाके सिरके नीचे टटोला। एक रूमालमें बँधा कुछ उसके हाथमें आ गया। अपनेको संयत करता वह वहीं जमीनपर बैठ गया, उसी अँधेरेमें उस रूमालको खोला, तो जैसे साँप सूँघ गया, चन्दाके हाथके दोनों सोनेके कड़े उसमें लिपटे थे!

और तब उसके सामने सब सृष्टि धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरने लगी। ये कड़े तो चन्दा बेचकर उसका इलाज कर रही थी। वे सब दवाइयाँ और ताकतके टॉनिक····उसने तो कहा था, ये दवाइयाँ किसीकी मेहरबानी नहीं हैं, मैंने हाथके कड़े बेचनेको दे दिये थे····पर····उसका गला बुरी तरह सूख गया। जबान जैसे तालूसे चिपककर रह गयी। उसने चाहा कि चन्दाको झकझोरकर उठाये, पर शरीरकी शक्ति बह-सी गयी थी, रक्त पानी हो गया था।

थोड़ा संयत हुआ, उसने वह कड़े उसी रूमालमें लपेटकर उसकी खाटके कोनेपर रख दिये और बड़ी मुश्किलसे अपनी खाटकी पाटी पकड़कर लुढ़क गया।

चन्दा झूठ बोली ! पर क्यों ? कड़े आज तक छिपाये रही। उसने इतना बड़ा दुराव क्यों किया ? आखिर क्यों ? किसलिए ? और जगपती-का दिल भारी हो आया। उसे फिर लगा कि उसका शरीर सिमटता जा रहा है और वह एक सीकका बना ढाँचा रह गया""नितान्त हलका, तिनके-सा, हवामें उड़कर भटकनेवाले तिनके-सा।

उस रातके बाद रोज जगपती सोचता रहा कि चन्दासे कड़े माँगकर बेच ले और कोई छोटा-मोटा कारबार ही शुरू कर दे, क्योंकि नौकरी छूट चुकी थी। इतने दिनकी गैरहाजिरीके बाद वकील साहबने दूसरा मुहर्रिर रख लिया था। वह रोज यही सोचता। पर जब चन्दा सामने आती, तो न जाने कैसी असहाय-सी उसकी अवस्था हो जाती। उसे लगता, जैसे कड़े माँगकर वह चन्दासे पत्नीत्वका पद भी छीन लेगा। मातृत्व तो भगवान्‌ने छीन ही लिया""वह सोचता, आखिर चन्दा क्या रह जायेगी ? एक स्त्रीसे यदि पत्नीत्व और मातृत्व छीन लिया गया, तो उसके जीवनकी सार्थकता ही क्या ? चन्दाके साथ वह यह अन्याय कैसे करे ? उससे दूसरी आँखकी रोशनी कैसे माँग ले ? फिर तो वह नितान्त अन्धी हो जायेगी। और उन कड़ोंको माँगनेके पीछे जिस इतिहासकी आत्मा नंगी हो जायेगी, कैसे वह उस लज्जाको स्वयं ही उघारकर ढाँकेगा ?

और वह इन्हीं खयालोंमें डूबा सुबहसे शाम तक इधर-उधर कामकी टोहमें घूमता रहता। किसीसे उधार ले ले ? पर किस सम्पत्तिपर ? क्या है उसके पास, जिसके आधारपर कोई उसे कुछ देगा ? और मुहल्लेके लोग""जो एक-एक पाईपर जान देते हैं, कोई चीज खरीदते वक्त भावमें एक पैसा कम मिलनेपर मीलों पैदल जाकर एक पैसा बचाते हैं। एक-एक पैसेकी मसालेकी पुड़िया बँधवाकर ग्यारह बार पैसोंका हिसाब जोड़-कर एक-आध पैसा उधार कर, मिन्नतें करके सौदा घर लाते हैं। गलीमें

कोई खोंचेवाला फँस गया, तो दो पैसेकी चीजको लड़-झगड़कर—चार दाने ज्यादा पानेकी नीयतमें—दो जगह बँधवाते हैं। भावके ज़र पर घण्टों बहस करते हैं। शामको सड़ी-गली तरकारियोंको ि कारण लाते हैं, ऐसे लोगोंसे किस मुँहसे माँगकर वह उनको अहसानपर ठोकर लगाये !

पर उस दिन शामको जब वह घर पहुँचा, तो बरोठेमें साइकिल रखी नज़र आयी। दिमाग़पर बहुत ज़ोर डालनेके ब वह आगन्तुककी कल्पना न कर पाया। भीतरवाले दरवाज़ेपर जब प तो सहसा हँसीकी आवाज़ सुनकर ठिठक गया। उस हँसीमें एक अ सा उन्माद था। और उसके बाद चन्दाका स्वर—

"अब आते ही होंगे, बैठिए न दो मिनिट और !····अपनी आँ देख लीजिए और उन्हें समझाते जाइए कि अभी तन्दुरुस्ती इस लाय नहीं, जो दिन-दिन-भर घूमना बरदाश्त कर सकें।"

"हाँ····भई, कमज़ोरी इतनी जल्दी नहीं मिट सकती, ख़याल नही करेंगे, तो नुकसान उठायेंगे !" कोई पुरुष स्वर था यह।

जगपती असमंजसमें पड़ गया। वह एकदम भीतर घुस जाये? इसमें क्या हर्ज है? पर जब उसने पैर उठाये, तो वे बाहरको जा रहे थे। बाहर बरोठेमें साइकिलको पकड़ते ही उसे सूझ आयी, वहींसे जैसे अनजान बनता बड़े प्रयत्नसे आवाज़को खोलता चिल्लाया, "अरे चन्दा ! यह साइकिल किसकी है? कौन मेहरबान····"

चन्दा उसकी आवाज़ सुनकर कमरेसे बाहर निकलकर जैसे खुश-खबरी सुना रही थी, "अपने कम्पाउण्डर साहब आये हैं, खोजते-खोजते आज घरका पता पाये हैं, तुम्हारे इन्तज़ारमें बैठे हैं !"

"कौन बचनसिंह ?····अच्छा····अच्छा। वही तो मैं कहूँ, भला कौन····"—कहता जगपती पास पहुँचा। और बातोंमें इस तरह उलझ गया, जैसे सारी परिस्थिति उसने स्वीकार कर ली हो।

बचनसिंह जब फिर आनेकी बात कहकर चला गया, तो चन्दाने बहुत अपनेपनमें जगपतीके सामने बात शुरू की, "जाने कैसे-कैसे आदमी होते हैं…"

"क्यों, क्या हुआ ? कैसे होते हैं आदमी ?"—जगपतीने पूछा।

"इतनी छोटी जान-पहचानमें तुम मरदोंके घरमें न रहते घुसकर बैठ सकते हो ? तुम तो उलटे पैरों लौट आओगे।"—चन्दा कहकर जगपतीके मुखपर कुछ इच्छित प्रतिक्रिया देख सकनेके लिए गहरी निगाहोंसे ताकने लगी।

जगपतीने चन्दाकी ओर ऐसे देखा, जैसे यह बात भी कहनेकी या पूछनेकी है ! फिर बोला, "बचनसिंह अपनी तरहका आदमी है, अपनी तरहका अकेला…"

"होगा…पर…" कहते-कहते चन्दा रुक गयी।

"आड़े वक्त काम आनेवाला आदमी है, लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है…उतना…मेरा मतलब है कि…जिससे कुछ लिया जायेगा, उसे दिया भी तो जायेगा।" जगपतीने आँखें दीवारपर गड़ाते हुए कहा।

और चन्दा उठकर चली गयी।

उस दिनके बाद बचनसिंह लगभग रोज ही आने-जाने लगा। जगपती उसके साथ इधर-उधर घूमता भी रहता। बचनसिंहके साथ वह अक्सर रहता, अजीब-सी घुटन उसके दिलको बाँध लेती, और तभी जीवनकी तमाम विषमताएँ भी उसकी निगाहोंके सामने उभरने लगतीं, आखिर वह स्वयं एक आदमी है…बेकार…यह माना कि उसके सामने पेट पालनेकी कोई इतनी विकराल समस्या नहीं, वह भूखों नहीं मर रहा है, जाड़ेमें काँप नहीं रहा है, पर उसके दो हाथ-पैर हैं…शरीरका पिंजरा है जो कुछ माँगता है…कुछ ! और वह सोचता, यह कुछ क्या

है ? सुख ? शायद हाँ, शायद नहीं। वह तो दुःखमें भी
आदी है, अभावोंमें जीवित रह सकनेवाला आश्चर्यजनक
फिर····वासना ? शायद हाँ, शायद नहीं। चन्दाका शरीर
उस क्षणिकताको भी देखा है। तो फिर धन ?····शायद
नहीं। उसने धनके लिए अपनेको खपाया है। पर वह
अदृश्य प्यासको बुझा नहीं पाया। तो फिर ?····तो फिर
कुछ क्या है, जो उसकी आत्मामें नासूर-सा रिसता रहता है,
नार माँगता है ? शायद काम ! हाँ, यही, बिलकुल यही, जो
की घड़ियोंको निपट सूना न छोड़े, जिसमें वह अपनी शक्ति
अपना मन डुबो सके, अपनेको सार्थक अनुभव कर सके, चाहे
या दुःख, अरक्षा हो या सुरक्षा, शोषण हो या पोषण····उसे
चाहिए ! करनेके लिए कुछ चाहिए। यही तो उसकी प्रकृत
है, पहली और आखिरी माँग है, क्योंकि वह उस घरमें नहीं
जहाँ सिर्फ जबान हिलाकर शासन करनेवाले होते हैं। वह उ
नहीं पैदा हुआ, जहाँ सिर्फ माँगकर जीनेवाले होते हैं। वह उ
जो सिर्फ काम करना जानता है, काम ही जिसकी आस है
काम चाहता है, काम !····

और एक दिन उसकी काम-धामकी समस्या भी हल हो गयी
वाले ऊँचे मैदानके दक्षिण ओर जगतीकी लकड़ीकी टाल खुल ग
गया। टालकी जमानपर लक्ष्मी-पूजन भी हो गया और हवन
लकड़ीकी कोई कमी नहीं थी। गाँवोंसे आनेवाली गाड़ियोंका,
बागमें घेरे हुए आदमियोंकी मदद्म मोल-तोल करवाके वहीं
गया। घाटें एक ओर रखी गयी, भैंसोंका भट्टा करीनेसे लग
मुँहे चीरनेके लिए डाल दिये गये। दो-तीन गाड़ियोंका घोड़ा
चालू कर दी गयी। भविष्यमें स्वयं पेड़ खरीदकर कटानेका
गया। बड़ी-बड़ी स्कीमें बनीं कि किस तरह बजानेकी लकड़ी

जाते एक दिन इमारती लकड़ीकी कोठी बनेगी। चीरनेकी नयी मशीन लगेगी। कारबार बढ़ जानेपर बचनसिंह भी नौकरी छोड़कर उसीमें लग जायेगा। और उसने महसूस किया कि वह काममें लग गया है, अब चौबीसों घण्टे उसके सामने काम है····उसके समयका उपयोग है। दिन-भरमें वह एक घण्टेके लिए किसीका मित्र हो सकता है, कुछ देरके लिए वह पति हो सकता है, पर बाकी समय? दिन और रातके बाकी घण्टे···· उन घण्टोंके अभावको सिर्फ़ उसका अपना काम ही भर सकता है····और अब वह कामदार था····

वह कामदार तो था, लेकिन जब टालकी उस ऊँची जमीनपर पड़े छप्परके नीचे तख्तपर वह गल्ला रखकर बैठता, सामने लगे लकड़ियोंके ढेर, कटे हुए पेड़के तने, जड़ोंको सूखता हुआ देखता, तो एक निरीहता बरबस उसके दिलको बाँधने लगती। उसे लगता, एक व्यर्थ पिशाचका शरीर टुकड़े-टुकड़े करके उसके सामने डाल दिया गया है।····फिर इसपर और कुल्हाड़ी चलेगी और इनके रेशे-रेशे अलग हो जायेंगे और तब इनकी ठठरियोंको सुखाकर किसी पैसेवालेके हाथ तकपर तौलकर बेच दिया जायेगा।

और तब उसकी निगाहें सामने खड़े ताड़पर अटक जातीं, जिसके बड़े-बड़े पत्तोंपर सुर्ख गरदनवाले गिद्धर फड़फड़ाकर देर तक खामोश बैठे रहते। ताड़का काला खुरदरा तना····और उसके सामने ठहरी हुई वायुमें निरुद्देश्य काँपती, भारहीन नीमकी पत्तियाँ चकराती झरती रहतीं····धूल-भरी धरतीपर लकड़ीकी गाड़ियोंके पहियोंकी पड़ी हुई लीक धूँधली-सी चमक उठती और बाग़वाले मुँगरलोंके पेचकी एकदम गरगराती आवाज कानोंमें भरने लगती। बग़लवाली कच्ची पगडण्डीसे कोई गुजरकर, टालके सामनेसे तालाबकी नीचाईमें उतर जाता, जिसके गंदले पानीमें कूड़ा तैरता रहता और सुअर कीचड़में मुँह डालकर उस कूड़ेको खोदते रहते····

दोपहर सिमटती और शामकी धुन्ध छाने लगती, तो वह लालटेन जलाकर छप्परके खम्भेकी कीलमें टांग देता और उसके थोड़ी ही देर बाद अस्पतालवाली सड़कसे बचनसिंह एक काले धब्बेकी तरह आता दिखाई पड़ता।

गहरे पड़ते अँधेरेमें उसका आकार धीरे-धीरे बढ़ता जाता और जगपतीके सामने जब वह आकर खड़ा होता, तो वह उसे बहुत विशाल-सा लगने लगता, जिसके सामने उसे अपना अस्तित्व डूबता महसूस होता।

एक-आध बिक्रीकी बातें होतीं और तब दोनों घरकी ओर चल देते। घर पहुँचकर बचनसिंह कुछ देर जरूर रुकता, बैठता, इधर-उधरकी बातें करता। कभी मौका पड़ जाता, तो जगपती और बचनसिंहकी थाली भी साथ लग जाती। चन्दा सामने बैठकर दोनोंको खिलाती।

बचनसिंह बोलता जाता, "क्या तरकारी बनी है! मसाला ऐसा पड़ा है कि उसकी भी बहार है और तरकारीका सवाद भी नहीं मरा। होटलों-में या तो मसाला-ही-मसाला रहेगा या सिरफ तरकारी-ही-तरकारी। वाह! वाह! क्या बात है अन्दाजकी!"

और चन्दा बीच-बीचमें टोककर बोलती जाती, "इन्हें तो जब तक दालमें प्याजका भुना घी न मिले, तबतक पेट ही नहीं भरता।"

या—"सिरका अगर इन्हें मिल जाये, तो समझो, सब-कुछ मिल गया। पहले मुझे सिरका न जाने कैसा लगता था, पर अब ऐसा जबान-पर चढ़ा है कि...."

या—"इन्हें कागज-सी पतली रोटी पसन्द ही नहीं आती। अब मुझसे कोई पतली रोटी बनानेको कहे, तो बनती ही नहीं, आदत पड़ गयी है, और फिर मन ही नहीं करता...."

पर चन्दाकी आँखें बचनसिंहकी थालीपर ही जमी रहतीं। रोटी निबटी, तो रोटी परोस दी, दाल खतम नहीं हुई, तो भी एक चमचा और परोस दी।

और जगपती सिर झुकाये खाता रहता। सिर्फ एक गिलास पानी माँगता और चन्दा चौंककर पानी देनेके पहले कहती, "अरे, तुमने तो कुछ लिया भी नहीं।"—कहते-कहते वह पानी दे देती और तब उसके दिलपर गहरी-सी चोट लगती, न जानें क्यों वह खामोशीकी चोट उसे बड़ी पीड़ा दे जाती''''पर वह अपनेको समझा लेती, कोई मेहमान तो नहीं हैं''''माँग सकते थे। भूख नहीं होगी।

जगपती खाना खाकर टालपर लेटने चला जाता, क्योंकि अभीतक कोई चौकीदार नहीं मिला था। छप्परके नीचे तखतपर जब वह लेटता, तो अनायास ही उसका दिल भर-भर आता। पता नहीं, कौन-कौन-से दर्द एक-दूसरेसे मिलकर तरह-तरहकी टीस, चटख और ऐंठन पैदा करने लगते। कोई एक रग दुखती तो वह सहलाता भी, जब सभी नसें चटखती हों तो कहाँ-कहाँ राहतका अकेला हाथ सहलाये!

लेटे-लेटे उसकी निगाह ताड़के उस ओर बनी पुख्ता कब्रपर जम जाती, जिसके सिरहाने कँटीला बबूलका एकाकी पेड़ सुन्न-सा खड़ा रहता। जिस कब्रपर एक परदानशीन औरत बड़े लिहाज़से आकर सवेरे-सवेरे बेला और चमेलीके फूल चढ़ा जाती''''घूम-घूमकर उसके फेरे लेती और माथा टेककर कुछ कदम उदास-उदास-सी चलकर एकदम तेज़ीसे मुड़कर बिसातियोंके मुहल्लेमें खो जाती। शाम होते फिर आती। एक दिया बारती और अगरकी बत्तियाँ जलाती। फिर मुड़ते हुए ओढ़नीका पल्ला कन्धोंपर डालती, तो दियेकी लौ काँपती, कभी काँपकर बुझ जाती, पर उसके कदम बढ़ चुके होते, पहले धीमे, थके, उदास-से और फिर तेज, सधे, सामान्यसे। और वह फिर उसी मुहल्लेमें खो जाती और तब रातकी तनहाइयोंमें''''बबूलके काँटोंके बीच, उस साँय-साँय करते ऊँचे-नीचे मैदानमें जैसे उस कब्रसे कोई रूह निकलकर निपट अकेली भटकती रहती।''''

तभी ताड़पर बैठे सुर्ख गरदनवाले गिद्ध मनहूस-सी आवाज़में किलबिला उठते और ताड़के पत्ते भयानकतासे खड़बड़ा उठते। जगपतीका बदन काँप

जाता और वह भटकती कह जिन्दा रह सकनेके लिए जैसे कफ़की टोपें बबूलके साया-तले दुबक जाती। जगपती अपनी टाँगोंको पेटसे भींचकर कम्बलसे मुँह छिपा औंधा लेट जाता।

तड़के ही टेकेपर लगे लकड़हारे लकड़ी चीरने आ जाते। तब जगपती कम्बल लपेट, घरकी ओर चला जाता...

"राजा रोज सवेरे टहलने जाते थे," माँ सुनाया करती थी, "एक दिन जैसे ही महलके बाहर निकलकर आये कि सड़कपर झाड़ू लगानेवाली मेहतरानी उन्हें देखते ही अपना झाड़ू-पंजा पटककर माथा पीटने लगी, और कहने लगी, 'हाय राम ! आज राजा निरबंसियाका मुँह देखा है, न जाने रोटी भी नसीब होगी कि नहीं...न जाने कौन-सी बिपत टूट पड़े!' राजाको इतना दुःख हुआ कि उलटे पैरों महलको लौट गये। मन्त्रीको हुकुम दिया कि उस मेहतरानीका घर नाजसे भर दें। और सब राजसी वस्त्र उतार, राजा उसी क्षण जंगलकी ओर चले गये। उसी रात रानीको सपना हुआ कि कलकी रात तेरी मनोकामना पूरी करनेवाली है। रानी बहुत पछता रही थी। पर फ़ौरन ही रानी राजाको खोजती-खोजती उस समयमें पहुँच गयी, जहाँ वह टिके हुए थे। रानी भेष बदलकर सेवा करनेवाली भठियारिन बनकर राजाके पास रातमें पहुँची। रात-भर उनके साथ रही और सुबह राजाके जागनेसे पहले सराय छोड़ महलमें लौट गयी। राजा सुबह उठकर दूसरे देशकी ओर चल गये। दो ही दिनोंमें राजाके निकल जानेकी खबर राज-भरमें फैल गयी, राजा निकल गये, चारों तरफ़ यही खबर थी..."

और उस दिन टोले-मुहल्लेके हर आँगनमें बरसातके मेंहकी तरह यह खबर बरसकर फैल गयी कि चन्दाके बाल-बच्चा होनेवाला है।

नुक्कड़पर जमुना सुनारकी कोठरीमें फिकती सुरही रुक गयी। मुंशीजीने अपना मीजान लगाना छोड़ विस्फारित नेत्रोंसे ताककर खबर सुनी। बंसी किरानेवालेने कुएँमें-से आधी गयी रस्सी खींच, डोल मनपर

पटककर सुना। सुदर्शन दरजीने मशीनके पहिएको हथेलीसे रगड़कर रोक-कर सुना। हंसराज पंजाबीने अपनी नील लगी मलगुजी कमीजकी आस्तीनें चढ़ाते हुए सुना। और जगपतीकी बेवा चाचीने औरतोंके जमघटमें बड़े विश्वास, पर भेद-भरे स्वरमें सुनाया—"आज छह साल हो गये शादी-को""न बाल, न बच्चा""न जाने किसका पाप है उसके पेटमें!""और किसका होगा सिवा उस मुसटण्डे कम्पोटरके! न जाने कहाँसे कुल-च्छनी इस मुहल्लेमें आ गयी!""इस गलीकी तो पुश्तोंसे ऐसी मरजाद रही है कि ग़ैर मरद औरतकी परछाईं तक नहीं देख पाये। यहाँके मरद तो बस अपने घरकी औरतोंको जानते हैं, उन्हें तो पड़ोसीके घरकी जनानोंकी गिनती तक नहीं मालूम!" यह कहते-कहते उनका चेहरा तमतमा आया और सब औरतें देवलोककी देवियोंकी तरह गम्भीर बनी, अपनी पवित्रता-की महानताके बोझसे दबी धीरे-धीरे खिसक गयीं।

सुबह यह ख़बर फैलनेसे पहले जगपती टालपर चला गया था। पर सुनी उसने भी आज ही थी। दिन-भर वह तख़्तपर कोनेकी ओर मुँह किये पड़ा रहा। न ठेकेकी लकड़ियाँ चिरवायीं न बिक्रीकी ओर ध्यान दिया, न दोपहरका खाना खाने ही घर गया। जब रात अच्छी तरह फैल गयी तो वह एक हिंसक पशुकी भाँति उठा। उसने अपनी उँगलियाँ चटकायीं, मुट्ठी बाँधकर बाँहका ज़ोर देखा, तो नसें तनीं और बाँहमें कठोर कम्पन-सा हुआ। उसने तीन-चार पूरी साँसें खींचीं और मज़बूत क़दमोंसे घरकी ओर चल पड़ा। मैदान ख़त्म हुआ""कंकड़की सड़क आयी""सड़क ख़त्म हुई, गली आयी। पर गलीके अँधेरेमें घुसते वह सहम गया, जैसे किसीने अदृश्य हाथोंसे उसे पकड़कर सारा रक्त निचोड़ लिया, उसकी फटी हुई शक्तिकी नसपर हिम-शीतल होंठ रखकर सारा रस चूस लिया। और गलीके अँधेरेकी हिकारत-भरी कालिख और भी भारी हो गयी, जिसमें घुसनेसे उसकी साँस रुक जायेगी""घुट जायेगी।

वह पीछे मुड़ा, पर रुक गया। फिर कुछ संयत होकर वह चोरोंकी

तरह निःशब्द क़दमोंसे किसी तरह घरकी भीतरी देहरी तक पहुँच गया।

दायीं ओरकी रसोईवाली दहलीजमें कुप्पी टिमटिमा रही थी और चन्दा अस्त-व्यस्त-सी दीवारसे सिर टेके शायद आसमान निहारते-निहारते सो गयी थी। कुप्पीका प्रकाश उसके आधे चेहरेको उजागर किये था और आधा चेहरा गहन कालिमामें डूबा अदृश्य था।

वह खामोशीसे खड़ा ताकता रहा। चन्दाके चेहरेपर नारीत्वकी प्रौढ़ता आज उसे दिखाई दी। चेहरेकी सारी कमनीयता न जाने कहाँ खो गयी थी, उसका अछूतापन न जाने कहाँ लुप्त हो गया था। फूला-फूला मुख। जैसे टहनीसे तोड़े फूलको पानीमें डालकर ताज़ा किया गया हो, जिसकी पंखुरियोंमें टूटनकी सुरमई रेखाएँ पड़ गयी हों, पर भीगनेसे भारीपन आ गया हो।

उसके खुले पैरपर उसकी निगाह पड़ी, तो सूना-सा लगा। एड़ियाँ भरी, सूनी-सी और नाखूनोंके पास अजब-सा सूखापन। जगपतीका दिल एक बार मसोस उठा। उसने चाहा कि बढ़कर उसे उठा ले। अपने हाथोंसे उसका पूरा शरीर छू-छूकर सारा कलुष पोंछ दे, उसे अपनी साँसोंकी अग्निमें तपाकर एक बार फिर उसे पवित्र कर ले। और उसकी आँखोंकी गहराईमें झाँककर कहे—देवलोकसे किस शापवश निर्वासित हो तुम इधर आ गयीं, चन्दा ? यह शाप तो अमिट था।

तभी चन्दाने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं। जगपतीको सामने देख उसे लगा कि वह एकदम नंगी हो गयी हो। अतिशय लज्जित हो उसने अपने पैर समेट लिये। घुटनोंसे धोती नीचे सरकायी और बहुत पवन-सी उठकर रसोईके अँधेरेमें आ गयी।

जगपती एकदम हताश हो, वहीं कमरेकी दहलीजपर चौखटसे सिर टिका बैठ गया। नज़र कमरेमें गयी, तो लगा कि दरवाजे चार वहाँ पुते रहे हैं, जिनमें चन्दाका भी एक है। हर तरफ़, घरके हर कोनेसे, अँधेरा भेड़ियेकी तरह बढ़ता आ रहा था……एक अजीब निस्तब्धता……सहसा !

गति, पर पथभ्रष्ट ! दावलें, पर आकारहीन।

"खाना खा लेते,"—चन्दाका स्वर कानोंमें पड़ा। वह अनजाने ऐसे उठ बैठा, जैसे तैयार बैठा हो। उसकी बातकी आज तक उसने अवज्ञा न की थी। खाने तो बैठ गया, पर कौर नीचे नहीं सरक रहा था। तभी चन्दाने बड़े सधे शब्दोंमें कहा, "कल मैं गाँव जाना चाहती हूँ।"

जैसे वह इस सूचनासे परिचित था, बोला, "अच्छा।"

चन्दा फिर बोली, मैंने बहुत पहले घर चिट्ठी डाल दी थी, भैया कल लेने आ रहे हैं।"

"तो ठीक है,"—जगपती वैसे ही डूबा-डूबा बोला।

चन्दाका बाँध टूट गया और वह वहीं घुटनोंमें मुँह दबाकर कातर-सी फफक-फफककर रो पड़ी। न उठ सकी, न हिल सकी।

जगपती क्षण-भरको विचलित हुआ, पर जैसे जम जानेके लिए। उसके होठ फड़के और क्रोधके ज्वालामुखीको जबरन दबाते हुए भी वह फूट पड़ा, "यह सब मुझे क्या दिखा रही है? बेशर्म! बेग़ैरत!""उस वक़्त नहीं सोचा था, जब""जब""मेरी लाश-तले"""

"तब""तबकी बात झूठ है""," सिसकियोंके बीच चन्दाका स्वर फूटा, "लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया""

एक भरपूर हाथ चन्दाकी कनपटीपर आग सुलगाता पड़ा। और जगपती अपनी हथेली दूसरीमें दाबता, खाना छोड़ कोठरीमें घुस गया। और रात-भर कुण्डी चढ़ाये उसी कालिखमें घुटता रहा।

दूसरे दिन चन्दा घर छोड़ अपने गाँव चली गयी।

जगपती पूरा दिन और रात टालपर ही काट देता, उसी बीरानेमें, तालाबके बग़ल, क़ब्र, बबूल और ताड़के पड़ोसमें। पर मन मुरदा हो गया था। जबरदस्ती वह अपनेको वहीं रोके रहता।""उसका दिल होता, कहीं निकल जाये। पर ऐसी कमज़ोरी उसके तन और मनको

खोखला कर गयी थी कि चाहनेपर भी वह जा न पाता। हिकारत-भ
नजरें सहता, पर वहीं पड़ा रहता। काफ़ी दिनों बाद जब नहीं रहा गय
तो एक दिन जगपती घरपर ताला लगा, नजदीकके गाँवमें लकड़ी कटा
चला गया। उसे लग रहा था कि अब वह पंगु हो गया है, बिलकु
लँगड़ा, एक रेंगता कीड़ा, जिसके न आँख है, न कान, न मन, न इच्छा

वह उस बाग़में पहुँच गया, जहाँ खरीदे पेड़ कटने थे। दो आरेवाले
ने पतले पेड़के तनेपर आरा रखा और कर्र-कर्रका अबाध शोर शुरू ह
गया। दूसरे पेड़पर बन्ने और ठकुरेकी कुल्हाड़ी बज उठी। और गाँवसे
दूर उस बागमें एक लयपूर्ण शोर शुरू हो गया। जड़पर कुल्हाड़ी पड़ने
तो पूरा पेड़ थर्रा जाता।

करीबके खेतकी मेड़पर बैठे जगपतीका शरीर भी जैसे काँप-काँप
उठता। चन्दाने कहा था, 'लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया....' क्या
वह ठीक कहती थी? क्या बचनसिहने टालके लिए जो रुपये दिये थे,
उसका ब्याज इधर चुकता हुआ? क्या सिर्फ वही रुपये आग बन गये,
जिसकी आँचमें उसकी सहनशीलता, विश्वास और आदर्श मोम-से पिघल
गये।

"ठ....कुरे!"—बाग़से लगे दड़ेपर-से किसीने आवाज लगायी।
ठकुरेने कुल्हाड़ी रोककर वहींसे हाँक लगायी, "कोनेके खेतसे लीक बनी
है, जरा मेड़ मारकर नँघा ला गाड़ी।"

जगपतीका ध्यान भंग हुआ। उसने मुड़कर दड़ेपर आँखें गड़ायीं।
दो भैंसा गाड़ियाँ लकड़ी भरनेके लिए आ पहुँची थीं। ठकुरेने जगपतीके
पास आकर कहा, "एक गाड़ीका भर्त तो हो गया, बल्कि डेढ़का....अब
इस पतरिया पेड़को न छाँट दें?"

जगपतीने उस पेड़की ओर देखा, जिसे काटनेके लिए ठकुरेने इशारा
किया था, पेड़की शाख हरी पत्तियोंसे भरी थी। वह बोला, "अरे यह
तो हरा है अभी....इसे छोड़ दो।"

"हरा होनेसे क्या, उखट तो गया है। न फूलका, न फलका। अब कौन इसमें फल-फूल आयेंगे, चार दिनमें पत्ते झरा जायेंगी।" ठाकुरने पेड़को ओर देखते हुए उस्तादी अन्दाजसे कहा।

"जैसा ठीक समझो तुम,"—जगपतीने कहा, और उठकर मेड़-मेड़ पक्के कुएँपर पानी पीने चला गया।

दोपहर ढलते गाड़ियाँ भरकर तैयार हुईं और शहरको ओर रवाना हो गयीं। जगपतीको उनके साथ आना पड़ा। गाड़ियाँ लकडीसे लदी शहरकी ओर चली जा रही थीं और जगपती गरदन झुकाये कच्ची सड़कको धूलमें डूबा, भारी कदमोंसे धीरे-धीरे उन्हींकी बजती घण्टियोंके साथ निर्जीव-सा बढ़ता जा रहा था····

"कई बरस बाद राजा परदेससे बहुत-सा धन कमाकर गाड़ीमें लादकर अपने देसकी ओर लौटे," माँ सुनाया करती थी, "राजाकी गाड़ीका पहिया महलसे कुछ दूर पतेलकी झाड़ीमें उलझ गया। हर तरह कोशिश की, पर पहिया न निकला। तब एक पण्डितने बताया कि 'सकट' के दिनका जनमा बालक अगर अपने घरकी सुपारी लाकर इसमें छुआ दे, तो पहिया निकल जायेगा। वहीं दो बालक खेल रहे थे। उन्होंने यह सुना तो कूदकर पहुँचे और कहने लगे कि हमारी पैदाइश सकटकी है, पर सुपारी तब लायेंगे, जब तुम आधा धन देनेका वादा करो। राजाने बात मान ली। बालक दौड़े-दौड़े घर गये। सुपारी लाकर छुआ दी, फिर घरका रास्ता बताते आगे-आगे चले। आखिर गाड़ी महलके सामने उन्होंने रोक ली।

राजाको बड़ा अचरज हुआ कि हमारे ही महलमें ये बालक कहाँसे आ गये? भीतर पहुँचे, तो रानी खुशीसे बेहाल हो गयी।

पर राजाने पहले उन बालकोंके बारेमें पूछा, तो रानीने कहा कि ये दोनों बालक उन्हींके राजकुमार हैं। राजाको विश्वास नहीं हुआ। रानी बहुत दुःखी हुई।"

का शरम-लिहाज !"

"अपना कहकर किस मुँहसे माँगू, बाबा ? हर तरफ़ तो क़र्ज़से दवा हूँ। तनसे, मनसे, पैसेसे, इज्ज़तसे, किसके बलपर दुनिया सँजोनेकी कोशिश करूँ ?"—कहते-कहते वह अपनेमें खो गया।

मुंशीजी वहीं बैठ गये। जब रात झुक आयी तो जगपतीके साथ ही मुंशीजी भी उठे। उसके कन्धेपर हाथ रखे वह उसे गली तक लाये। अपनी कोठरी आनेपर पीठ सहलाकर उन्होंने उसे छोड़ दिया। वह गरदन झुकाये गलीके अँधेरेमें उन्हीं खयालोंमें डूबा ऐसे चलता चला आया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पर कुछ ऐसा बोझ था, जो न सोचने देता था और न समझने। जब चाचीकी बैठकके पाससे गुज़रने लगा, तो सहसा उसके कानोंमें भनक पड़ी—"आ गये सत्यानासी ! कुलबोरन !"

उसने ज़रा नज़र उठाकर देखा, तो गलीकी चाची-भौजाइयाँ बैठकमें जमा थीं और चन्दाकी ही चर्चा छिड़ी थी। पर वह चुपचाप निकल गया।

इतने दिनों बाद ताला खोला और बरोठेके अँधेरेमें कुछ सूझ न पड़ा, तो एकाएक वह रात उसकी आँखोंके सामने घूम गयी जब वह अस्पतालसे चन्दाके साथ लौटा था। वेवा चाचीका वह ज़हरबुझा तीर, 'आ गये राजा निरबंसिया अस्पतालसे।' और आज सत्यानासी ! कुलबोरन ! और स्वयं उसका वह वाक्य, जो चन्दाको छेद गया था, 'तुम्हारे कभी कुछ न होगा''''!' और उस रातकी शिशु चन्दा !

चन्दाके लड़का हुआ है।''''वह कुछ और जनती आदमीका बच्चा न जनती !''''वह और कुछ भी जनती, कंकड़ पत्थर ! वह नारी न बनती, बच्ची ही बनी रहती, उस रातकी शिशु चन्दा ! पर चन्दा यह सब क्या करने जा रही है ? उसके जीते-जी वह दूसरेके घर बैठने जा रही है ? कितने बड़े पापमें ढकेल दिया चन्दाको ''पर उसे भी तो कुछ सोचना चाहिए ! आखिर क्या ? पर मेरे जीते-जी तो यह सब अच्छा

नहीं। वह इतनी घृणा बरदाश्त करके भी जीनेको तैयार है! या मुझे जलानेको? वह मुझे नीच समझती है, कायर""नहीं तो एक बार खबर तो लेती। बच्चा हुआ, तो पता तो लगता। पर नहीं, वह उसका कौन है? कोई भी नहीं! औलाद ही तो वह स्नेहकी धुरी है, जो आदमी-औरतके पहियोंको साधकर तनके दलदलसे पार ले जाती है""नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासनाका कीड़ा। तो क्या चन्दा""औरत नहीं रही? वह जरूर औरत थी, पर स्वयं मैंने उसे नरकमें डाल दिया! वह बच्चा मेरा कोई नहीं पर चन्दा तो मेरी है। एक बार उसे ले आता फिर यहीं""रातके मोहक अँधेरेमें उसके फूलसे अधरोंको देखता""निर्द्वन्द्व सोये पलकोंको निहारता""साँसोंकी दूध-सी अछूती महकको समेट लेता""

आजका अँधेरा! घरमें तेल भी नहीं, जो दिया जला ले। और फिर किसके लिए कौन जलाये? चन्दाके लिए""पर उसे तो उसने बेच दिया था। सिवा चन्दाके कौन-सी सम्पत्ति उसके पास थी, जिसके आधारपर कोई कर्ज देता। क़र्ज न मिलता, तो यह सब कैसे चलता? काम""पेट कहाँसे कटते? और तब शकूरेके वे शब्द उसके कानोंमें गूँज गये, 'हरा होनेसे क्या, उखट तो गया है""' वह स्वयं भी तो एक उखटा हुआ पेड़ है, न फलका न फूलका, सब व्यर्थ ही तो है। जो कुछ सोचा, उसपर कभी विश्वास न कर पाया। चन्दाको चाहता रहा, पर उसके दिलमें चाहत न जगा पाया। उसे कहींसे एक पैसा माँगनेपर डाँटता रहा, पर खुद देता रहा और आज""वह दूसरेके घर बैठ रही है""उसे छोड़कर"" वह अकेला है,""हर तरफ़ बोझ है, जिसमें उसकी नस-नस कुचली जा रही है, रग-रग फट गयी है।""और वह किसी तरह टटोल-टटोलकर भीतर घरमें पहुँचा""

"रानी अपने कुल-देवताके मन्दिरमें पहुँचीं,"—माँ सुनाया करती थी,

"अपने सतीत्वको सिद्ध करनेके लिए उन्होंने घोर तपस्या की। राजा देखते रहे! कुल-देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवी शक्तिसे दोनों बालकोंको तत्काल-जनमे शिशुओंमें बदल दिया। रानीकी छातियोंमें दूध भर आया और उनमें-से धार फूट पड़ी, जो शिशुओंके मुँहमें गिरने लगी। राजाको रानीके सतीत्वका सबूत मिल गया। उन्होंने रानीके चरण पकड़ लिये और कहा कि तुम देवी हो! ये मेरे पुत्र हैं! और उस दिनसे राजाने फिरसे राजकाज सँभाल लिया...."

पर उसी रात जगपती अपना सारा कारबार त्याग, अफ़ीम और तेल पीकर मर गया। क्योंकि चन्दाके पास कोई दैवी शक्ति नहीं थी और जगपती राजा नहीं, बचनसिंह कम्पाउण्डरका क़र्ज़दार था!....

"राजाने दो बातें कीं," माँ सुनाती थीं, "एक तो रानीके नामसे उन्होंने बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया और दूसरे राजाके नये सिक्कोंपर बड़े राजकुमारका नाम खुदवाकर चालू किया जिसमें राज-भरमें अगले उत्तराधिकारीकी खबर हो जाये...."

जगपतीने मरते वक़्त दो परचे छोड़े, एक चन्दाके नाम, दूसरा क़ानून-के नाम।

चन्दाको उसने लिखा था—चन्दा, मेरी अन्तिम चाह यही है कि तुम बच्चेको लेकर चली आना....अभी एक-दो दिन मेरी लाशकी दुर्गति होगी, तबतक तुम आ सकोगी। चन्दा आदमीको पाप नहीं पश्चात्ताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चेको लेकर ज़रूर चली आना।

क़ानूनको उसने लिखा था—किसीने मुझे मारा नहीं है....किसी आदमीने नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरे ज़हरकी पहचान करनेके लिए मेरा सीना चीरा जायेगा। उसमें ज़हर है। मैंने अफ़ीम नहीं, रुपये खाये हैं, उन

रुपयोंमें क़र्ज़का जहर था, उसीने मुझे मारा है। मेरी लाश तबतक न जलायी जाये, जबतक चन्दा बच्चेको लेकर न आ जाये। आग बच्चेसे दिलवायी जाये। बस।

माँ जब कहानी समाप्त करती थीं, तो आस-पास बैठे बच्चे फूल चढ़ाते थे। मेरी कहानी भी ख़त्म हो गयी, पर''''

●

तीन दिन पहलेकी रात

मेरे घर आने-जानेवालोंकी कमी नहीं थी। शामका वक़्त इसीमें चला जाता। दिवाकर आता था, पर उसका आना धीरे-धीरे कम हो गया। उन दिनों जितेन बहुत आता था और फिर उसके बाद अमर। वे सब बातें मुझे याद आती हैं। यदि मैं अपने पिछले क्षणोंमें वापस लौट सकती तो कितना अच्छा होता!

आज सोचती हूँ तो मन भर-भर आता है। कितने बड़े झूठ और प्रवंचनामें हम साँस ले रहे हैं। सुरक्षा, काहेकी? जीवनकी! और यह पैसा और पद? क्या यही जीवनकी सम्पूर्ण प्राप्ति है? मुझे घृणा होती है। क्या यही जीनेका मतलब है और क्या यही आवश्यक है कि एक पुरुष अपनी प्रतिष्ठाको बाँहोंमें घेरकर भौतिक सुविधाओंसे भर दे, जीवनको यह झूठी सुरक्षा दे दे? प्यार करे, शारीरिक सम्बन्ध रखे, क्लब और होटलोंमें ले जाये, पार्टियोंमें पत्नीको अप्सरा बनाकर औरोंकी ईर्ष्यामें सुख पाये? यही हमारा जीवन है, स्वतन्त्रता और सम्पन्नताका जीवन। यह नारी-स्वतन्त्रता हाथीके दाँत हैं, जिन्हें हर घराना खूबसूरतीके लिए लगाये हुए है! सारी लड़कियाँ स्वतन्त्र हैं, वे प्यार कर सकती हैं, घृणा कर सकती हैं, लेकिन जो चाहती हैं वह नहीं कर सकतीं। वे शादीसे पहले एकान्त स्थानोंमें घूम सकती हैं,

प्रेमका हर नाटक कर सकती है, यह आजादी नहीं तो क्या ? मैं भी यूनी हूँ। युवकोंके संसर्गमें आयी हूँ। प्यार छिपा-छिपाकर नहीं, दिखा-दिखाकर किया है और इस बातपर विश्वास करती थी कि अन्तिम और गहनतम प्रेम वही होता है, जो अन्तमें हो।

लेकिन वे दिन आज याद आते हैं। उन्हें कैसे भूल जाऊँ ? शामको आनेवाले हर परिचित और रिश्तेदारका स्वागत मैं मुसकराकर करती थी। हमारे घरोंकी शामें इसीलिए होती हैं। सच, तब मुझे यह अच्छा लगता था। विशेषकर इसलिए कि दिवाकर आता था। शाम होते ही डैडी पिकनिकके लिए तैयार होने लगते। ममी ऐसे तैयार होतीं, जैसे यह-सब करना स्वास्थ्य और ताजगीके लिए आवश्यक हो। मेरी नसोंमें बिजली दौड़ जाती। शाम ही तो सचमुच मेरे लिए होती थी। मैं साड़ी बदलती, उसका रंग चुनती, मौसम देखकर रिबनोंके रंग बदलती। आँखोंमें लम्बी सलाईसे काजल डालती, फिर ढेर-सा सेण्ट छिड़ककर रेशमी हवाओंपर तैरने लगती। दर्पण देखती तो छाया महक उठती। भाई शृंगार करते देखते, तो मुसकराकर कहते, "ओह लॅवली-लॅवली !" और मैं सकुचा जाती।

उस रोज भी दिवाकर आया, कागजोंका बड़ा-सा पुलिन्दा बगलमें दबाये था। डैडी और ममी उसे बहुत चाहते थे। ममीने आवाज लगायी, "दिवाकर आया है!" बिन्दी लगाते-लगाते मेरा हाथ कांप गया। उसे मेरे माथेपर दीपककी लौ-जैसी रेखा कितनी पसन्द है! मैंने साड़ीका पल्ला ठीक किया, उसकी [illegible] ठीक की और [illegible]-सी नीचे उतर आयी। दिवाकरने मुसकराकर मेरी ओर देखा और मैं [illegible] डूब गयी। वह आकर्षक है। वह [illegible] आता था। [illegible] पर सादा पहनावा। बड़ा महंगा [illegible] बांधे; माथेपर घूमती काली-काली लटें। [illegible] इरादोंकी लकीरें और होंठोंसे फूटती हुई [illegible] मुसकान। सिगरेट बहुत पीता था, इसीलिए उसके सांवले रंगमें भी होंठोंकी कालिमा [illegible]

जाती थी।

वह कुछ पसोपेशमें पड़ा हुआ था, जैसे आनेका कोई कारण न खोज पा रहा हो। कुछ अजीब-सी प्यारी शर्म, और उसके आनेका मन्तव्य खुल जानेकी लज्जा, और उस निरर्थकतापर पश्चात्ताप करता हुआ उसका भाव! वह रोज प्रथम क्षणोंमें ऐसा ही परेशान दिखता। यह उसका स्वभाव है। मैं तो अभ्यस्त हो चुकी हूँ। इन्हीं असमंजसके क्षणोंमें यदि कोई मज़ाक भी कर बैठे कि दिवाकर कैसे आये, तो वह शायद भाग जाये। अपने आनेके औचित्यको वह रोज ही साबित करता था, "इधरसे जा रहा था, सोचा, देखता चलूँ...."—इतना कह लेनेके बाद वह सामान्य हो जाता था। फिर हँसने-बोलने लगता। शब्दोंका तो जादूगर था। ममी भी बड़ी बातूनी हैं और डैडी भी कम नहीं।

न जाने उस रोज क्या हुआ। दिवाकर एकाएक बातोंमें गम्भीर हो गया। वैसे वह सदैव सीमाओंपर ही रहता था। निश्चित रुचियों और मनोभावोंका आदमी था। वह जब बोलता तो लगता कि उसकी आत्मा बोल रही है, प्यार या घृणा कर रही है, ग़लत या सही समझ रही है। संशय और अनिश्चितताके लिए वहाँ जगह नहीं थी। इसीलिए अन्तमें वह जीत जाता। उसकी बातें सभीको सोचनेके लिए मजबूर कर देतीं, चकित कर जाती थीं। मैं उत्सुकतासे सुनती। बड़ा अद्भुत सुख मिलता था।

उसके जानेके बाद घरमें उसका प्रभाव छाया रहता। ममी बात-बातमें उसकी मिसालें देतीं, "दिवाकरको देखो, जितना पढ़ता जाता है, उतना ही विनीत होता जाता है। तुम लोग चार अक्षर पढ़कर घमण्डी होते जा रहे हो। कैसे शायदेसे बात करता है...."

एक रोज मैंने बड़े संकोचसे उससे कह दिया था, "सबके सामने तुम्हारे साथ बैठे हुए मुझे न जाने कैसा लगता है। तुम कितने बन जाते हो, जैसे कुछ जानते ही नहीं!"

"मैं क्या जानूँ !" कहते हुए दिवाकर मुसकरा दिया था।

उसकी न जाने कितनी स्मृतियाँ हैं।

अपने कागजके बण्डलको दिवाकरने मेजपर रखा। डैडी चलते-चलते कोई-न-कोई बात छेड़ देते थे। ममी और दिवाकर उलझे रह जाते। म दिवाकरसे बोलीं, "क्यों दिवाकर, कम्पटीशनमें बैठनेका इरादा नहीं है

"क्या रखा है उनमें, कमसे कम मेरे लिए तो नहीं है। सब अफ़ हो जायेंगे तो बाकी काम कौन करेगा।" दिवाकरने कहा।

सुनकर डैडी बोल पड़े, "भाई, बगैर मिनॉरिटीके जीनेका कोई म लब नहीं। रोज़ कुआँ खोदना अक्लमन्दी नहीं है। तुम्हारी बात और पर दूसरे युवकोंकी जिन्दगियाँ बरबाद होते देखकर अफ़सोस भी होता गुस्सा भी आता है।....बुरी तरह भटक रहे हैं, यह नहीं जानते कि क करें ? लापरवाही और वक़्तकी बरबादी, बस यही उनका काम है....

सुनकर दिवाकर न जाने कैसा हो आया। वह आक्षेपोंको बरदा नहीं कर पाता था। उसका क्षण-भर पहलेका संकोच बड़े विनत साहस भर गया। बोला, "नौजवानोंकी फ़िक्र आपको नहीं होनी चाहिए उनके प्रति जो रुख आप लोगों, यानी पुरानी पीढ़ीका है, वह कितन निकम्मा और बोदा है, यह खुद आप भी जानते हैं। बड़े गलत पैमाने बना रखे हैं आप लोगोंने। आप युवकोंको उनकी पोशाकसे जाँचते हैं। फ़लाँ यह पहनता है, इसलिए वह जिन्दगीमें क्या कर सकता है ! युवकों-के उन्हीं क्षणोंको आप पकड़ते हैं, जिन्हें तरह दे देना चाहिए। अपनी सार्थकताके लिए आजका नौजवान जिस मानसिक संघर्षसे गुजर रहा है, वह कितना चिन्तित है, यह आपने नहीं देखा। आपने सड़कसे गुजरते-गुजरते, होटलोंसे आते उनके ठहाके सुने हैं, लेकिन यह कभी देखनेकी कोशिश नहीं की कि उन ठहाकोंके बाद एकाएक उनकी मेजोंपर कैसी उदासी छा जाती है ! कितनी ईमानदारीसे वे सोचते हुए उठते हैं और छोटे-बड़े कामोंमें लग जाते हैं। उनकी हँसी आपको आवारागर्दी-भरी

पती है। उनका सहज अल्हड़पन सभ्यताकी सीमाके बाहर दिखाई
ता है। उनका हँसना-बोलना, चलना-फिरना, यहाँतक कि उनकी
चियाँ और मनोभावनाओंसे आप चिढ़ते हैं, उदारतासे बरदाश्त नहीं
र पाते। यह कमी उनकी नहीं, आपकी है। यह आपको पीढ़ीका दृष्टि-
प है। आप लोग सिर्फ़ अपने जीवनका नमूना पेश करते हैं, अपने विचारों-
ो अन्तिम मानते हैं, उन्हींमें उसकी शक्ति, सपने और कल्पनाको कैद
र लेना चाहते हैं...''—वह धाराप्रवाह बोलता गया। ममी आश्चर्यमें
ाक रही थी और डैडी हतप्रभ थे। मेरा मन हुलस आया। दिवाकरके
हरेसे रोशनी फूट रही थी। वह हर समस्याको नये दृष्टिकोणसे देखता
ा। बड़ा अजीब विश्वास था उसका। उसकी बात हमेशा नवीन होती।
क ही बातको तरह-तरहसे देखता और जिस पहलूको उभारकर रख
ता, वही उस समस्याका मुख्य पहलू बन जाता। उसके शब्दोंमें जादू
ा। इस जादूमें मैं खो जाती थी। उसके पास लहराते जीवन और
विचारोंके अपार सागरमें डूब-डूब जाती।

वह मुझसे कहा करता था, "मीना, मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं
ुम्हें क्या दे पाऊँगा?"

लेकिन मैं उसके आत्मविश्वाससे परिचित थी। वह बड़ी बाहर जाता
ो पोथियोंकी पोथियाँ रँगकर लाता। ममी देखकर कहती थीं, 'बड़ी
ेहनत करता है दिवाकर।' मुझे लगता, यह श्रेय मुझे मिल रहा है।

पर इस समय ममीकी आँखोंमें वैसी प्रशंसा नहीं थी।

डैडी अमली बात स्वीकार करते हुए बोले, "हाँ, यह हमारी पीढ़ीकी
मी हो सकती है, लेकिन इससे जीवनकी मुख्यता मसला हल नहीं
होता।"

दिवाकर धीरेसे मुसकराया। अपनी सहज नम्रताको पकड़ते हुए
ममीकी ओर देखकर बोला, "आप भी क्या ऐसा ही सोचती हैं?" फिर
उसने डैडीकी ओर देखा और कहने लगा, "गुलामीने हमारी सम्भावनाएँ

अभीतक रोक रखी थीं। हम ठहरे हुए थे। जीवनकी सुरक्षा और गतिशीलता बहुत दूर तक एक साथ नहीं चल सकतीं। सुरक्षा केवल वे चाहते हैं, जो हताश हैं; जिनका विश्वास अपनेपर-से टूट चुका है। आप ही हैं, यदि आपको अपनी कुशलतापर यक़ीन न होता तो क्या आप इतने सफल डॉक्टर बन पाते? लेकिन आप खुद अपनी कुशलतापर विश्वास रखते हुए भी दूसरेकी शक्तिमें अविश्वास करते हैं, इसीलिए आपको हर तरफ़ पतन, दुराचार और अँधेरा दिखाई पड़ता है। नयी पीढ़ी हमेशा असन्तोषका विषय रही है, पर वह कुछ ऐसा करती आयी है, जो पिछली नहीं कर पायी और दुनिया बढ़ती गयी……"

"भाई, ये बातें अपनी समझसे बाहर हैं," ममी बोलीं, "अब यही देख लो, ये रोज़ रट लगाये रहते हैं कि दवाइयोंमें मिलावट होने लगी। यह पतन नहीं है?"

"और जो नयी दवाइयाँ रोज खोजी जा रही हैं, यह प्रगति नहीं है क्या?" दिवाकर बोला, "जिस पतनकी बात आप कर रही हैं, वह सब हमें पैसेकी संस्कृतिने दिया है, इसी सुरक्षावाली भावनाने। इसीने हमें स्वार्थी बनाया है। यह आखिर है क्या? केवल पैसा! और आप किस बातकी सुरक्षा चाहते हैं? जीवनकी सद्भावनाओंसे विकल होकर कोई इन बुराइयोंको नहीं देखता। कुछ लोग चार-सौ बीसीसे धनवान् बन बैठे हैं, इसलिए उनसे, उनकी सुविधाओंसे जो ईर्ष्या मनमें उपजी है, वही यह कहलवा रही है। यह ग़लत है। लेकिन 'व्यक्तियों'के समाजमें हमेशा ऐसा ही होता है, 'समाजके व्यक्तियों'में नहीं। 'व्यक्तियोंका समाज' भी बड़ी मजेदार कल्पना है! वह व्यक्ति-विशेषोंके दिमाग़की उपज है, जो अपने हितोंके लिए अपने आस-पास समाज जोड़ते हैं। लेकिन 'समाजका व्यक्ति' स्वतन्त्र होते हुए भी निराकार होता है, स्वतन्त्रता ही उसका व्यक्तित्व है, इसीलिए समाज प्रगति करता है। इसमें व्यक्ति-व्यक्तिकी होड़ नहीं होती। सामूहिक विकास होता है।

थमको किसीने व्यर्थ कर दिया हो।

चाय आयी और हम पीने बैठ गये। इतनेमें भाई साहब और जितेन आ गये। वातावरण हलका हुआ। जितेनने मुसकराते हुए कहा, "मैं बता सकता हूँ कि इस वक्त यहाँ कौन-सा सेण्ट महक रहा है!" कहते हुए उसने उड़ती नजर सबपर डालकर मेरी ओर देखा और खिलखिलाकर हँसते हुए बोला, "चम्पा!"

ममीने चाय पीते हुए प्रशंसासे भरकर कहा, "जितेन बड़ा तेज है।"

सबकी नजरोंसे प्रशंसा झाँकने लगी।

जितेनने डैडीके पैरोंकी ओर देखते हुए कहा, "अंकिल, अब आप यह पतली टो का जूता पहनना छोड़ दीजिए!"

"मैंने ब्राड-कार-शेप बनवाया है!"—भाई साहबने कहा।

बेदम मछलियाँ फिर पानीमें पहुँच गयीं।....जूमें नया चीता आया है।....हिन्दी पिक्चर्स बेकार होती हैं।....इस बार भी उर्वशी प्राइज किसी अमेरिकी व्यापारीको मिली है....

दिवाकर फिर संकुचित होने लगा। कैसे बैठे हो, दिवाकर! कोई छू लेता, तो शायद उठकर भाग जाता। जितेनकी बातोंसे मेरा मन ऊबने लगा। मुझे लगा कि दिवाकर मेरा उठ जाना पसन्द करेगा। मैं उठ गयी।

उस दिनसे अजीब कशमकश रहती। मेरा मन होता कि सबको छोड़कर दिवाकरका हाथ पकड़ लूँ और कहूँ, चाहे जहाँ ले चलो। मैं तुम्हारी हूँ। तुम्हें अपना मान चुकी हूँ। तुम्हारी आग मुझे आकर्षित करती है। सचमुच जीवनमें सुरक्षित क्या है? तुम अपनी मुक्तिमें मुझे भी बाँध लो। मेरे जीवनका छूटा हुआ सत्य मुझे दे दो!...

एक रात सपना देखा। दिवाकरके साथ न जाने कहाँ-कहाँ घूम रही हूँ। वह जहाँ भी जाता है, लोग प्यारसे उसे घेर लेते हैं। बातोंसे वह बहुत थक गया है। पर रात गये तक वह बेज़ार-सा घण्टों बैठा लिखता रहा। मैंने पीछेसे आकर उसके छितराये हुए बालोंको चूम लिया।

फिर उसकी बाँहोंके घेरे। नहीं····नहीं····इसे पूरा कर लो, दिवाकर····
और देर बाद थककर वह मेरी गोदमें पड़ा निश्शक, निर्द्वन्द्व सो रहा है।
आँखें खुलीं तो कुछ भी नहीं था। मैं निपट अकेली थी।

न जाने वह क्या-क्या बताया करता था। एक दिन बोला था, "अपनी जिन्दगी जियो, मीना! तुम्हारा सौन्दर्यके प्रति अनुराग मुझे अच्छा लगता है, जहाँतक वह तुम्हारा है। लेकिन जब तुम लोग नकल करते हो तो बौने लगते हो। तुम जीवनियाँ पढ़ती हो। वे इसीलिए आकर्षित करती हैं कि वे उन लोगोंकी अपनी हैं। राहुलकी जीवनी पढ़कर कितनोंने विद्रोह नहीं किया होगा! भागे होंगे। लेकिन किसीका नाम सुनाई पड़ता है! कोई कुछ कर पाया? अपनी मौलिकता सबसे बड़ी निधि है। उन जीवनियोंकी सतत प्यासको पहचानो! यह तुम्हारा फूलोंका प्यार, यह हर शामकी एक-सी मुसकान, पपीको गोदमें लेकर सहलाना और रटे हुए वाक्योंकी बौछार, यह एकरसता धीरे-धीरे तुम्हें निर्जीव बना देगी····"

मैं बहुत सोचती उन बातोंपर, और मुझे लगता कि मैं दिवाकरको बेहद चाहने लगी हूँ। लेकिन उस दिनके बाद घरमें उसकी आलोचना होने लगी। कभी दिवाकरका जिक्र आता, तो ममी कहतीं, "दिवाकर जान-बूझकर अपनी जिन्दगी खराब कर रहा है। उसका यह ऊटपटाँग सोचना और लिखना-लिखाना किस काम आयेंगे! कल ठोकरें खायेगा, तब दिमाग़ रास्तेपर आ जायेगा।"

मैं सुनती तो ठिटक जाती। पहले ममीकी जबान उसकी तारीफ़ करते नहीं थकती थी। आखिर उस दिन उसने ऐसा क्या-कुछ कह दिया, जो सबका दिमाग़ पलट गया। उसकी बुराई होती तो मुझे चुभती।

उस दिनके बाद दिवाकरका स्वागत रूखा होने लगा। डैडी धीरेसे मुसकराकर उठ जाते। ममी इधर-उधरकी बातें करके जैसे टालने लगीं। उसके जाते ही हजारों बातें शुरू हो जातीं, इन लेखकों-सुधारकोंका

कोई ठिकाना है ? न जाने क्यों, डैडी और ममी दिवाकरको लेकर पुकारते थे और सुधारकोंसे उसकी तुलना करते थे !...."ये लोग तो मिराकी होते हैं। गरीबोंकी हिमायत करते हैं और उन्हींका खून चूसते हैं ! अच्छा-खासा तेज लड़का था। किसी तरफ लगता तो चमक जाता। नेता हो गया है। ऊटपटांग कपड़े पहनता है...."

धीरे-धीरे उसका आना कम होता गया। जितेन अब भी आता था। दिवाकरकी खबर मिलनी भी कम हो गयी। मुझे उसकी याद आती थी। उसके साथ बिताये क्षण याद आते थे। पर जो करना चाहती थी, वह नहीं हो पाता था। कभी वह आता तो सबकी नजरें मेरी तरफ रहतीं। उसके साथ उठने-बैठने, घूमने-घामनेपर अदृश्य पाबन्दी-सी लगी दिखाई देती। वह भी न जाने कैसा हो गया था। जिन बातोंसे डैडी और ममीको चिढ़ होती, वही अदबदाकर करता। जान-बूझकर खद्दर पहन आता। कलीदार कुरता पहनकर अजीब तरहसे बातें करता। मैं उसके लिखे पत्रोंको खोलकर पुरानी बातें याद करती। समय-समय पर उसकी भावभंगिमाएँ याद करती। पर एक दिन ममीने बहुत अपनेपनसे कहा, "मीनू, तू नाहक उलझी रहती है। जिन्दगीको इस तरह नहीं लेते। कोई अपनेको योग्य साबित न कर सके, इसमें उसकी गलती है, तेरी नहीं।"

और एक दिन दिवाकर मुझे अकस्मात् अशोक रोडपर मिल गया। कहने लगा, कहीं बाहर जा रहा है। मैं जाने क्यों उससे अधिक बात नहीं कर पायी। घर पहुँचनेकी जल्दी थी। घर आते ही जितेन इन्तजार करता मिला। ममी और डैडी ड्राइंग रूममें ही बैठे थे। मुझे देखते ही जितेन बोला, "चलिए आण्टी, मीना भी आ गयी, अब प्रोग्राम कैंसिल नहीं हो सकता।" और उस रात हम सिनेमा चले गये। जितेन मुझे सारी रातमें ऐसे घेरे रहा, जैसे मैं उसकी हूँ। बड़ी अनूठी अनुभूति हुई उस रात। जितेन रास्ते-भर दिवाकरकी तारीफ करता रहा, दिवाकर

इटेलियन नर्तकीकी। उसकी चेष्टाएँ अनदेखे ही बढ़ती गयीं। ममीकी ओर संकोचमें मैंने देखा। वह असन्तुष्ट थीं। उनके व्यवहारमें छूट और इस ओरसे लापरवाही थी।

दिन बीतते रहे। दिवाकर कहीं-न-कहीं मिलता रहा। कभी-कभी मुझे यह भी लगता कि उसका यह मिलना आकस्मिक नहीं होता। एक रोज़ मैं ऊपरवाले कमरेमें थी। सड़कपर दिवाकरका भ्रम हुआ, कुछ देर बाद फिर भ्रम हुआ, शायद वह वापस जा रहा था। मैं उतरकर नीचे लॉनमें आ गयी। कुछ देर बाद वह फिर गुज़रा। उसने उड़ती हुई निगाह मेरी ओर डाली। मुझे देखा और निकल गया। मैं इन्तज़ार करती रही कि वह अब वापस आये तो रोक लूँगी, पर वह नहीं आया।

और इसके बाद वह दिन····

शाम थी। सभी लोग बैठे गपशप कर रहे थे। जितेनके क़हक़होंसे कमरा गूँज रहा था। वह कह रहा था, "हिन्दुस्तानकी इमारतोंका क्या देखना? इमारतें देखना हैं तो अमेरिकाकी देखिए। आरामदेह और खूबसूरत! सादगी और खूबसूरतीमें अमेरिकी मॉडलका जोड़ नहीं! मैं तो यहाँतक मानता हूँ कि जिसने अमेरिका नहीं देखा, वह इंजीनियर हो ही नहीं सकता!"

"इसमें क्या शक!" भाई साहब बोले।

"ग़नीमत है कि शर्माजी यहाँ नहीं हैं, नहीं तो अमेरिकाकी इमारतोंका सम्बन्ध वेदोंसे जुड़ गया होता!" जितेनने कहा और हम सभी हँस पड़े। मैं क्यों हँसी, शायद जितेनके कारण।

तभी भाई साहबने उसी मज़ाक़के दौरानमें कहा, "श्री दिवाकरजी हिन्दी-प्रचारक होकर आसाम चले गये हैं।"

श्री और जी सुनकर जितेन हँस पड़ा। बोला, "आसामके जंगलोंमें!

आख़िर हिन्दी संस्किरितकी बेटी है !"

सुनकर डैडी मुसकरा दिये।

मुझे एकाएक कुछ बुरा-सा लगा, यह सोचकर कि वह कितनी दूर चला गया। अकेला गया होगा। और उसके बाद दिवाकरका कोई समाचार नहीं मिला।

जितेन बोले जा रहा था, "बढ़ती हुई आबादीके लिए यह ज़रूरी है कि इमारतोंकी योजना और नक़्शे दिमाग़ और अक़्लमन्दीसे बनाये जायें। ज़मीन तो बढ़ नहीं सकती। लेकिन हमारे यहाँ यह जो मुश्किल है कि हर आदमीको अलग चौपाल चाहिए। मिलकर साथ रहना ही नहीं जानते। हर आदमीको जानवरोंकी तरह अलग थान चाहिए, नहीं तो सींग मार देंगे। सच बात यह है कि अभी हमारे यहाँ सभ्य ज़िन्दगी शुरू ही नहीं हुई। विदेशोंमें एक फ़्लैटमें चार फ़ैमिलीज़ रह लेंगी। एक-दूसरेके आराम और सुविधाका ख़याल रखेंगी, लेकिन हमारे यहाँ ? बीस नम्बर और पैंतीस नम्बरमें लड़ाई हो जाना आम है। क्यों ? बीस नम्बरवालोंका कुत्ता पैंतीसवालोंकी बिल्लीको दबोच ले गया।"

ममी कुछ दिन पहलेकी लड़ाईका क़िस्सा सुनाने लगीं। भाई साहबने रेडियो ज़रा तेज़ कर दिया। बड़ी अच्छी धुन बज रही थी। कुछ देरके लिए सब उसीमें डूब गये। डैडीने पूछा, "तुम चण्डीगढ़ जानेको कह रहे थे, वहाँ काम शुरू होनेवाला है।"

जितेन बोला, "सोचा था, देख आऊँगा। पर अब मुमकिन नहीं दिखाई देता।"

ममीने बात बदली, "इमारतें भी कैसी-कैसी होती हैं ! देखकर विश्वास नहीं होता कि इन्हें आदमियोंने बनाया होगा। लेकिन जितेन, तुम्हारे लिए तो सब मामूली होगा। मैं तो ताजमहलका गुम्बद देखकर ताज्जुबमें पड़ गयी।....कैसे बनाया होगा !"

"ये तो अपना-अपना हुनर है, आण्टी," जितेन बोला, "जैसे आप

स्वेटर बुन लेती है, एक ही सूत हजारों डिजाइनें बना देता है। पुरानी इमारतोंको देखिए तो इंजीनियरोंकी कारगुजारीपर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। लेकिन तब पत्थर था, अब लोहा है। आज यह काम और भी मुश्किल हो गया है। ये इमारतें ही हमारे जमानेकी यादगार रह जायेंगी, बाकी सब धूलमें मिल जायेगा। पुराने खण्डहरोंको देखकर एक बीता हुआ जमाना हमारी आँखोंके सामने नाचने लगता है। ये खण्डहर न होते तो हमें अपना अहसास तक न होता। बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें बनाकर शहंशाह आज तक जिन्दा हैं। ताजमहल है, इसीलिए शाहजहाँ और मुमताजकी कहानियाँ जीवित हैं! जो हम आज बनायेंगे, वह सदियों हमारी कहानी कहेगा! कितना निर्माण बाकी पड़ा है! हमें पुल बनाने हैं, बाँध बाँधने हैं, शहर बसाने हैं!..."

सुनकर मैं विभोर हो गयी। जितेनके हाथों इतना निर्माण होना है! शताब्दियोंके लिए। जो आज ये बनायेंगा, वह सदियों अपनी कहानी कहेगा! सचमुच बाकी सब धूलमें मिल जायेगा। खण्डहरोंको देखकर शिल्पियोंके निर्माण-कौशल, उनकी अटूट लगन और साहसका परिचय मिलता है। जितेन! उतना ही कुशल और साहसी! बड़े-बड़े नक्शोंपर बनी करोड़ों रेखाओंमें यह उलझेगा। इन लकीरोंसे इमारतें बना देगा। कैसा जादू है जितेनके पास!

अपने जीवनकी सार्थकता मुझे दिखाई देने लगी। इतने बड़े और अमर निर्माणोंमें मेरा सहयोग होगा। मैं जितेनको सँभाले रहूँगी और जितेन इमारतें बनाता जायेगा। शायद इसी जीवनके लिए मैं आतुर थी। जितेनके साथ मैं घूमती तो गर्वसे मस्तक ऊँचा रहता। मुझे लगता कि देखनेवाले मुझसे ईर्ष्या कर रहे हैं। अद्भुत सन्तोष मिलता। जितेनके घरसे हम लोगोंका सम्पर्क दिनों-दिन बढ़ता आ रहा था। उसके घरकी अम्माइयाको हमारे यहाँ चर्चा रहती। जैसे हमारे उसके पोर्टिकोमें रहते थे, वैसे ही हमारे बरामदेमें आ पड़े। हमारी राजधानीकी तरह उसके

बगीचेमें लग गयी। इन छोटे-छोटे आदान-प्रदानोंसे कड़ियाँ जुड़ती गयीं।

""उस शाम मैं जितेनका इन्तजार कर रही थी। वह नहीं आया। डैडीको भी चिन्ता हुई और ममीको भी अजीब लगा। उसके न आनेका कारण खोजते हुए डैडी बोले, "जितेनके परिवारमें शायद कुछ आपसी झगड़ा हो गया है।"

"भरा घर है, हो सकता है, हो गया हो। लेकिन जितेनको उससे क्या मतलब? सुना, उसकी बुआजी भी अब यहीं रहनेके लिए आ गयी हैं।" ममी बोलीं।

घरेलू बात है, जितेनके तीनों चाचा और उसके पिताजीमें जायदादके बँटवारेको लेकर कुछ मामला बढ़ गया है। दरअसल बात यह है कि जितेनके पिताजी हमेशा बाहर रहे, अब रिटायर होकर आ गये हैं। मैं समझता था, उनकी हालत अच्छी होगी; पर ऐसा नहीं है, उन्होंने कुछ भी जोड़ नहीं पाया। अभी पाँच लड़के-लड़कियाँ ब्याहनेको पड़े हैं।""
शायद उनके छोटे भाइयोंने कुछ भी देनेसे इनकार कर दिया है, क्योंकि जायदाद सब उन्हीं लोगोंने खरीदी है।" डैडी बता रहे थे।

"इसमें क्या होता है?" ममी बोलीं, "बड़े भाईका कोई हक नहीं होगा?"

"पैसा नहीं लगाया तो हक कहाँसे होगा?" डैडी कह रहे थे, "ये सब ढोलमें पोल थी। ये ऊपरका साज-बाज सब दिखावटी था। मैं समझता था, पुराना रईस घराना है, मरा हाथी भी एक लाखका। पर वहाँ भूँजी भाँग तक नहीं है। जितेनके पिता उन लोगोंकी मर्जीसे उन्हींके ऊपर रह रहे हैं।"

तबतक भाई साहब हाथमें रैकेट लिये हुए आये। पूछा, "जितेन नहीं आया"? उसीकी बातें होती देख एकदम बोले, "उसको मुश्किल [illegible] बाबाने यह तै कर लिया है कि वे यहाँ नहीं

रहेंगे, बच्चोंको भी नहीं रखेंगे। जैसे ही जितेनकी नौकरी लगी, पूरी फ़ैमिली उसीके साथ चली जायेगी।"

ममीने चिढ़कर कहा, "इतने लोगोंका भार अकेला जितेन उठा लेगा? तीन तीन पढ़नेवाले हैं, फिर उसकी ममी और पापा और छोटा भाई! उसकी ममी तो हमेशा बीमार रहती है। देखनेमें अच्छी-खासी है, पर अजीब बीमारी है उन्हें!"ये नखरे मुझसे नहीं होते। बीमार पड़ते कितनी देर लगती है! उनका रोग दुनियासे निराला है!"

"उनके बच्चे भी ऐसे ही हैं। सलीक़ा तो छू नहीं गया है। मार-डॉटमें पटरीपर रहते हैं। मैंने देखा है।" भाई साहबने कहा, "बस जितेन अच्छा निकल गया, उसकी क़िस्मत समझिए!"

"क़िस्मतका क्या है?" डैडीने चश्मा ठीक करते हुए कहा, "इंजीनियर तो चुंगीके भी होते हैं, हालत सैनिटरी इन्सपेक्टरसे भी बदतर होती है!"

"अँगरेज़ोंके जमानेमें इंजीनियरोंकी जो वकत और शान थी, वह अब कहाँ!" ममी बोलीं, "अपने मामाका ध्यान करो! और आजकलके इंजीनियरोंको ज़रा देखो, जैसे बाढ़ आ गयी है।"

डैडीको कोई मरीज़ बुलाने आ गया था। ममी भीतर चली गयीं और भाई साहब सीटी बजाते हुए सायकिल उठाकर क्लबकी ओर चले गये।

उस रोज़ मैं बहुत उदास रही। मन अकुलाता रहा। यह सब बनकर कैसे बिगड़ जाता है? जितेन किन मुश्किलोंमें फँस गया। उसे आना चाहिए था। बहुत देर तक अपने लॉनमें टहलती रही। रात गये मैंने कपड़े बदले। क्या मैं इस योग्य नहीं कि जितेनकी परेशानियोंमें हाथ बँटा सकूँ? सोनेकी कोशिश की, पर नींद नहीं आयी।

तीन-चार रोज़ बाद जितेन आया। ममी और डैडीने उसका ऐसी नज़रोंसे स्वागत किया, जैसे सचमुच चुंगीका इंजीनियर आया हो। जितेन

भी कुछ उदास था। चिन्ताओंके चिह्न उसके मुखपर थे। बड़ी देर तक हम साथ बैठे रहे। चलते-चलते उसने बड़ी खुशीसे बताया, "एक खुश-खबरी आप लोगोंको सुनाऊँ !"

डैडी और ममी उत्सुक हो आये।

वह बोला, "अलीगढ़ ज़िलेमें मेरी नियुक्ति हो गयी। अगली पहली तारीख़को ज्वाइन करना है।"

"किस डिपार्टमेण्टमें ?"—डैडीने प्रसन्नतासे पूछा।

"लोकल सेल्फ़ गवर्नमेण्टमें," कहते हुए जितेन कुछ हिचका, पर सँभलता हुआ बोला, "फ़िलहाल बुरा नहीं है, पंचवर्षीय योजनाका काम है। कोई अच्छी पोस्ट मिलते ही छोड़ दूँगा। साल-छह महीने करके देखता हूँ, तबतक मिनिस्ट्री ऑव रेलवेज़वाली जगह ठीक हो जायेगी।"

सुनकर सब खामोश हो रहे। जितेन हतप्रभ-सा हो गया। उसकी नज़रोंमें हैरानी थी कि आख़िर उसके भविष्यपर इन्हें विश्वास क्यों नहीं होता ? क्या वह बेकार हो गया है ? वह चाहता था कि उसकी आँखोंमें बने ताजमहलों, कुतुबमीनारों और गर्वीली इमारतोंकी तसवीरें वे देख सकें····भविष्यकी उज्ज्वलता और उसकी शक्तिपर विश्वास कर सकें ! लेकिन उसकी हैरानी नहीं मिटी। उसने मेरी ओर देखा। मैं आँखोंसे कितना विश्वास दे देती !

जितेनके जानेसे पहले ममीसे मेरी बड़ी बातचीत हुई। वह एक बहुत लम्बा क़िस्सा है। किस-किस तरहसे मैंने नहीं समझाया। यह भी कहा कि अब मैं शादी नहीं करूँगी, किसी अन्यसे नहीं करूँगी। ममीने प्यार-दुलार और अनुभवका वास्ता दिलाकर बहुत समझाया। आख़ीरमें उबल पड़ीं, "तुम्हें इतनी आज़ादी दे देनेका अगर यही फ़ायदा है तो मैं कोई भी वास्ता नहीं रखती ! जो तुम्हारे जीमें आये, करो, पर इतनी आसानीसे यह सब नहीं हो सकेगा।" फिर उन्होंने ऊँच-नीच समझाया, और कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनका मतलब था कि जीवनमें आये हुए

हर पुरुषको प्यार नहीं किया जा सकता। आकर्षण प्रेम नहीं होता। इसलिए अपनेको पहचानो और प्रत्येक आकर्षणको प्यारका नाम देकर कलंकित न करो। जो फलीभूत नहीं हो पाया, वह कुछ भी नहीं है।.... जीवनका रूप और उसकी उपयोगिता नष्ट कर देनेसे प्रेमका आदर्श नहीं खड़ा होता।

फिर भी मैं कोशिश करके जितनेसे ज्यादासे ज्यादा मिलती रही। पर वह उदासीन होता जा रहा था, जैसे यह जानता हो कि मैं केवल सहानुभूति दे सकती हूँ, और कुछ भी नहीं। सत्ताईस तारीखको वह चला गया। एक महीने बाद उसका परिवार भी उसके पास चला गया। मैं घुटकर रह गयी। मेरी शामें एक बार फिर उदास हो गयीं। अब चाहती थी, कहीं नौकरी कर लूँ। लेकिन एकदम यह सम्भव नहीं हो पाया।

तभी एक दिन सहसा एक मोड़ और आया। शामको कोई चपरासी आकर एक लिफ़ाफ़ा दे गया। डैडी क्लिनिक जानेको तैयार ही थे। लिफाफ़ा खोलकर उन्होंने पढ़ा। उसमें एक पत्र था और दूसरे रोज़ 'ऑफ़ीसर्स इन्स्टीट्यूट' में होनेवाले वैरायटी प्रोग्रामके लिए चार पास थे।

सुनकर ममी बोलीं, "चलो, अमरने हमें याद तो किया। अफसर हो जानेपर भी नहीं भूला!"

मैं अमरको जानती थी। वह डैडीके एक बुज़ुर्ग दोस्तका लड़का था। मुरादाबादमें डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्टकी ट्रेनिंग समाप्त करके, कुछ दिन एक ज़िलेमें रहकर अब यहाँ आया था।

दूसरे रोज़ शामको मेरे न चाहनेपर भी मुझे जाना पड़ा। अमरने एक जीप हमें लानेके लिए भिजवा दी थी। वहाँ पहुँचते ही वह बाहर मिला और हम-सब को देखनेके लिए साथ ही बैठे। वह उठ-उठकर

तरह बना सकूँ, उसका निर्माण कर सकूँ, जिससे मेरी सार्थकता सि[illegible] हो जाये।

अमर मेरी इस तृप्तिका साधन बन सका। वह हमेशा घोड़ो[illegible] पिस्तौलों, मुजरिमों, जुर्मों और मुक़द्दमोंकी बातें करता। दुनिया-जहान[illegible] उदासीन, विचारों और मननसे दूर वह एक ऐसा पुरुष था, जिसे केवल औरत चाहिए थी। ऐसी पत्नी, जो उसकी शामोंको रंगीन बना सके, रातोंको महका सके और सुबह उससे अलग हट जाये।

वह आता तो ममी मुझे समय देनेके लिए उठ जातीं। और तब भावावेशके क्षण आते। वह मेरी आँखोंमें झाँककर सितारों, सपनों या फूलों-की बात नहीं करता था, वह उन्मादमें भरकर कहता—"मीना! मैं मशीन-का पुर्ज़ा हूँ।....मुझे इशारा चाहिए! कोई ऐसा चाहिए, जो मुझे चलाता रहे। सचमुच आदमीकी ज़िन्दगी अपने लिए नहीं होती, वह किसी दूसरेका इन्तज़ार करती है। मुझे तुम्हारा इन्तज़ार है।....औरोंकी खुशियाँ देखता हूँ तो मन उदास हो जाता है। क्या एक मैं ही बदनसीब हूँ?"

वह ऐसा कहता तो मेरा मन भर आता। इसके लिए क्या कर दूँ? अपना दिल खोल दूँ, अपना सब कुछ देकर इसे पा लूँ। समर्पणसे बड़ा और क्या प्राप्य होगा? यही जीत है। इतनी बड़ी जीतके बाद सब-कुछ हार जानेको मन करता था। उसके लहरदार, चमकते बालोंमें उँगलियाँ उलझानेको जी होता। उसकी पिस्तौल देखते-देखते मनमें आता, कहूँ, 'अमर! इस आदमीको मार दो....इस चिड़ियाको ज़मीनपर गिरा दो!' और मैं जानती थी, यह पल-भरमें पूरा हो जायेगा। फिर चाहे जो हो। इतना गहन विश्वास और कौन देगा! मैं इस विश्वासकी अधिकारिणी हूँ। एकमात्र मैं।

फिर मेरी साँस साँसने, रोम-रोमने उसे प्यार किया। मैं सार्थक हो गयी थी। मेरा प्रत्येक क्षण केवल उसके लिए था।

उस दिन सुबह हम बैठे चाय पी रहे थे। अखबार सामने था।

एक-एक कर तोड़ रहा हूँ, तोड़ता जायेगा"' भयसे मुक्ति सबसे बड़ा वरदान है !....

मैं कितनी प्रसन्न थी उन दिनों। ममी और डैडी फूले नहीं समाते थे। एक रोज ममीने आनन्दसे छलकते हुए हृदयसे कहा, "अमरसे मैंने सब कह दिया है।" सुनकर मैं पागल हो गयी !

और तीन महीने बाद मेरी शादी अमरके साथ हो गयी। लगता वर्षों पहलेकी बात कर रही हूँ। उन सब घटनाओंको बहुत पीछे छ आयी हूँ। लगता है, यह सब आजसे तीन दिन पहलेकी बात नहीं, हजार साल पहलेकी है। आज पन्द्रह तारीख है। बारहको शादी रात थी।....सोचती हूँ तो बार-बार वे पिछले दिन याद आते हैं। चाह हूँ कि तीन दिन पहलेवाली घटनासे सम्बन्धित सभी स्मृतियोंपर कालि पोत दूँ।

वह मेरी पहली रात थी। मैंने कमरेमें क़दम रखा और अमरने अपन बलिष्ठ बाँहोंमें भर लिया। हम मित्रकी तरह बैठे थे, पति पत्नीकी तर बैठे थे। मैंने जिसे हृदयसे चाहा था, वह मेरा होकर मेरे पास था। उस मेरी आँखोंमें झाँककर कहा, "आज इन्तजार खत्म हुआ !" और व बड़े उल्लाससे उठकर यह कहता हुआ कि मुझे जीवनमें एक साथी मिला है, आज अपना सब-कुछ दिखा लूँ ! वह आलमारीकी ओर बढ़ा। उसमें-से खोज-खोजकर वह तमाम पुरानी चीजें निकालता रहा। तबतक मैं इधर-उधर ताकती रही। हैंगरपर खाकी वरदियाँ लटकी थीं, चारों सूनी दीवारोंमें एकपर कारतूसकी पेटी और रिवॉल्वर लटक रही थी। ड्रेसिंग-टेबलपर लाल फ़ीतोंमें लिपटी फ़ाइलें पड़ी थीं, जिनकी थोड़ी परछाई शीशेमें झाँक रही थी। खिड़कियोंके शीशे गहरे नीले पुते थे, जिन्होंने चाँदनी रोक रखी थी।

अमरने तमाम छोटी-छोटी डिब्बियाँ और कप लाकर पलंगपर बिखरा दिये। मैं कुछ समझ नहीं पायी। वह बड़े गर्व और महानता-

से बताने लगा, "ये चाँदीवाला कप मुझे रेसमें मिला था। ये मैडिल····
देखो, सोनेका है! ये मुझे अँगरेज़ कलक्टरने ख़ुद दिया था। यह कप
तैराकीका है। अब तो सब छूट गया·····"

फिर ॲलबम खोलकर मुझे अपनी बाँहोंमें घेरकर बैठते हुए दिखाने लगा, "ये मुरादाबाद ट्रेनिंग स्कूलके चित्र हैं। ये मेरा बदमाश घोड़ा, पोटर बॉय! देखती हो न! यह हमारी मार्चिंग परेडका ग्रुप है। इसीमें मुझे पहचानो, कहाँ हूँ।"

मेरी क्षणिक ख़ामोशीको पीछे छोड़ते हुए वह फिर बोला, "यह रहा! कैसा उजबक लग रहा हूँ।" और ख़ुद मुसकरा पड़ा, "ये मेरे प्रिन्सिपल साहबका फ़ोटो है।" फिर न जाने क्या-क्या दिखाता रहा। एक ग्रुपपर उँगली रखते हुए बोला, "ये डी० एम० हैं, ये एस० पी० साहब और ये उनका टॉमी। इस टॉमीको मैंने एक पहाड़ीसे मँगाकर प्रेजेण्ट किया था। बेहद ख़ुश हुए थे एस० पी० साहब! अब इन्हींका डी० आई० जी० होने-का चास है। सीनियर-मोस्ट है।"

मैं सब देख रही थी। एक-एक शब्द सुन रही थी। मैंने उठकर खिड़की खोल दी, जिससे घुटन कुछ कम हो। अमरने सब चीज़ें बटोरकर मेज़पर रख दीं। फिर एकदम चौंककर बोला, "अरे, वह तलवार तो भूल ही गया! और आलमारीमें एक छोटी तलवार निकालकर मेरे पास रखता हुआ बोला, "यह मेरी नौकरीका सबसे बड़ा तोहफ़ा है! जब मेरा पहले-पहल पोस्टिंग हुआ था, तब मेरी बहादुरीके लिए डी० एम० ने ख़ुद इनाम दिया था। सिर्फ़ इस इनामको ले लेनेके लिए मैंने महराज सिंह डकैतको मारा था! यह इनाम मुझे लेना ही था। देखती हो, इसकी मूँठ सोनेकी है!·····"

उस क्षण मैं आँखें बन्द कर लेना चाहती थी। उसकी वे उँगलियाँ और उनके नाखून! न जाने कितने बदसूरत हो गये थे, भोंडे और घृणित लग रहे थे। उसकी बाँहोंके रोएँ भद्दे थे, ऊपरसे चिपके हुए गन्दे रोंछके

बालों-जैसे। उसकी बाँहोंपर काई-सी जम आयी थी।

और एक क्षण बाद जब उसकी बाँहें मेरे चारों ओर लिपट गयीं और उसकी साँसोंकी महक पहली बार मुझ तक आयी, मैं अकुला उठी थी। मैं जैसे किसी मुरदेकी ठण्डी बाँहोंमें घिर गयी थी।....मेरे मनने सहमकर पूछा था, 'क्या मैंने इसी अमरको प्यार किया था?'

कल एक बार न जाने कैसा भ्रम हुआ। लगा, अभी-अभी दिवाकर सड़कसे गुजरा है।

•

गरमियोंके दिन

चुंगी-दफ़्तर खूब रंगा-चुंगा है। उसके फाटकपर इन्द्रधनुषी आकारके बोर्ड लगे हुए हैं। सैयदअली पेण्टरने बड़े सधे हाथसे उन बोर्डोंको बनाया है। देखते-देखते शहरमें बहुत-सी ऐसी दूकानें हो गयी हैं जिनपर साइनबोर्ड लटक गये हैं। साइन-बोर्ड लगना यानी औक़ातका बढ़ना। बहुत दिन पहले जब दीनानाथ हलवाईकी दूकानपर पहला साइनबोर्ड लगा था तो वहाँ दूध पीनेवालोंकी संख्या एकाएक बढ़ गयी थी। फिर बाढ़ आ गयी, और नये-नये तरीक़े और बेलबूटे ईजाद किये गये। 'ॐ' या 'जय हिन्द' से शुरू करके 'एक बार अवश्य परीक्षा कीजिए' या 'मिलावट साबित करनेवालेको सौ रुपया नगद इनाम' की मनुहारों या ललकारोंपर लिखावट समाप्त होने लगी।

चुंगी-दफ़्तरका नाम तीन भाषाओंमें लिखा है। चेयर-मैन-साहब बड़े अक़िलके आदमी हैं, उनकी सूझ-बूझका डंका बजता है, इसलिए हर साइनबोर्ड हिन्दी, उर्दू और अँगरेज़ीमें लिखा जाता है। दूर-दूरके नेता लोग भाषण देने आते हैं, देश-विदेशके लोग आगरेका ताजमहल देखकर पूरब-की ओर जाते हुए यहाँसे गुज़रते हैं···उनपर असर पड़ता है, भाई। और फिर मौसमकी बात: मेले-तमाशेके दिनोंमें हलवाइयों, जुलाई-अगस्तमें किताब-कागज़वालों, सहालगमें

कपड़ेवालों और खराब मौसममें वैद्य-हकीमोंके साइनबोर्डोंपर नया रोगन चढ़ता है। शुद्ध देशी घीवाले सबसे अच्छे, जो छप्परोंके भीतर दीवारपर गेरू या हिरमिजीमे लिखकर काम चला लेते हैं। इसके बग़ैर काम नहीं चलता। अहमियत बताते हुए वैद्यजीने कहा, "बग़ैर पोस्टर चिपकाये सिनेमावालोंका भी काम नहीं चलता। बड़े-बड़े शहरोंमें जाइए, मिट्टीका तेल बेचनेवालेकी दूकानपर साइनबोट मिल जायेगा। बड़ी ज़रूरी चीज़ है। बाल-बच्चोंके नाम तक साइनबोट हैं, नहीं तो नाम रखनेकी ज़रूरत क्या है? साइनबोट लगाके सुखदेव बाबू कम्पौण्डरसे डॉक्टर हो गये, बेग लेके चलने लगे।"

पास बैठे रामचरनने एक और नये चमत्कारकी खबर दी, "कल उन्होंने बुधईवाला इक्का-घोड़ा खरीद लिया...."

"हाँकेगा कौन?"—टीनकी कुरसीपर प्राणायामकी मुद्रामें बैठे पण्डितने पूछा।

"ये सब जेब कतरनेका तरीका है,"—वैद्यजीका ध्यान इक्केकी तरफ अधिक था, "मरीज़से किराया वसूल करेंगे। सईसको बख्शीश दिलायेंगे, बड़े शहरोंके डॉक्टरोंकी तरह। इसीसे पेशेकी बदनामी होती है। पूछो, मरीजका इलाज करना है कि रोबदाब दिखाना है। अंगरेजी आले लगाकर मरीजकी आधी जान पहले सुखा डालते हैं। आयुर्वेदी नब्ज देखना तो दूर, चेहरा देखके रोग बता दे! इक्का-घोड़ा इसमें क्या करेगा? थोड़े दिन बाद देखना, उनका सईस कम्पौण्डर हो जायेगा...."—कहते-कहते वैद्यजी बड़ी घिसी हुई हँसीमें हँस पड़े। फिर बोले, "कौन क्या कहे भाई? डॉक्टरी तो तमाशा बन गयी है। वकील मुख्तारके लड़के डाक्टर होने लगे! खून और संस्कारसे बात बनती है....हाथमें जस आता है, वैद्यका बेटा वैद्य होता है। आधी विद्या लड़कपनमें जड़ी-बूटियाँ कूटते-पीसते आ जाती है। तोला, माशा, रत्तीका ऐसा अन्दाज़ हो जाता है कि औषधि अशुद्ध हो ही नहीं सकती। औषधिका चमत्कार उसके बनानेकी विधिमें

है''''धन्वन्तरि''''' वैद्यजी आगे कहने जा ही रहे थे कि एक आदमीको दूकानकी ओर आते देख चुप हो गये, और बैठे हुए लोगोंकी ओर कुछ इस तरह देखने-गुनने लगे कि वे गप्प लड़ानेवाले फ़ालतू आदमी न होकर उनके रोगी हों।

आदमीके दूकानपर चढ़ते ही वैद्यजीने भाँप लिया। कुण्ठित होकर उन्होंने उसे देखा और उदासीन हो गये। लेकिन दुनिया-दिखावा भी कुछ होना है! हो सकता है कल यही आदमी बीमार पड़ जाये या इसके घरमें किसीको रोग घेर ले! इसलिए अपना व्यवहार और पेशेकी गरिमा चौकस रहना चाहिए। अपनेको बटोरते हुए उन्होंने कहा, "कहो भाई, राजी-खुशी।" उस आदमीने जवाब देते हुए मीरेकी एक कनस्टरिया सामने कर दी, "यह ठाकुर साहबने रखवायी है। मण्डीसे लौटते हुए लेते जायेंगे। एक-डेढ़ बजेके क़रीब।"

"उस वक़्त दूकान बन्द रहेगी," वैद्यजीने व्यर्थके काममें उलझते हुए कहा, "हकीम-वैद्योंकी दूकानें दिन-भर नहीं खुली रहतीं। व्यापारी थोड़े ही हैं, भाई!" पर फिर किसी अन्य दिन और अवसरकी आशाने जैसे जबरदस्ती कहलवाया, "ख़ैर, उन्हें दिक़्क़त नहीं होगी, हम नहीं होंगे तो बग़लवाली दूकानसे उठा लें। मैं रखता जाऊँगा।"

आदमीके जाते ही वैद्यजी बोले, "शराब-बन्दीसे क्या होता है? जबसे हुई तबसे कच्ची शराबकी भट्टियाँ घर-घर चालू हो गयीं। सीरा घीके भाव बिकने लगा। और इन डॉक्टरोंको क्या कहिए''''इनकी दूकानें ठौली बन गयी हैं। लैमन्स मिलता है दवाकी तरह इस्तेमाल करनेको, पर खुले-आम जिंजर बिकता है। वहीं कुछ नहीं होता। हम भंग अफ़ीमकी एक पुड़िया चाहें तो तफ़सील देनी पड़ती है।"

"ज़िम्मेदारीकी बात है,"—पण्डितजीने कहा।

"अब ज़िम्मेदार वैद्य ही रह गये हैं। सबकी रजिस्टिरी हो चुकी, भाई। ऐरे-गैरे-पचकल्यानी जितने घुस आये थे, उनकी सफ़ाई हो गयी।

अब जिसके पास रजिस्टिरी होगी वही वैद्यक कर सकता है। चूरनवाले वैद्य बन बैठे थे""सब खतम हो गये। लखनऊमें सरकारी जाँच-पड़तालके बाद सही मिली है""

वैद्यजीकी बातमें रस न लेते हुए पण्डित उठ गये। वैद्यजीने भीतरकी तरफ़ क़दम बढ़ाये, और औषधालयका बोर्ड लिखते हुए चन्दरसे बोले, "सफेदा गाढ़ा है बाबू, तारपीन मिला लो।" और वे एक बोतल उठा लाये जिसपर अशोकारिष्टका लेबल लगा था।

इसी तरह न जाने किन-किन औषधियोंकी शरीररूपी बोतलोंमें किस-किस पदार्थकी आत्मा भरी है। सामनेकी अकेली अलमारीमें बड़ी-बड़ी बोतलें रखी हैं; जिनपर तरह-तरहके अरिष्टों और आसवोंके नाम चिपके हैं। सिर्फ़ पहली क़तारमें ये शीशियाँ खड़ी हैं""उनके पीछे जरूरतका और सामान है। सामनेकी मेजपर सफेद शीशियोंकी एक पंक्ति है जिसमें कुछ स्वादिष्ट चूरन""लवण-भास्कर आदि है, बाक़ीमें जो कुछ भरा है उसे केवल वैद्यजी जानते हैं।

तारपीनका तेल मिलाकर चन्दर आगे लिखने लगा—'प्रो० कविराज नित्यानन्द तिवारी' ऊपरकी पंक्ति 'श्री धन्वन्तरि औषधालय' स्वयं वैद्यजी लिख चुके थे। सफ़ेदेके वे अक्षर ऐसे लग रहे थे जैसे रुईके फाहे चिपका दिये हों। ऊपर जगह खाली देखकर वैद्यजी बोले, "बाबू, ऊपर जयहिन्द लिख देना""और यह जो जगह बच रही है, इसमें एक ओर दवाईकी बोतल, दूसरी ओर खरलकी तसवीर""आर्ट हमारे पास मिडिल तक था लेकिन यह तो हाथ सधनेकी बात है।"

चन्दर कुछ ऊब रहा था। खामख्वाह पकड़ गया। लिखावट अच्छी होनेका यह पुरस्कार उसकी समझमें नहीं आ रहा था। बोला, "किसी पेण्टरसे बनवाते""अच्छा खाका लिख देता, वो बात नहीं आयेगी""
अपना पसीना पोंछते हुए उसने कूची नीचे रख दी।

"पाँच रुपये माँगता था बाबू""दो लाइनोंके पाँच रुपये! अब आगे

मेहनतके साथ यह साइनबोर्ड दस-बारह आनेका पड़ा। ये रंग एक मरीज़ दे गया। बिजली कम्पनीका पेण्टर बदहज़मीसे परेशान था। दो खुराकें बनाकर दे दी, पैसे नहीं लिये। सो वह दो-तीन रंग और थोड़ी-सी वार्निश दे गया। दो बक्से रँग गये"""यह बोर्ड बन गया और एकाध कुरसी रँग जायेगी"""तुम बस इतना लिख दो, लाल रंगका बोर्ड हम देते रहेंगे"""हाशिया तिरंगा खिलेगा?" वैद्यजीने पूछा और स्वयं स्वीकृति भी दे दी।

चन्दर गरमीसे परेशान था। जैसे-जैसे दोपहरी नज़दीक आती जा रही थी, सड़कपर धूल और लूका ज़ोर बढ़ता जा रहा था, मुलाहिज़ेमें चन्दर मना नहीं कर पाया। पंखेसे अपनी पीठ खुजलाते हुए वैद्यजीने उजरतके कामवाले, पटवारियोंके बड़े-बड़े रजिस्टर निकालकर फैलाना शुरू किये।

सूरजकी तपिशसे बचनेके लिए दूकानका एक किवाड़ा भेड़कर वैद्यजी खाली रजिस्टरोंपर खसरा-खतौनियोंसे नक़ल करने लगे। चन्दरने अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए पूछा, "ये सब क्या है वैद्यजी?"

वैद्यजीका चेहरा उतर गया, "खाली बैठनेसे अच्छा है कुछ काम किया जाये, नये लेखपालोंको काम-धाम आता नहीं, रोज़ क़ानूनगो या नायब साहबसे झाड़ें पड़ती हैं"""झक मारके उन लोगोंको यह काम उजरतपर कराना पड़ता है। अब पुराने घाघ पटवारी कहाँ रहे, जिनके पेटमें गँवई क़ानून बसता था। रोटियाँ छिन गयीं बेचारोंकी; लेकिन सही पूछो तो अब भी सारा काम पुराने पटवारी ही ढो रहे हैं। नये लेखपालोंकी तनख़्वाहका सारा रुपया इसी उजरतमें निकल जाता है। पेट उनका भी है"""तिया-पाँचा करके किसानोंसे निकाल लाते हैं। खायें न तो खायें क्या? दो-तीन लेखपाल अपने हैं, उन्हींसे कभी-कभार हलका-भारी काम मिल जाता है। नक़लका काम, रजिस्टर भरने हैं।"

बाहर सड़क वीरान होती जा रही थी। दफ़्तरके बाबू लोग जा चुके थे। सामने मुंगीमें पसकी टट्टियोंपर छिड़काव शुरू हो गया। दूर हर-

हैं तो ज़रूर वापस आयेगा····गाँववालोंकी मुर्री ज़रा मुश्किलसे खुलती है। कहीं बैठके सोचे-समझेगा, तब आयेगा····"

"और कहींसे ले लिया, तो ?"—चन्दरने कहा तो वैद्यजीने बात काट दी, "नहीं, नहीं बाबू।" कहते हुए उन्होंने बोर्डकी ओर देखा और प्रशंसासे भरकर बोले, "वाह भाई चन्दर बाबू! साइनबोर्ट जँच गया'''' काम चलेगा। ये पाँच रुपये पेण्टरको देकर मरीजोंसे वसूल करना पड़ता। इक्का-घोड़ा और ये खर्चा! बात एक है। चाहे नाक सामनेसे पकड़ लो, चाहे घुमाकर। सैयदअलीके हाथका लिखा बोट रोगियोंको चंगा तो कर नहीं देता। अपनी-अपनी समझकी बात है।" कहते हुए वे धीरेसे हँस पड़े। पता नहीं, वे अपनी बात समझकर अपनेपर हँसे थे या दूसरोंपर।

तभी एक आदमीने प्रवेश किया। सहसा लगा कि खलासी आ गया। पर वह पाण्डु रोगी था। देखते ही वैद्यजीके मुखपर सन्तोष चमक आया। वे भीतर गये। एक तावीज लाते हुए बोले, "अब इसका असर देखो। बीस पच्चीस रोजमें इसका चमत्कार दिखाई पड़ेगा। पाण्डु-रोगीकी बाँहमें तावीज बाँधकर और उसके कुछ आने पैसे जेबमें डालकर वे गम्भीर होकर बैठ गये। रोगी चला गया तो बोले, "यह विद्या भी हमारे पिताजीके पास थी। उनकी लिखी पुस्तकें पड़ी हैं····बहुत सोचता हूँ, उन्हें फिरसे नक़ल कर लूँ····बड़े अनुभवकी बातें हैं। विश्वासकी बात है, बाबू। एक चुटकी धूलसे आदमी चंगा हो सकता है। होमोपैथिक और भला क्या है? एक चुटकी शक्कर। जिसपर विश्वास जम जाये, बस।"

चन्दरने चलते हुए कहा, "अब तो औषधालय बन्द करनेका समय हो गया, खाना खाने नहीं जाइएगा?"

"तुम चलो, हम दस-पाँच मिनिट बाद आयेंगे।" वैद्यजीने गहमील काम अपने आगे सरका लिया। दूकानका दरवाजा भटखुला करके : । बाहर धूपकी ओर देखकर दृष्टि चौंधिया जाती थी।

बगलवाले दूकानदार बच्चनलालने दूकान बन्द करके, घर जाते हुए वैद्यजीकी दूकान खुली देखकर पूछा, "आप खाना खाने नहीं गये····"

"हाँ, ऐसे ही एक जरूरी काम है। अभी थोड़ी देरमें चले जायेंगे।" वैद्यजीने कहा और जमीनपर चटाई बिछायी; कागज, रजिस्टर मेजसे उठाकर नीचे फैला लिये। लेकिन गरमी तो गरमी····पसीना थमता ही न था। रह-रहकर पंखा झलते, फिर नक़ल करने लगते। कुछ देर मन मारकर काम किया फिर हिम्मत छूट गयी। उठकर पुरानी धूल-पड़ी शीशियाँ झाड़ने लगे। उन्हें लाइनसे लगाया। लेकिन गरमीकी दोपहर···· समय स्थिर लगता था। एक बार उन्होंने किवाड़ोंके बीचसे मुँह निकालकर सड़ककी ओर निहारा। एकाध लोग नज़र आये। उन आते-जाते लोगोंकी उपस्थितिसे बड़ा सहारा मिल गया। भीतर आये, बोर्डका तार सीधा किया और दूकानके सामने लटका दिया। धन्वन्तरि औषधालयका बोर्ड दूकानकी गरदनमें ताबीज़की तरह लटक गया।

कुछ समय और बीता। *आखिर उन्होंने हिम्मत की। एक लोटा* पानी पिया और जाँघों तक धोती सरकाकर मुस्तैदीसे काममें जुट गये। बाहर कुछ आहट हुई। चिन्तासे उन्होंने देखा।

"आज आराम करने नहीं गये वैद्यजी।" घर जाते हुए जान-पहचानके दूकानदारने पूछा।

"बस जानेकी सोच रहा हूँ····कुछ *काम पसर गया था*, सोचा, करता चलूँ····" कहकर वैद्यजी दीवारसे पीठ टिकाकर बैठ गये। कुरता उतारकर एक ओर रख दिया। इकहरी छतकी दूकान आँच-सी तप रही थी। वैद्यजीकी आँखें बुरी तरह नींदमें बोझिल हो रही थीं। एक झपकी आ गयी····कुछ समय जरूर बीत गया था। नहीं रहा गया तो रजिस्टरोंका तकिया बनाकर उन्होंने पीठ सीधी की। पर नींद····आती और चली जाती, न जाने क्या हो गया था।

सहसा एक आहटने उन्हें चौंका दिया। आँखें खोलते हुए वे उठकर

ाने दीवानका शोर मुझे याद आ रहा था। तभी एक आदमीने किवाड़े
ीतर झांका। वैद्यजीकी बात, जो शायद दस-दो-दस बार दर्दने बोलिछ
ो जाती, रुक गयी। उनकी निगाहने आदमीको पहचाना और वे उठके
हो गये। फौरन बोले, "एक बोट आसरामें बनवाया है, जबतक नहीं
आता, इसीमें काम चलेगा; फुरसत कहाँ मिलती है जो इस सबमें सर
खपाएँ……" और एकदम व्यस्त होते हुए उन्होंने उस आदमीसे प्रश्न किया,
"कहो भाई, क्या बात है?"

"डाक्टरी सरटीफिकेट चाहिए……कोसमा टेशनपर खलासी हूँ
साब।" रेलवेकी नीली वरदी पहने वह खलासी बोला।

उसकी जरूरतका पूरा अन्दाज करते हुए वैद्यजी बोले, "हाँ, किस
तारीखसे कबतकका चाहिए।"

"पन्द्रह दिन पहले आये थे साब, सात दिनकी और चाहिए।"

कुछ हिसाब जोड़कर वैद्यजी बोले, "देखो भाई, सर्टीफ़िकेट पक्का करके
देंगे, सरकारका रजिस्टर नम्बर देंगे, रुपया चार लगेंगे।" वैद्यजीने जैसे
खुद चार रुपयेपर उसके भड़क जानेका अहसास करते हुए कहा, "अगर
पिछला न लो तो दो रुपयेमें काम चल जायेगा……"

खलासी निराश हो गया। लेकिन उसकी निराशासे अधिक गहन
हताशा वैद्यजीके पसीनेसे नम मुखपर व्याप गयी। बड़े निरपेक्ष भावसे
खलासी बोला, "सोबरन सिंहने आपके पास भेजा था।" उसके कहनेसे
कुछ ऐसा लगा जैसे यह उसका काम न होकर सोबरन सिंहका काम हो।
पर वैद्यजीके हाथ नब्ज आ गयी, बोले, "वो हम पहले ही समझ रहे थे।
वगैर जान-पहचानके हम देते भी नहीं, इज्जतका सवाल है। हमें क्या
मालूम तुम कहाँ रहे, क्या करते रहे? अब सोचनेकी बात है……विश्वास-
पर जोखिम उठा लेंगे……पन्द्रह दिन पहलेसे तुम्हारा नाम रजिस्टरमें
…गे, रोग लिखेंगे……हर तारीखपर नाम चढ़ायेंगे तब कहीं काम
! ऐसे घरकी खेती नहीं है……" कहते-कहते उन्होंने चन्दरकी ओर

मददके लिए ताका। चन्दरने साथ दिया, "अब इन्हें क्या पता कि तुम बीमार रहे कि डाका डालते रहे"''सरकारी मामला है''।"

"पाँचसे कममें दुनिया-छोरका डॉक्टर नहीं दे सकता''''" कहते-कहते वैद्यजीने सामने रखा लेखपालवाला रजिस्टर खिसकाते हुए जोशसे कहा, "अरे, दम मारनेको फुरसत नहीं है। ये देखो, देखते हो नाम''''! मरीजोंको छोड़कर सरकारको दिखानेके लिए यह तफसीलवार रजिस्टर बनाने पड़ते हैं। एक-एक रोगीका नाम, मर्ज, आमदनी''''इन्हींमें तुम्हारा नाम चढ़ाना पड़ेगा! अब बताओ कि मरीजोंको देखना ज्यादा जरूरी है कि दो-चार रुपयेके लिए सर्टीफिकेट देकर इस सरकारी पचड़ेमें फँसना।"—कहते हुए उन्होंने तहसीलवाला रजिस्टर एकदम बन्द करके सामनेसे हटा दिया और केवल उपकार कर सकनेके लिए तैयार होने-जैसी मुद्रा बनाकर क़लमसे कान करोदने लगे।

रेलवेका खलासी एक मिनिट तक बैठा कुछ सोचता रहा। और वैद्यजीको सिर झुकाये अपने काममें मशगूल देख, दूकानसे नीचे उतर गया। एकदम वैद्यजीने अपनी ग़लती महसूस की, लगा कि उन्होंने बात गलत जगह तोड़ दी और ऐसी तोड़ी कि टूट ही गयी। और कुछ एकाएक समझमें न आया, तो उसे पुकारकर बोले, "अरे सुनो, ठाकुर सोबरनसिंहसे हमारी जैरामजीकी कह देना''''उनके बाल-बच्चे तो राजी-खुशी हैं?"

"हाँ, सब ठीक-ठाक हैं।" रुककर खलासीने कहा।

उसे सुनाते हुए वैद्यजी चन्दरसे बोले, "दस गाँव-शहर छोड़के ठाकुर सोबरनसिंह इलाजके लिए यहीं आते हैं। भई, उनके लिए हम भी हमेशा हाज़िर रहे''''" चन्दरने बोर्डपर आख़िरी अक्षर समाप्त करते हुए पूछा, "चला गया?"

"लौट-फिरके आयेगा''''" वैद्यजीने जैसे अपनेको समझाया, पर उसके वापस आनेकी अनिवार्यतापर विश्वास करते हुए बोले, "गँवई-गाँवके वैद्य और वकील एक ही होते हैं। सोबरनसिंहने अगर हमारा नाम उसे बताया

हैं तो जरूर वापस आयेगा''''गाँववालोंकी मुर्री जरा मुश्किलसे खुलती है। कहीं बैठके सोचे-समझेगा, तब आयेगा''''"

"और कहींसे ले लिया, तो?"—चन्दरने कहा तो वैद्यजीने बात काट दी, "नहीं, नहीं बाबू।" कहते हुए उन्होंने बोर्डकी ओर देखा और प्रशंसासे भरकर बोले, "वाह भाई चन्दर बाबू! साइनबोर्ड जँच गया'''' काम चलेगा। ये पाँच रुपये पेण्टरको देकर मरीजोंसे वसूल करना पड़ता। इक्का-घोड़ा और ये खर्चा! बात एक है। चाहे नाक सामनेसे पकड़ लो, चाहे घुमाकर। मैयदअलीके हाथका लिखा बोर्ड रोगियोंको चंगा तो कर नहीं देता। अपनी-अपनी समझकी बात है।" कहते हुए वे धीरेसे हँस पड़े। पता नहीं, वे अपनी बात समझकर अपनेपर हँसे थे या दूसरोंपर।

तभी एक आदमीने प्रवेश किया। सहसा लगा कि ग्राहक आ गया। पर वह पाण्डु रोगी था। देखते ही वैद्यजीके मुखपर सन्तोष चमक आया। वे भीतर गये। एक तावीज लाते हुए बोले, "अब इसका असर देखो। बीस पच्चीस रोजमें इसका चमत्कार दिखाई पड़ेगा। पाण्डु-रोगीकी बाँहमें तावीज बाँधकर और उसके कुछ आने पैसे जेबमें डालकर वे गम्भीर होकर बैठ गये। रोगी चला गया तो बोले, "यह विद्या भी हमारे पिताजीके पास थी। उनकी लिखी पुस्तकें पड़ी हैं''''बहुत सोचता हूँ, उन्हें फिरसे नकल कर लूँ''''बड़े अनुभवकी बातें हैं। विश्वासकी बात है, बाबू। एक चुटकी धूलसे आदमी चंगा हो सकता है। होमियोपैथिक और क्या है? एक चुटकी शक्कर। सिर्फ विश्वास जम जाये, बस।"

चन्दरने चलते हुए कहा, "अब तो औषधालय बन्द करनेका समय हो गया, खाना खाने नहीं जाइएगा?"

"तुम चलो, हम दस-पाँच मिनिट बाद आते।" वैद्यजीने [illegible] बाहरका दरवाजा बन्द कर लिया। [illegible] बैठ गये। [illegible] आती थी।

बगलवाले दूकानदार बच्चनलालने दूकान बन्द करके, घर जाते हुए वैद्यजीको दूकान खुली देखकर पूछा, "आप खाना खाने नहीं गये...."

"हाँ, ऐसे ही एक जरूरी काम है। अभी थोड़ी देरमें चले जायेंगे।" वैद्यजीने कहा और जमीनपर चटाई बिछायी; कागज, रजिस्टर मेजसे उठाकर नीचे फैला लिये। लेकिन गरमी तो गरमी....पसीना थमता ही न था। रह-रहकर पंखा झलते, फिर नकल करने लगते। कुछ देर मन मारकर काम किया फिर हिम्मत छूट गयी। उठकर पुरानी धूल-पड़ी शीशियाँ झाड़ने लगे। उन्हें लाइनसे लगाया। लेकिन गरमीकी दोपहर.... समय स्थिर लगता था। एक बार उन्होंने किवाड़ोंके बीचसे मुँह निकालकर सड़ककी ओर निहारा। एकाध लोग नज़र आये। उन आते-जाते लोगोंकी उपस्थितिसे बड़ा सहारा मिल गया। भीतर आये, बोर्डका तार सीधा किया और दूकानके सामने लटका दिया। धन्वन्तरि औषधालयका बोर्ड दूकानकी गरदनमें ताबीजकी तरह लटक गया।

कुछ समय और बीता। आखिर उन्होंने हिम्मत की। एक लोटा पानी पिया और जाँघों तक धोती सरकाकर मुस्तैदीसे काममें जुट गये। बाहर कुछ आहट हुई। चिन्तासे उन्होंने देखा।

"आज आराम करने नहीं गये वैद्यजी।" घर जाते हुए जान-पहचानके दूकानदारने पूछा।

"बस जानेकी सोच रहा हूँ....कुछ काम पसर गया था, सोचा, करता चलूँ...." कहकर वैद्यजी दीवारसे पीठ टिकाकर बैठ गये। कुरता उतारकर एक ओर रख दिया। इकहरी छतकी दूकान आँच-सी तप रही थी। वैद्यजीकी आँखें बुरी तरह नींदसे बोझिल हो रही थीं। एक झपकी आ गयी....कुछ समय जरूर बीत गया था। नहीं रहा गया तो रजिस्टरोंका तकिया बनाकर उन्होंने पीठ सीधी की। पर नींद....आती और चली जाती, न जाने क्या हो गया था।

सहसा एक आहटने उन्हें चौंका दिया। आँखें खोलते हुए वे उठकर

भटके हुए लोग

जबसे शरणार्थी कपड़ेवालोंकी दूकानें यहाँ लग गयी हैं तबसे यह चौराहा सँकरा हो गया है। उधर पार्कमें भी लकड़ीकी इन पेटीनुमा दूकानोंकी कतारें लग गयी हैं, जैसे किसी यार्डमें मालगाड़ियाँ खड़ी हों। इन नये दूकानदारोंके कारण पुराने बज़ाज़ोंको कराहते देखा गया है—"अजी साहब, सब बाज़ार चौपट कर दिया! इनका तो चमक-दमकका ब्योपार है, केलासन और साटनका। इसीलिए शोलापुरी धोती उड़ गयी।"

और उधर पंजाबी बज़ाज़ोंमें, गाँवके धुर्रेको, "आइए चौधरी साहब, बिटियाके लिए आठ हाथकी! फट्ट किलास, मिलकी मुहरवाला जोड़ा। बीड़ी पी के आरामसे देखो लम्बरदार, एकसे एक अगरी चीज़ है!"

बेसिक फ़्री स्कूलके मास्टरजीसे, "ये देखिए पिरन्सपल साहब, आप लोगोंके लायक बस एक थान लेता आया, वढ़िया मस्साईज़! अरे दाम, आपसे कोई सौदा करना है। बीजक देखकर दो पैसा ज़्यादा दे दें। ओए जवाहिर, एक प्याली चाय तो ले आ बाबू साहबके लिए...."

कुछ साल पहले यह बाज़ार बड़े ज़ोर-शोरसे चालू हुआ था। पर मन्दीका सूखा; किसी रोज़गारकी बेल लहलहाने न पायी। पंजाबियोंके अपने ऐंकेकी शक्ल मिटी और पार्कमें बैठनेवाले बज़ाज़ोंकी शिकायतें सुनाई पड़ने लगी, उनके आपसी

झगड़े सामने आने लगे। खास सड़ककी पटरीपर लगी पन्द्रह-सोलह ब
की दूकानें भीतर भेड़ोंकी तरह भरे दूकानदारोंकी आंखोंमें गड़ने लगी
'सारे गाहक उधर ही फँसे रह जाते हैं, यहाँ दूकानदारोंकी कोई ज
है !' और यह सच था कि सड़कवाली दूकानोंकी कुछ बिक्री हो भी जा
थी। भीतर पार्कमें कोई झांकने तक नहीं जाता।

सड़ककी पन्द्रह दूकानोंमें दसवीं दूकान हंसराजकी है। दूकान क
करता है, नाम करता है। सारे पंजाबी सुबह सात बजे आकर अप
दूकानोंके फट्टे छतरीकी तरह तानकर बैठ जाते हैं। पर हंसराज मुँ
अँधेरे पासके गांवमें छाछ पीने निकल जाता है। आठ बजे घर लौटता है
ताला खोलता है और तहमद लगा, पगड़ीमें शमला छोड़कर झूमता हुअ
पंजाबी चौधरीकी तरह दस बजे दूकान आता है। थोड़ी देर गप-शप,
फिर थानोंका तकिया बनाकर उर्दू अखबार पढ़ने लगता है। गाहक आ
गया तो भला, न आया तो भला। शाम छह बजे दूकान बन्द की और
चल पड़ा। उस धूरी शाममें उसकी तन्दुरुस्त और चौड़ी, लाट ऐसी देह-
के ऊपर पगड़ीका शमला झूमता हुआ दीख पड़ता। कभी-कभी कानोंमें
पडी मुरकियाँ रोशनीमें दमक उठतीं। उसकी चालको देखकर बस्ती
निरी छोटी-सी लगने लगती। मीलों फैलाव होता और ये कदम उठे
जाते....देखकर आँखें निहाल हो जातीं।

दोपहरमें पन्द्रहवीं दूकानवाला बूढ़ा परमोतराम आकर बैठ जाता
तो कुछ बातें हो लेतीं। खबर थी, चुंगी इन दूकानोंको हटानेवाली है।
हंसराज तो बेखबर था। परमोतरामने पगड़ीकी लटकनसे मुँह पोछते हुए
कहा, 'काके, सुना है चुंगी दफ्तर नोटिस देनेवाला है ?"

"किस खातिर ?" हंसराजने पूछा।

"पक्की दूकानें बनेंगी। पैमाइश वग़ैरह तो हो गयी।"

"कब ?"

"महीना-भर पहले। थोड़े दिनकी मुसीबत जरूरी है पर मुस्तकिल

व नहीं था, वह यहाँ भी बंद होगा। मनका बुजदिल चोर
ामने उसे गुनाहोंमें डूबा देखा तो उन्हींको हुआ। भगवान्
रा था उसे। जब कुछ करनेको न होता तो मूक्तियोंको कानोंमें
ता—

ाह दो सुनो हकायत
ाया होगा हदायत
ायें पार बेड़ा
ायें पार बेड़ा
····

ुनाता हुआ वह पटलेसे उतरा और अपनी दूकानकी तरफ

चुंगीसे नोटिस मिला। पहले कुछ खलबली मची, फिर
सबने दूकानें खाली कर दीं। चुंगीके मजदूरोंने उन्हें उठाकर
खाली डिब्बोंकी तरह लुढ़का दिया।
हुआ कि चुंगीके मेम्बरोंकी दौड़-धूप भी शुरू हो गयी। ठेका
इस बार किसी वैश्यका नम्बर था। क्योंकि सड़क मर-
छले ही दिनों ब्राह्मण ले चुके थे। कांग्रेसी चेयरमैनने
यही तरीक़ा निकाला था। क्योंकि वे स्वयं वैश्य थे न

उन्हें भण्डारजीके नामसे ही जानते-पहचानते थे। वे खद्दर
बहुत पहले शहरमें ही उनकी एक दूकान थी—लक्ष्मी
में स्त्रैणता थी, इसलिए भण्डारजी नाम चालू होगया।
क न रहकर नामका अंश हो गया था। ये राजनीतिक
नेता थे, उस नस्लके, जो पानी पिलाकर भाषणकर्ताको
थी।

ठेका वैश्योंके आदमीको ही मिल गया, पर बड़ी चख-चखके बाद। दूकानोंकी नींव पड़ी और महीने-भरमें दस दूकानें पूरी होकर तामीरका काम ग्यारहवींपर अटक गया।

शरणार्थी बजाजोंका इस बीच काफ़ी नुकसान हो चुका था। वे बिना दूकान-जगहके मँडरा रहे थे। जब सात दिन बीत गये और ग्यारहवीं दूकान अधबनी ही पड़ी रही, आगेका काम नहीं चला, तो सनसनी फैली। आख़िर यह सब कबतक पूरा होगा? ऐसे तो भूखों मर जायेंगे। जाड़ोंकी बिक्री सिरपर है! दिसावरका पैसा अटक गया है! सम्बन्धित दूकानदार चुंगीके मेम्बरोंके घर दौड़-भाग करने लगे, अपनी-अपनी तरहसे कोशिशें करने लगे।

पता चला कि वैश्योंने ब्राह्मणोंके सड़कवाले ठेकेमें टाँग अड़ाकर काम रुकवा दिया है। कोई कहता था कि चुंगीकी मीटिंगमें बिहारीलाल अगरवाल और चौबे हरीनाथमें कहा-सुनी हो गयी। दोनों रौबेल आदमी, डट गयी। उन्हींके झगड़ेके कारण यह सब हुआ। अगरवालने सड़कका काम रुकवा दिया, चौबेजीने दूकानोंका। जबतक उनका झगड़ा तय नहीं होता, दोनोंमें-से एक भी काम आगे नहीं बढ़ेगा।

दूकानदारोंने अर्जियाँ दीं। तब यह सुना कि ये दस दूकानें चालू कर दी जायेंगी। किराया बोलीसे तय होगा। असली हक़दारोंके कान खड़े हुए। बोली लगी तो हक़ छीन जायेगा, जो ज्यादा लगायेगा वही ले जायेगा।

मेम्बरोंके घर धरने पड़ने लगे। पार्कके भीतरवाले कुछ दूकानदारोंने भी दौड़-धूप शुरू की। शायद तीर लग जाये! ये तो अपनी-अपनी पहुँच-की बात है! जो मेम्बर तय करेंगे, वही होगा; जिसे चाहेंगे उसे दूकान मिलेगी।

परसोतराम हताश होकर बैठा था। उसकी तो पन्द्रहवीं दूकान थी। वैसे भी उसका हक़ नहीं, फिर पैसा भी पास नहीं, मेम्बरोंसे जान-पहचान,

राह-रस्म भी नहीं। शामको हंसराज सामनेसे निकला तो परसोत
पुकारकर बैठा लिया। सतवन्ती हुक्का गरमकर लायी थी। उसे दे
वापस चली गयी, पर टाटके परदेके पार हंसराज बराबर एक छा
देखता रहा।

परसोतरामने पूछा, "काके, तूने कुछ जोर लगाया दूकानके ि
जिसकी लाठी उसकी भैंस हो रही है। सुना, किराया नीलामसे तय ह
तब हम लोग कहाँ जायेंगे ?"

"नीलामसे कैसे तय होगा ? जिसकी जो दूकान थी वही उसे मिले
हाँ, किराया चुंगी तय कर देगी।" हंसराज बोला।

"ऐसा तो नहीं सुनाई पड़ता। ऐसा हुआ तो तेरी दूकान तो तय
क़िस्मतका जोर कि दसवीं दूकान बन गयी। इन बाकी पाँचके बनने
कुछ सुनाई नहीं पड़ा।"

"उधर मदार-दरवाज़े सड़क बन रही थी, उसका झंझट निबट ज
तो इधर भी काम चालू हो, महीने-दो-महीनेमें हो ही जायेगा।"

"मौसम तो निकल जायेगा तबतक, शुरू जाड़ेमें ही तो बि
होती है!"

"तब तक तुम मेरी दूकानपर बैठ लेना। फ़ीरोजपुरमें कुछ ज़मी
दी है सरकारने, हमें भी मिल गयी है। सोचता था देख आऊँ, ठीक-ठा
हो तो फिर यहाँका सब छोड़ दूँ।" हंसराज बोला।

टाटके पीछेकी छाया कुछ हिल गयी थी, कालापन एक किनारे अ
गया था और चौखटसे लगी जैसे दो प्रकाश-रश्मियोंका आभास हंसरा
तक आ रहा था।

"बिलकुल जाऊँगा नहीं बाबा।" हंसराज फिर बोला, "अकेला वहाँ
भी रहूँगा, तुम सब भी साथ चले चलना। यहाँसे तो बेहतर ही होगा।
खेती-बारी अपना काम रहा है, अब शुरू करना पड़ेगा। तब फ़सल
और मेहनत दोनों हमारी होंगी।"

परसोतरामको जैसे थोड़ा-सा आसरा बँधा। छुटी हुई धरतीका मोह मनमें भर गया। आखिर पंजाब पंजाब है! यहाँ वह जिन्दगी कहाँ? और हंसराजके सामने लम्बे-लम्बे मैदान फैले पड़े थे। एक दूसरेको काट-कर जाती हुई पगडण्डियाँ। छतनार नीम तले दुपट्टेका तकिया बनाकर लेटी हुई बटोही औरतें। चौपालोंमें ढोलककी धमकके साथ दोहा-माहिया। पीपलमें पड़े हुए झूले। कीकरके झुण्ड और फसलोंपर उड़ती मधुमक्खियोंके चमकदार पर। नाचती-गाती वधुएँ जैसे फसलकी धरतीपर चली आ रही हों...

"तू जमीन देख आ, मैं दुकान देखता रहूँगा, कहीं ऐसा न हो कि कोई दूसरा हाथ मार ले। पार्कका लालचन्द बहुत जोर मार रहा है कि दुकानोंके किरायेका नीलाम हो। चुंगीवाले भी डिग रहे हैं, उनकी आमदनी बढ़ती है।" परसोतरामने कहा, "पिछली दुकानका किरायेनामा तो तेरे पास है?"

"तब हमने खिलकतसे दुकान खोली थी। लोलायरके नाम किराये-नामा था। वह चबूतरे बैठ गया तो अपने-आप में मालिक हो गया, कब्जेदार तो मैं भी था। कौन नहीं जानता, कौन कालसे बैठ रहा है। मेरी दुकान नहीं जायेगी, वह तो मिलके रहेगी!" हंसराजने कहा।

तभी लाजोके गिलास लेकर सतवन्ती आयी।

"ये भाई चढ़ा है!" कहते हुए हंसराजने गिलास उठा लिया।

जब वह चला तो बूढ़ा परसोतराम नारियल पकड़े-पकड़े मोड़ तक छोड़ने आया। मुड़ते हुए उसने घूमकर देखा था। अँधेरा हो गया था, पर एकाएक ट्रालाई अँधेरेमें भी लुप्त नहीं होती।

दूसरे धान-दौड़ शुरू हो गयी। जिनकी दुकानें बनी थीं वे भी कहीं अटकाये थे, जिनकी नहीं बनी थीं, वे भी थे, और पार्कके भीतर-वाले दुकानदार भी जमा थे। रामको चुंगीके लेकर जमा हुए और उनपर तैरह-बढ़ चढ़ने होने लगी। दुकानोंका अलाटमेण्ट होना था।

बार-बार घण्टीकी आवाज़ आती तो मेम्बरोंका शोर कम होता। फिर कुछ बहस चलती, ऊँचे-ऊँचे स्वरोंका उफान, फिर घण्टीका छींटा।

पंजाबी दूकानदार खड़े दरवाज़ों-खिड़कियोंके पास सुनगुन ले रहे थे कि भीतर नोभूमल पंजाबीकी बुलाहट हुई। कान खड़े हुए। लौटकर आया; असमंजसमें था। पुरानी दूकानका किरायेनामा माँगा था। वह तो है नहीं, लेकिन शायद दूकान नम्बर एक उसके नाम चढ़ गयी है। किराया तीस रुपये माहवार तै हुआ है। सबका एक रेट! पुराने दखल-दारोंको ही दूकानें मिल रही हैं। जो जिसकी दूकान थी, उसे ही मिलेगी। कुछ और लोगोंकी बुलाहट भीतर हुई। लीलाधरको हंसराजने देखा तो कुछ खटका हुआ। पर इससे क्या? वह तो चक्कोपर बैठता है।

रात ग्यारह बजे भण्डारजी, चपरासी और सेक्रेटरीके साथ बाहर निकले। नाम सुनाये जाने लगे—'दूकान नम्बर एक: नोभूमल ठाकुर दास; नम्बर दो; तीन''''दस—भीखमलाल लीलाधर!'

हंसराज गौरसे सुन रहा था। परसोतराम अचरजसे मुँह बाये रह गया। हंसराजकी आँखें लीलाधरको खोज रही थीं। वह नहीं दिखा तो भीतर जाते भण्डारजीको उसने जा पकड़ा, "मेरा क्या होगा, दसवीं दूकान मेरी है! ये ज़ुल्म है, सरासर बेईमानी है।" पर भण्डारजी कमरेमें घुसते चले गये।

"जबतक इन्साफ़ नहीं होता, मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा। यहीं धरना दूँगा।" और वह छाती तानकर तहमदका फेंटा ठीक करता दरवाज़े-पर अड़ गया। बाहर खड़े पंजाबियोंमें इस ज्यादतीके प्रति आवाज़ें उठने लगीं।

"भीखमलाल मुँहलगा आदमी है।" कोई कह रहा था, "लीलाधर-पर ज़ोर डालकर ये सब कराया गया है।"

"एक-एकको देख लूँगा! यह भी कोई धाँधली है! सबको अपनी-अपनी दूकानें मिली हैं। किराया न भरता तो बात भी थी! पैसा ली:

सालका, दो सालका।" हंसराज फुफकार रहा था।

"भीखमलाल और सदर साहब समाजी है, साथ उठना-बैठना है।"

तभी भीतरसे चपरासी आया, "आप लोग अब अहाता खाली कर दें।" फिर हंसराजसे बोला, "सिकत्तर साहबने कहा है कि ग्यारहवीं दूकान तुम्हारे *नाम अभीसे चढी है। नक्शेमें एक दूकान ज्यादा है।"*

"इससे क्या? दसवीं मेरी है, ग्यारहवीं उसे दी जाये।" हंसराज बिफरा।

"अरे, तो ये चपरासी क्या करेगा?" किसीने कहा, पर हंसराज वहीं डटा रहा। धीरे-धीरे सब सुनसान हो गया। भीड चली गयी और जब चपरासी कमरेमें ताला बन्द करनेके लिए निकला तब उसे पता चला कि चेयरमैन साहब दूसरी तरफवाले दरवाजेसे जा चुके हैं।

क्षोभ और असमर्थतासे उसका जी जल उठा। लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ सीधा बाबाके घर पहुँचा। आवाज लगायी तो सतवन्तीने दरवाजा खोला। क्रोधसे हंसराजकी आँखें चमक रही थीं।

"क्या हुआ?" सतवन्तीने चिन्तासे पूछा।

"बाबाको बुलाओ," खड़े-खड़े वह बोला।

"भीतर आ जाओ।" सतवन्ती उसे शब्दोंके अधिकारसे भीतर ले गयी, बैठाकर फिर पूछा, "क्या हो गया?"

"मैं इन जालिमोंसे....मैं सारी दूकानें फूँक दूँगा बेईमानोंकी...."

"दूकान नहीं मिली?" सतवन्तीने पूछा।

"मेरी दूकान लीलाधरको मिलाकर दूसरेके नाम कर दी, लीलाको तो देख लूँगा..."

"नाहक गरम होते हो, इसमें क्या रखा है? तुम तो पंजाब चलनेको कह रहे थे।" कहकर सतवन्ती खिलखिला पड़ी। हंसराज इस बेतुकेपन-को नहीं समझ पाया, घूरकर देखा उसने।

"क्यों, क्या हुआ?" आँखें चमकाते हुए सतवन्ती कह रही थी,

"जब चलना ही है तो यहाँसे मतलब ? वापस पंजाब नहीं जाओगे, अपन[illegible]
जमीन छोड़ दोगे ?"

हंसराजकी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। तनाव वैसा ही था। सतवन्ती खुश थी, यहाँ कितना दम घुटता है, सचमुच अगर यह पंजाब ले जाये तो····ये फिर चौधरी हो जायेगा अपनी जमीनपर। सपनेसे आँखें खुलीं। हंसराज फूला बैठा है। उसकी नाराजीपर अनायास हंसी आ गयी, रोकते हुए बोली, "मेरे सामने ऐसे मत रहा करो। गुस्सा बहुत है। अच्छा पानी लाती हूँ।"

हंसराजने जैसे कुछ निश्चय किया हो। जेबसे दियासलाई निकालकर बीड़ी सुलगायी और तैशमें पीने लगा। सतवन्ती लोटा लेकर मुसकराती हुई आयी। अच्छा तो नहीं लगा, पर कहे भी क्या ? नाराजीका क्रोध और हंसी एक ही होता है। वैसे ही बोला, "पानी नहीं चाहिए।"

"नहीं चाहिए !" सतवन्तीने प्रश्न किया, फिर वही हंसीका फव्वारा, "अभी गरमी गयी नहीं !" और वह लोटे-भर पानी हंसराजके ऊपर था। कन्धेसे कमर तक, सारा ही तो भीग गया था। उसका सुर्ख हाथ और हंसराजका बड़बड़ाना····"तू हर बातको मजाक समझती है !" कहता हुआ वह उठा, "बाबा आये तो रोकना नहीं।" और बाहर निकल गया।

टहलता तो जेब जब भी भीगी हुई थी। गुस्सा आया सतवन्तीपर। पल्ले-पल्ले दामन निचोड़ा और बढ़ता गया। [illegible] गुनगान थी। [illegible] भरी थी। पर उसका [illegible]····बार-बार दिल मसोस उठता। [illegible] कुछ कर दे। कैसे कहे ? इस अन्यायका प्रतिरोध, [illegible]। [illegible] आ गयी थी। अभी कुछ [illegible] रहा था। [illegible] था। [illegible] दमक जमा ले, तो [illegible]। [illegible] होता है ? होता ! [illegible] बढ़कर वह [illegible] है और [illegible], [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] था, [illegible] था। [illegible] हो गयी,

ज़ुल्मका प्रतिरोध विध्वंससे ही हो पाता है। दूकानोंके पटलोंपर उसने बीन-बीनकर कूड़ा जमा किया। इधर-उधर पड़े कागज़, लकड़ीकी खपच्चें, चिथड़े, बोरेके टुकड़े। सब जमा हो गया था। आस-पास कोई नहीं था। ये सब खाक होकर रहेगा। अभी एक लपट इन चीड़के तख्तोंसे उठेगी और सब राख हो जायेगा, ये दसों दूकानें····

दियासलाई उसके हाथमें थी, कुछ और उसके सामने नहीं था। चेतनामें केवल आग थी। उसने तीली रगड़ी। वह बीचसे टूट गयी। दूसरी तीली, तीसरी तीली, चौथी, पाँचवीं····झुंझलाकर वह रगड़ता जाता—दस, पन्द्रह, बीस, पर चिनगारी नहीं फूटी। हारकर उसने माचिसको तोड़-मोड़कर फेंक दिया। कुछ क्षणोंका असमंजस, अकुलाहट और फिर शान्ति।

ग्लानिसे जी भर उठा। पंजाबकी लपटोंने क्या किया था? इन बेचारोंका क्या कसूर। जीनेके लिए कोई क्या कुछ नहीं करता? जी सकना तो स्वार्थ नहीं, जीवित रह सकनेके लिए की गयी कोई भी कोशिश, कोई भी तरीका, स्वार्थकी कोटिमें नहीं रखा जा सकता। वह तो एक विवश आवश्यकता है। विवशताकी सिद्धि चाहे स्वार्थ हो, पर आवश्यकताकी सिद्धि तो अधिकार है।

उसके सामने सब था। दिल भर आया था। पर बाबा क्या करेगा, कैसे चलेगा उसका काम? दूकान देकर निश्चिन्त हो जाता। धीरे-धीरे वह घर वापस लौट आया।

सुबह उठा तो परसोतरामके घर गया। बोला, "बाबा, मैं कल फीरोज़पुर जा रहा हूँ, ज़मीन तो ले लूँ। यहाँ भी दूकानें कुछ दिनोंमें बन जायेंगी, पर यहाँ तो क्या लेना-देना है। ज़मीनकी देखभाल अकेले बसकी नहीं, तुम तैयारी रखना। पंजाब न जाना हो तो अभीसे बता दो····"

"चलूँगा क्यों नहीं, जी बहुत भटकता है हंसराज! वैसे क्या होगा। कल रात चेयरमैन साहबके घर चला गया था। उन्होंने कहा है कि जल्दी

ही बाक़ी दूकानें बनेंगी। ग्यारहवीं तुम्हें ही मिलेगी, दस
तुम अरज़ी दिये जाओ कि दसल मुझे दे दिया जाये। मैंने स
था, उन्होंने ही कहा है।"

"ठीक है, इसका आसरा भी क्यों छोड़ो, मैं अरज़ी
कहकर हंसराज थोड़ी देर बाद चला गया।

दूसरे दिन हंसराजने सामान बांधा। फालनू सामान ए
कर बाबासे मिलने गया। सतवन्ती इन्तज़ार ही कर रही
पूछा, "हमें कबतक ले जाओगे ?"

"जैसे ही वहां ठीक हुआ। पहुंचते ही ठीक हो जायेगा
कागज़ मिला है।"

"चौधरी हो गये !"

सुनकर हंसराज हँस पड़ा, बोला, "हवेली बग़ैर कोई
है ? वहां तो झोपड़ी भी नहीं : कैसे रहेगी मेरे साथ ?"

"छांह तले।"

"काहेकी छांह......"

"नीमकी !" कहकर सतवन्ती खिलखिला उठी, "जो
होगा।"

"अपना मानती है ?"

"बाबा आ गये

हंसराजने देखा [illegible] र बाल्टी लिये कुएँसे आते
थमको ठिठक गये। [illegible] । बोला, "ये आओ किस
परगोनरामने सुनकर [illegible] जा रहे हो, ठीकसे जाना,
ख़बर देना।"

"पहुंचते ही [illegible] गा। जगह देख लूं, वहीं
इन्तज़ाम कर लूंगा। अब दूकानका काररवाई पहुंचते भी कोई ख़ा
तबतक सब ठीक हो जायेगा।"

"वह फिर भी अपना वतन है। इन आँखों अब तो देख लूँ, नहीं तो आस ही टूट गयी थी। उस परवरदिगारकी बड़ी-बड़ी बाँहें हैं। चिट्ठी फ़ौरनसे पेश्तर डालना।"

'हूँ' करके वह बाहर निकला और स्टेशनकी तरफ़ चला गया। रात हो चुकी थी, पर गाड़ीमें अभी देर थी।

सतवन्ती लेट रही। बार-बार माहियाकी कड़ियाँ होंठोंपर आती थीं। डेवढ़ीपर नीमका पेड़, झूला पड़ा है। भीतर हवेलीमें न जाने कौन-कौन चरखा कात रही हैं, फुलकारीके बूटे! शमला हवामें फड़फड़ा रहा है, घोड़ेके खुरोंसे धूल उड़ रही है, और हसराज खेतोंकी मेड़पर सरपट घोड़ा दौड़ाता दूर मैदानमें ओझल हो गया। फ़सलें हाथ उठाये खड़ी हैं। चिराग़ जले, नीम तले वह कूदकर घोड़ेसे उतरा है। 'दिन-दिन-भर बाहर रहना अच्छा नहीं।' मोहसे उसने आँखें बन्द कर लीं।

और दसवें दिन हंसराजकी चिट्ठी आ गयी, "मैं खैरियतसे यहाँ पहुँच गया हूँ। जैसे पुराने दिनोंमें वापस आ गया हूँ। तुम्हें तो बड़ा सकून मिलेगा यहाँ। बड़ी शान्ति है। सतवन्तीका मन भी लग जायेगा। नये बसे किसानोंने अपनी ज़मीनोंपर घर बनाये हैं। आबादी थोड़ी-बहुत है। हम भी यहीं बस जायेंगे। जगह अच्छी है, पैदावार भी बुरी नहीं। सरकारी दफ़्तर गया था, काग़ज़ दिखाया तो पहले बाबू लोगोंको अचरज हुआ। कहते थे कि आनेमें बड़ी देर कर दी। जो ज़मीन मेरे नाम चढ़ी थी वह बन्दोबस्तके किसी अफ़सरने अपने आदमीको दिलवा दी है। दूसरी ज़मीन मिलेगी। बहुत जल्दी मिल जायेगी, यह इत्मीनान दिलाया है। अभी पता-ठिकाना ठीक नहीं, जवाब कहाँ मँगवाऊँ। दस-पन्द्रह रोज़की बात है। मैं खुद चिट्ठी डालूँगा। तैयारी रखना।"

तबसे लगभग एक साल गुजर गया, न ग्यारहवीं दूकान बनती
और न हंसराजकी चिट्ठी ही आती है। पता नहीं यहां क्या हो रहा है
और वह भी जमीनकी तलाशमें न जाने कहां भटक गया।

●

चायघर

इस चायघरको कुछ उदास रहनेकी आदत पड़ गयी है। नहीं कह सकता कबसे, पर इतना तो अवश्य है कि और चायघरोंकी भाँति इसमें वे ख़ुशनुमा रोशनियाँ नहीं होतीं, भुनते गोश्तकी महक नहीं उड़ती और न वह शानदार फ़र्नीचर ही है और न वे छल्लोंमें फँसे परदे, जो सड़ककी उसाँसोंको रंगीन क़ह-क़हे चूमने नहीं देते। यह चायघर पूरा चायघर ही है। इसमें उबलते पानीमें पत्ती छोड़कर चाय बनायी जाती है एक बार, और फिर उसी पत्तीको उबालकर रंग उतारा जाता है बार-बार। इसकी दीवारोंको कभी साफ़ किया जा चुका है, पर अब उनपर फिरसे रँगाई होना कठिन है। एक लम्बा-सा कमरा है, जिसमें चौकोर मेज़के इर्द-गिर्द हरी रँगी हुई कुर-सियाँ हैं और दोनों तरफ़ चितकबरी दीवारके सहारे दो बेंचोंके सामने कुछ ऊँची लम्बी-सी मेज़।

तो उदास इसलिए है कि इसमें घुसनेवालोंका स्वागत वे परदे नहीं करते, भीतर पंखोंकी हवा चूमने नहीं दौड़ती और न रेडियोकी मादक स्वर-लहरियाँ मदहोश ही कर देती हैं। बस, अपनी बिरादरीकी दो परम्पराएँ लेकर यह चल रहा है, एक तो यह कि एक 'लेडीवेटर' इसमें है और दूसरे, इसकी मेज़ोंपर पुराने काँचके गिलासोंमें फँसे, मुरझाये गुलदस्ते हैं।

वह आज उस लम्बी बेंचको छोड़कर बीचमें पड़ी चौकोर मेज़पर बैठा है। इधर-उधर पत्थरकी संधोंमें अधजले बीड़ोंके टुकड़े पड़े हैं और एक कोनेपर जली हुई दियासलाईकी कुछ तीलियाँ। जहाँपर पानी या चाय गिर जानेसे पत्थर कुछ नम है वहाँपर पैरोंके काले-काले निशान हैं और कुछ जमघट हलके-सूखे तिनकोंका, या गूदड़के काले रेशोंका, जो सामनेकी फ़ैक्टरीके कामदार अपने साथ-साथ ले आते हैं। वह अभी-अभी मशीन साफ़ करके आया है, झुके रहनेके कारण उसकी गरदन और कमर चटख रही हैं; और उँगलियाँ जिनके नाखूनोंमें मशीनका मैल सुरमे-की तरह भर गया है, थकावटसे चूर हैं।

उसने अपनी उँगलियोंको चटकाया और गरदनको ऊपर करके बैठ गया। तभी तीन पुतले, काले धब्बोंदार नीली पैण्ट और खाकी कमीज़ पहने भीतर घुसे। उनके चेहरोंपर भी काले रंगका 'स्प्रे' था। वे युवक थे। वह बैठा सोच रहा था कि स्वयं उसके घुसनेसे इस चायघरकी उदासीमें कोई अन्तर नहीं आया और इन तीनोंका आगमन भी उदासीके पंजेको ढीला न कर सका।

उसने आवाज़ दी, "एक प्याली चाय!"

और थोड़ी देर बाद वह लेडी-वेटर एक पुराने कपमें चाय लेकर आती दिखाई पड़ी। वह हमेशा कुछ महीन-महीन मुसकराती हुई आती है। वह ऐसा सभीके साथ करती है, जो भी चाय माँगता है या ठेकेकी कौड़ियाँ, वह इसी चालसे और ऐसे ही मुसकराते हुए आती है। वह युवती है; उसका लिबास बताता है कि वह पंजाबिन है, और उसके नाक-नक़्शा चाल और बातचीतका अन्दाज़ इसकी पुष्टि करते हैं। उसकी चालमें [illegible]-भरे पंजाबके समतल मैदानोंका सीधापन और बेफ़िक्री है। पंजाबकी आज़ाद और अल्हड़ हवाओंकी प्रतिच्छाया वह मुसकराहट है जो उसके होंठोंके कोनोंमें घुट-घुटकर सिसकती रहती है। उसकी मुसकराहटमें [illegible] है और उसकी आँखें कुछ ऐसी उदासीन और धुँधली हैं कि मालूम

होगा, जो दुनियाके मन और भी भटक कर देगा। और इन्हीं मानोंके
कर जब वह एक आयोजनमय समाजके उस नगरमें पहुँचा था जो उनके
रकी कितनी तारीफ हुई थी। उसका कविताओंने ऐसा बाद का
। और जब सारा कार्यक्रम समाप्त हुआ तब सबने समन
ने दो सारे आप खड़े गये थे और क्षण-भर बाद ही वह आटोग्राफ
सामने थी।
"मेरा सौभाग्य है कि आज आपके दर्शन हो गये," राजकी
कहा था।
"धन्यवाद, पर यह क्या ?" उसने आटोग्राफ बुककी ओर इशार
कहा था।
आपके हाथके दो शब्द !" राजकोरने कहा था, और उसके चेहरे-
कताके चिह्न उभर आये थे, जिनमें गाम्भीर्य था। वह देवता
नारीके साथ भावुकतामें लिपटा गाम्भीर्य ! वह सामने खड़ी
नारीकी महानता हिमालय बनकर फैल गयी हो। और तब
की भाँति वह पवित्र लिख दी थी : जिन्दगी प्यारके लिए है !
न करके तभी कई धातुके टुकड़े एक साथ गिरकर झनझना
-बेटरके हाथसे रेजगारी छूट गयी थी और वह झुककर उन्हें
ल कर रही थी।
खा—प्याला सामने था, आधी चाय बाक़ी थी, पर ठण्डी
उसने सोचा—ठण्डी हो गयी तो क्या ! चाय तो इसलिए
हारे कुछ वक़्त चैनसे काट लिया जाय ! वह कोई पेट भरने-
ही। लोगोंको चाय पीना भी न आया। प्याला सामने
सत्यनारायण स्वामीकी कथाके पंचामृतकी भाँति जल्दी-
साफ़ कर देते हैं।
ती है कि वह चाय पीनेका मतलब समझता है और पीना
र जिन्दगीके प्यालेको न तो वह ठीक तरहसे पकड़ —

पीता है, इसे देखता है और वह भी मुसकराते हुए चाय लाती है। वह उसे अच्छी लगती है। लेकिन शायद वह प्यार नहीं करता, और फिर उसका व्यवहार सभीके साथ ऐसा है। वह ऐसी कौन-सी बात है जो इसे मौन रखती है, जो इसको भावनाओंके पासंगमें बैठकर काँटेको बराबर रखती है ?

अनायास ही उसकी नजरें सामनेवाले बँगलेपर टिक गयीं और कुछ समाधान भी उसे उसकी रंगीन दीवारों, कटे हुए पौधों और एक-से लॉन-की शाहखर्च .खूबसूरतीसे मिल गया। उसे लगा कि उन निचुड़े हुए घरों, उन गन्दी नालियों, अन्धी गलियोंसे जान-पहचान रखनेवाले, अभावोंके मध्य पलनेवाले पुरजोंको प्यारका अधिकार नहीं।

"आपकी चाय ठण्डी हो गयी,"? लेडी-वेटरने उससे कहा।

"माफ कीजिएगा, मैं कुछ सोचने लगा था," कहकर उसने चाय का प्याला एक ही साँसमें खाली कर दिया और हाथोंको कसते हुए उठकर खड़ा हो गया।

"दो मिनिट और बैठिए, तबतक शायद कोई आ जाये," लेडी-वेटर-ने कुछ बड़े अपनेपनसे कहा। अन्तके शब्द उसे अच्छे न लगे पर वह बैठ गया।

तभी लेडी-वेटरने निकटता प्रदर्शित करते हुए पूछा, "कल आइएगा? वैसे है तो आपका आफ़।"

उसके मस्तिष्कमें एक अजीब-सी गुदगुदी समा गयी, जैसे बहुत कुछ सोच जानेपर भी कुछ न सोच पाया हो। पर उसे लगा कि यह कि उसको है, स्वयं उसने इसे पहचाननेमें भूल की। वह यह भी जानती कि किस दिन उसका आफ़ है। हर हफ्ते इसने उपस्थितिका ज्ञान रख है। क्योंकि वह रोज यहीं चाय पीता है, केवल वही दिन खाली जाता है जिस दिन उसका आफ़ होता है। उसे एक सहारा मिल गया। न जाने कबसे अचेत पड़ी भावनाएँ मचल उठीं। आँखोंमें कुछ नया रंग उभर

जाता, अपने भीतरके भावोंको छिपाते हुए वह बोला, "अगर कल न आ सकूँ !"

"शायद परसों मैं कुछ दिनोंके लिए चली जाऊँ,"—वह बोली।

"कहाँ ?" उसने बड़ी निकटतासे पूछा।

"राजकौरके पास," वह इतने अपनेपन और आसानीसे कह गयी जैसे वह उसके सारे सम्बन्धियोंसे परिचित हो, पर अपनी भूलको समझते ही वह बोली, "अरे, पर आप क्या जानें। मैं दिल्ली जाऊँगी !"

राजकौर और दिल्ली ! दिल्ली और राजकौर ! वह एकबारगी कुछ परेशान-सा हो गया। उसे कुछ-कुछ भला लगा पर धक्केके साथ। उसी रौमें वह पूछ बैठा, "कौन राजकौर ! क्या करती है ?"

"एक अस्पतालमें नर्स है, मेरे साथ ही दंगोंमें आयी थी।" वह बोली।

उसके हाथोंने जेबोंके अस्तरको भींच लिया। उसे लगा कि वह पत्रित शायद इसी राजकौरके पास हो। शायद न भी हो—नर्स राजकौर और वह कविप्रिया राजकौर ! उसे लगा कि अवश्य ही वह पत्रित उन सपनोंमें घुट-घुटकर लिखनेवालेको कोस रही होगी। उसके सामने धुंधलापन-सा छा गया। आँखें रेखाओंमें डूब गयीं और स्वयंको उसने अथाह कालिखमें डूबते पाया। वह कालिख जो रातमें और गहरी पड़ जाती है और दिनमें भी परछाईं बनकर प्रत्येकके साथ लगी रहती है। रातकी नीरवतामें हर दिलमें अतृप्त प्यारकी चीखें उठा करती हैं, तब उन दो-चार क्षणोंमें कोई किसीको प्यार कर लेता है और सुबह होते ही दुनिया अपनी पुरानी रफ्तारपर आ जाती है। उसने देखा—चायघरमें काफ़ी अँधेरा छा चुका था। बड़ी अलमस्तीसे उसने कहा, "ख़ैर छोड़िए भी उन्हें, मैं कल आऊँगा, आपकी बात कैसे टाल दूँ।"

"आप बात बड़े अन्दाजसे कहते हैं," कहते-कहते उसका कोमल हाथ उसके हाथके निकट आकर रुक गया। उसकी बलिष्ठ उँगलियोंने पास

उसने मुरझाये गुलदस्तेमें एक सूखा फूल तोड़कर उसकी ओर बढ़ा दिया। और उसे लगा कि चायघरकी उदासी कुछ-कुछ पिघल रही है, उसमें कुछ जीवन भर रहा है। तभी एक थका-मांदा कामगार भारी क़दमोंसे भीतर घुसा और लम्बी बेंचपर पैर फैलाकर बैठते हुए ऊँची आवाज़में भर्रा उठा, "एक प्याली, खूब गरम चाय!"

लेडी-वेटर प्याला लिये उसकी ओर महीन-महीन मुसकराते हुए जा रही थी। प्याला मेज़पर रखते हुए उसने उस नवागन्तुकसे कहा, "आप बहुत थके मालूम पड़ते हैं।"

वेटरके शब्द उसे चुभ गये। वह चौकोर मेज़पर बैठा तिलमिला-सा गया। वह उस नये आदमीसे क्या कह रही है? और उसकी वही पुरानी मुसकराहट, जो अभी-अभी उसकी अपनी बन चुकी थी.....उसने महसूस किया कि राजकौर और यह! एक नर्स, दूसरी लेडी-वेटर! वह अस्पतालमें, यह चायघरमें। सब कुछ कितना साफ़ और सादा है। पर अगर एक प्याला चायकी क़ीमतपर इतना शानदार धोखा खरीदा जा सकता है तो बुरा क्या है?

वह उठकर चला तो लेडी-वेटर उसे दरवाज़े तक छोड़ने आयी। उसके हाथमें वह सूखा फूल अब भी था, मुसकराहट भी वही थी.....पर कुछ ऐसा था जो नहीं था। वह तेज़ीसे सड़कपर पहुँचा। एक बार मुड़कर चायघरकी ओर देखा........

वह टीन-पड़ा छोटा-सा चायघर फिर उदास हो गया था।

■

सीखचे

जिन्दगीके दूसरे पहरमे यदि सूरज न चमका तो दोपहरी कैसी ? बादल आते है, फट जाते है, परन्तु ये भूरे धुंधले बादल तो उसे हटते नजर ही नही आते। अगर उनका अपना दूसरा सूरज हो तो कैसा रहे ?

इस मुहल्लेमें अधिकतर ऐसे लोग रहते है, जो दिन-भर दुकानोंका काम-काज देखते है, दिनमे एक बार खाना खाकर फिर चले जाते है तो रातको लौटते है। यही छोटे पेशेवर लोग हैं—लोहेवाले, बढई, पीतलके बरतन जोडनेवाले आदि। ऊँचे और मध्यमवर्ग तथा अछूतोकी न्यारी बस्तीके बीचका यह मुहल्ला एक कड़ी है, यद्यपि अछूतोसे कुछ दूर-सा।

इसी मुहल्लेमे उसका मकान है और वह टूटे सीखचोसे गलीकी ओर देख रही है। मंगरू लोहारका लडका चमन सामने खडा है; पूरा आदमी है, बदन और आयु दोनोंसे। बाप तो लोहे और आगका खेल खेलते-खेलते जलकर काला पड़ गया है, पर इसके बदनपर चिकनापन है और मांसमें चमक। रोज़ राजासाहबके बाग़में जाकर कसरत भी तो करता है। सुबह हाथमें कसरती जवानोंकी भांति पीतलकी बाल्टी और खास-तौरसे गरदन और सिरमें मिट्टी लपेटे जब आता है तो आंखोमें कितना शौर्य, चालमें कितनी मर्दानगी होती है—यह केवल उसीकी आँखें परख पाती है, क्योंकि वह अनायास ही उस

समय न जाने क्यों गलीके मोड़की ओर देखने लगती है।

वह नहीं चाहती कि उसकी नज़रोंको कोई और देख सके, यह
कि चमन भी। वह देखती ज़रूर है, पर उसमें कुछ ऐसा नहीं कि
कोई मतलब निकाले। वह स्वयं अपने दिलको यही समझाती है कि
देखना व्यर्थ है और उसका कोई विशेष प्रयोजन भी तो नहीं। परन्तु ऐ
क्यों होता है कि जब चमनके आनेका समय होता है तो उसके पैर अ
जानेमें आकर मोगरोंके पास रुक जाते हैं, नज़रें राहपर टिक जाती हैं।
हाँ, उसे चमनका बदन देखकर कुछ ईर्ष्या अवश्य होती है, उसके मतवाले
पनपर वह कुछ रीझती है, पर चमनकी इस बेफ़िक्र चालको वह गुण्डा-
चालका ही नाम देती है। यह क्यों? यह नहीं जानती, पर वह देखती है,
आदत-सी पड़ती जा रही है। वह इसे रोकना चाहती है, पर इसमें बुरा
क्या है? दुनियामें सब ही सबको देखते हैं, पर उसमें कुछ गहराई तो
नहीं। वह यूँ ही देख लेती है। यह कोई ऐसा विषय नहीं जिसपर बहुत
सोचा-विचारा जाये। अच्छे और बुरेका भेद किये बग़ैर भी तो बहुत-से
काम मनुष्य रोज़ ही किया करता है।

वह रोज़ काम करती है, सुबहसे शाम तक। यदि इस समय आकर
कुछ देर इस गलीकी चहल-पहल देख लेती है तो बुरा क्या है? और फिर
इसे बुरा बताया ही किसने? गलीमें एकाध खोमचेवाले चले जा रहे हैं,
टन्-टन् करते रिक्शेवाले भी भाग रहे हैं, और यह इक्का पुराना खच्चड़-
सा! लोहेकी पत्तियोंकी टेढ़ी-मेढ़ी छत, टूटे-फूटे पटरे और फटी-फटाई,
मैली-सी गद्दियाँ; मूसट बुड्ढा हाँकनेवाला, पर ये घोड़ा कितना अच्छा है,
नया-नया-सा सफ़ेद। क्या जोड़ा बैठाया है किसीने, बोरेमें मख़मलका
पैबन्द।

किसीके खाँसनेकी आवाज़ आयी।

उसकी आँखें सामने खड़े चमनपर टिक गयीं, वही खाँसा था। एक
क्षणको उसकी दृष्टि चमनसे मिली। आज उसकी आँखोंमें नया रंग उभर

रहा था, पिछले दिनोंकी धूर्तता और पाजीपन उनमें न था । वह मुसकरा भी रहा है""कुछ अपनापन है मुसकराहटमें, कुछ-कुछ जान-पहचानकी परछाईं भी । वह देखती रहे या नहीं ? उसने अपनी दृष्टि हटा ही ली । कुछ क्षणों बाद ही फिर उसने देखा । चमन अब भी ताक रहा था, लेकिन उसने नजर हटाते हुए न देखनेका उपक्रम किया ।

शाम होनेको थी, उसे भूख लग रही है, आज दिन-भर बिना खाये ही गया, क्योंकि 'वो' दूकान यूँ ही चले गये । उसका क्या कुसूर था, अगर अपनी वासकटकी जेबसे दस रुपयेका नोट गिरा आवें तो वह क्या करे, .खुद तो कमा नहीं सकती और उसके पास भी तो दस रुपये नहीं जो देकर उनका दिल भर दे। ग़लती अपनी, .गुस्सा घरवालोंपर । ज़रा-सी मिर्च ज्यादा हो गयी, चल दिये । ऐसेमें कोई बड़ा-बूढ़ा होता तो इन्साफ़की कहता । बस, ज़रा-सी बातपर बिगड़ जाते हैं । खाना पकानेमें देर हो जाये तो ज़मीन सिरपर, दूकानकी चाबी देना भूल जाओ तो वह झिड़कियाँ और फटकार कि तबीयत हरी हो जाये । इतना मिजाज भी किस कामका । घरपर चूनीकी दूकान और चार दाने दालके लिए, दो बूँद तेलके लिए पड़ोसका मुँह देखना पड़ता है ! उन्हें मालूम भी क्या, घर न खाया बाज़ारमें जेबर खा लिया, फिर फ़िक्र किसकी ? उसे तो रेगिस्तानी ऊँट समझ लिया है । क्या क़दर है उसकी घरमें ? वहीं न कि दीवारें सहमी-सी खड़ी रहती हैं, फटे-चिथड़े साथ पोंछे तारपर चमगादड़ोंकी भाँति लटके रहते हैं । सब सामान स्थिर रहकर उसके महान् किन्तु व्यर्थ सम्मानकी घोषणा मूक शब्दोंमें करता रहता है । बेचारा अलमारियों, घरके बरतनों और मसालोंकी दो-चार शीशियोंपर उसका पावनो अधिकार है—सोचकर ' वह वहीं सोच रही थी कि—

'आलू मसालेदार' की आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी, उस ध्यान आया कि सोचनेकी धुनमें पता नहीं वह कब देख रही है । चमनने आलूवालेको रोका, उसने आलू लिये और अक्लिताकी भाँति उँगली चाट-चाटकर खाने

गया। उसका दिल हुआ कि चार पैसेके आलू लेकर वह भी रे
गा लेगी, क्योंकि सबको सब उन्होंने फेंक दी है। पर वह घर
नहीं सकती, बाहरके दरवाजे तक जा नहीं सकती। अगर गयी त
की बूढ़ी माँ, जो हर समय बाहर चौतरेपर बैठी रहती है, र
उन्हें यह खबर दे देगी। वह इन अर्ध-सभ्य गलीके परिवारों
र्थक्रहर घरकी पुरानी परम्पराओंकी प्रतीक प्रतिमा हैं। गल
परिवारोंका काला इतिहास है, पर उसके घरकी बातें इन लोग
आदर्श हैं, और यही कारण है कि उसके घरका नाम भी है और
भी। मंगल लोहारकी बीबी एक बार भाग चुकी है, दीना स्वयं
अपने घर ले आया है। केवल इसका विवाह नन्दलाल बनियेने ब
सनातनी रिवाजोंसे हुआ है, जिसकी साक्षी अग्नि थी और मन्त्रोंके
बानेमें उसके जवान हौसलों, नयी उमगोंको कस दिया गया था।
जैसा भी था, उसका सब कुछ था।

यह प्रतिदिनका व्यवहार वह कैसे सहन करेगी, एक दिन ह
ध्यान न दिया जाय, लेकिन रोज ही तो यह छोटे-छोटे, पर ग
झगड़ोंकी समस्याएँ सामने अड़ी रहती है। दो-दो पैसेके लिए वह तर
है। सीखचेकी छड़ें उसके हाथमें थीं और मस्तिष्क कुछ पुरानी बा
हाथमें....

लगभग डेढ़ साल बीतता जा रहा है, पर वह जो कुछ चाहती
उसे न मिल सका। एक बार कितने प्रेममय और अधिकारपूर्ण शब्द
उसने कहा था कि एक छींटकी साड़ी उसके पास भी होती। दीना कल
घरकी धोबिन औरत अगर पहन सकती है तो वह क्यों नहीं? वह त
नन्दलाल महाजनकी पत्नी है, जिसकी दुकानमें सैकड़ोंका माल भरा पड़
है और रोजकी आमदनी भी दो-तीन रुपयेसे कम नहीं। माखनकी
बूढ़ी माँ अगर दो आने रोजके पान चबा सकती है तो क्या वह दो
पैसेके पान चबाकर अपने ओठोंको लाल नहीं रख सकती? उसका

चौड़ा माथा सूना है। बाल सँवारनेको सोनेकी कंघीको टूटे पूरे तीन महीने हो चुके। नाकमें लौंगके स्थानपर झाड़ूकी सींक है…पैरोंमें महावर लगानेके लिए गुलाबी रंग भी तो नहीं…और बाल! खैर वे तो बालों और धोतीमें छिप जाते हैं। पर यह सब भी वह किसके लिए करना चाहती है? उन्हें इन सब बातोंका शौक ही नहीं। अब भी कभी नहीं तो पिछली दो पत्नियोंकी मिसालें सामने रखने लगते हैं। अगर ऐसा ही था तो दूसरी आग लगाकर मर ही क्यों जाती। उफ, चाचाने क्या समझकर ब्याह दिया—बाह! बापू जिन्दा होते तो इस उबले पानीमें हाथ-पैर बाँधकर न डाल देते। इस पानीमें न तो तैरा ही जा सकता है और न डूबा ही जा सकता है। दिन-भर वह घरकी रखवालिनके रूपमें और उसके बाद सेंगड़ाती, दम तोड़ती वासनाकी पूर्तिके लिए।

रातको जब लौटते हैं तो कैसी बदबू मुँहसे आती है, अपनी तमाम पुरुषोचित शक्तियोंको उभारनेके लिए दारू भी तो पीने लगे हैं। बस एक आदत आ पड़ गयी है उन्होंकी खातिर जवान जिन्दगियोंसे खेल खेला गया है। यह जीवन बेकार है…यह जीना मरनेसे बदतर है, इन अभावों और वासनाओंके बोझसे यदि वह उठ जाये तो कैसा रहे, कितना अच्छा हो।

'दाता एक पैसा…बूढ़ी मोहताजको कोई एक पैसा'—एक जर्जर-बूढ़ी भिखारिनकी आवाज उसके कानोंसे टकरायी। स्थितिका ज्ञान होते ही उसके शरीरमें एकबारगी भीषण गर्मी-सी दौड़ गयी। रोंगटेकी जड़ें कठोर होती गयीं और उसका उद्भ्रान्त मन दबाव-दबोचकर पसीनेके रूपमें बाहर निकल पड़ा। एक गहरी साँस छोड़कर हाथ हिला दिया।

"ले बूढ़ी पैसा!" तभी सपनाने बूढ़ीसे कहा।

"भगवान् भला करे बेटा!" कहते हुए बूढ़ीने अपने काँपते हुए हाथ उसके सामने बढ़ा दिये।

में फँसी होनेके कारण छड़ें खड़खड़ा उठीं, एकदम जोरका शोर मच उठा। चमनकी आँखें सीखचेपर टिक गयीं और मुँहकी आभाके साथ-साथ होंठोंपर मुसकान नाच उठी। उसने सीखचोंके इस पार कुछ गहरी-सी चीज महसूस की, पर अनजान बनी खड़ी रही। हृदयकी सीमित स्थिर झील एकबारगी काँप गयी।

उसके शरीरमें नवीन स्फूर्ति आ रही थी और उसका ध्यान पारिवारिक बोझिल विचारोंसे उन्मुक्त हो, यौवनकी आशाओं और अरमानोंकी घाटियोंके चढ़ाव-उतारपर फिसलने लगा। अगर वह ऐसा करे''' इन लोहेकी छड़ोंको तोड़ सके'''अपनी साँसोंकी गति बदल सके'''अपने पिछले पदचिह्नोंको मिटाकर नये क़दम बढ़ाये'''अगर वह जीवनके लक्ष्य तक दूसरी पगडण्डीसे जाये, दुनियाकी गतिमें थोड़ी-सी देरके लिए गतिहीन होकर, कुछ क्षण थकके एक किनारे खड़े होकर नवीन दिशाकी ओर देखे। लेकिन दुनिया क्या कहेगी ? यही न कि वह भटक गयी'''वह दौड़में पीछे रह गयी, तभी उसका हृदय तिलमिला उठा, बेबसीकी साँस गरम वायु बनकर गलेमें अटककर रह गयी और पेटमें अंगार-से दहक उठे, आँखें नम होकर उबली-उबली-सी हो गयीं।

तभी उसके कानोंमें करुण रुदनका तीव्र स्वर टकराया, एक बार फिर उसने महसूस किया कि वह सीखचा पकड़े खड़ी है, सामने गली है और चमन खड़ा है। रोनेकी आवाज़ निरन्तर बढ़ती गयी और कई स्वर मिलकर उसे तीव्रता प्रदान करते गये। मकानोंसे और औरतें निकल-निकलकर उस ओर चल दीं। तभी एक स्त्रीने सूचना दी—"हीरालाल काका मर गये।"

"चलो करनी सुधर गयी'''अस्सी-पचासीकी उमर, ऊपरसे बोड़वा रोग," एकने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा।

"बेचारी बुढ़िया काकी तो अब उनकी बीमारीसे परेशान आ गयी थी'''बूढ़े हाड़'''कहाँतक सेवा करती।" दूसरीने बात और बढ़ाते हुए कहा।

उसके नेत्रोंके सामने हीरालालका चित्र उभर आया और पृष्ठ-भूमि रुदन उसके मनकी गहराइयोंमें समाता गया। एक चित्र उभरा— काकी सामनेवाले घरमें रहती थी। शादीके बाद ही हीरालाल काक उसे छोड़ दिया था। माखनकी माँ बताती थी कि इसी सामनेवा कोठरीमें काकाने काकीको चार-चार दिनों तक भूखा बन्द रखा, खूब पीटा चाँदीके सब जेवर ताड़ीमें गवाँ दिये। यौवनकी बहारें ग्रीष्मकी गु उमासें बनते देर न लगी और हीरालालका मांस कोढ़से गल-गलकर गिर लगा। काकीने सारी ज्यादतियाँ और पशु-समान व्यवहारोंको भुलाक सेवा की…और परेशान आ गयी…पर आज जब कि उसकी बूढ़ी पीठ भारी पत्थर लुढ़ककर गिर गया तो वह रो रही है…ये करुण आवा उसकी आत्माकी है! आज तो उसे सुखी होना चाहिए था…जीवनका वज़न हल्का हो गया है, बुढ़ापेकी परेशानियाँ छूट रही हैं…पर वह है कि रो रही है। उसे दुःख है, अथाह दुःख, पतिकी मृत्युका। उस पतिकी, जिसने दुलार और प्यारके स्थानपर दुत्कार और ठोकरसे काम लिया, जिसने मांसल शरीरकी गुदगुदीका जंगली पशुके समान उपभोग किया, जिसने केवल हड्डियोंको अपनी लौह भुजाओंमें कसकर तोड़ना-मरोड़ना जाना…जिसने बुढ़ापेमें भी चैन न लेने दिया। उसके लिए वह रो रही है…उस पतिके लिए संसारकी करुणा केन्द्रीभूत कर रही है, पतिके लिए, तो पतिमें ऐसी क्या विशेषता है? वह बूढ़ी काकी क्यों चीख-चीखकर गला फाड़े डाल रही है। क्योंकि उसका सुहाग लुट गया। वह कोरी सुहाग, जिसे उसने धो-धोकर मरहम-पट्टीसे सँजोया था। वह सुहाग, जो गल-गलकर टपक रहा था।

और जब लड़ाईसे खबर आयी थी कि मोहन गोली लगनेसे मर गया तो उसकी जवान पत्नीने पूरे तीन महीने मातम मनाया था। खाना-पीना छोड़ दिया था…रातों सिसकी, दिन-भर गंगा-जमुना बहायी…जब कि पतिकी आवश्यकता उसे कभी न पड़ी…पर वह रोयी, खूब धाड़-धाड़-

: रोयी""पूरा मातम मनाया। सिरका सिन्दूर, हाथोंकी चूड़ियाँ और
ोंके बिछुए, सब ही तो स्वयं छोड़ दिये थे। और तब उसके दिमागने
छ विचित्र-से प्रश्न किये—

उन सात फेरोंमें क्या विशेषता है? क्या शक्ति है? पण्डित लोग
न्त्र पढ़नेके बहाने कुछ जादू-टोना तो नहीं करते। यह लगाव कैसे हो
ाता है। इन चक्करोंमें क्या करामात है? बूढ़ी काकी क्यों रो रही है,
ोहनकी औरतने क्यों उसाँसें भरी थीं? सम्भवतः यह कोई ऐसा रहस्य
, जिसे स्त्री ऐसी दुःखद घटनाके बाद ही जान पाती है, क्योंकि इसमें
हराई तो अवश्य है। तभी तो बूढ़ी काकी उन समस्त ज्यादतियोंको
ुलाकर आज ही समझ पायी है। सोहनकी पत्नीने सब मुश्कोंको चखनेके
ाद भी इस स्वादके अभावमें गंगा-जमुना बहायी थी।

तो पतिमें ऐसी क्या विशेषता है? वह स्त्रीके लिए कैसा वरदान है?
इस गुत्थीको वह सुलझाना चाहती है। उसकी साँस तेज होती गयी,
आँखोंके सामने काले बादल छाते गये और उसका सूरज छिपता गया,
दिशाएँ लापता होती गयीं। कालिखने चीख-चीखकर कहा—'वह जैसा
भी है, तेरा सब-कुछ है""कुछ ही नहीं बहुत-कुछ है।' और डगमगाती
परम्पराओं, लड़खड़ाती मान्यताओं और काँपते विश्वासके भारी-भारी
पत्थर उसके रुई-से हलके हृदयपर गिर-गिरकर जमते गये।

वह इन पिछले कुछ क्षणोंको भुला देना चाहती है""यन्त्रकी भाँति
वह ठोक. पीछे सरकी। आँखें उठीं और मुरदा पुर्तगिन्सी चमनपर टिक
गयीं, परम उदासीका झोंका प्राणवायुके समान निकलकर हवामें मिल
गया। धीरे-धीरे उसने टीनकी खिड़कियोंको बन्द कर दिया, चटखनी चढ़ा
ही रही थी कि खटसे कोई वजनी चीज टीनसे टकराकर खड़खड़ाती
नीचे गिर पड़ी। उसने एक बार फिर दरवाजा खोला; देखा, चमन हाथमें
ईंटका टुकड़ा लिये उस ओर फेंकनेको ही था कि उसे देखकर ठिठक
गया। उसने जोरसे दरवाजे बन्द करके चटसे चटखनी चढ़ा दी। परन्त

आपसे आप मुड़ गयी और मुखपर कुछ सरल घृणाके चिह्न उभर गये।

'खट्'''खट्'''खट्''''' किसीने दरवाजा खटखटाया, वह कुछ सोच-कर चली ही गयी। देखा—रामू था, उसने खबर दी—'ननकू चाचाने कहा है कि आज रातको घर नहीं आयेंगे'''हमसे कहा था कि घरकी तरफ़ जाना तो कहते जाना।' इतना कहकर वह चल दिया, उसने जब प्रश्न किया, क्यों ? तो उत्तर लापता था।

उसके पैर आपसे आप जाकर सींखचोंके पास रुक गये, उन्हें खोला''' गलीमें इक्के थे, रिक्शे थे, खोमचेवाले भी थे, पर चमन'''चमन नहीं था। भावनाओंका उफान शक्ति क्षीण होनेके कारण सीमामें सिमटकर रह गया—पलकोंमें उमस-सी भर गयी, नजरें झुक गयीं। एक बार जोरसे उसने छड़ोंको दबोचा, वे कठोर थीं, उसे लगा मानो वे कह रहीं हों, 'पुरानी और जर्जर होते हुए भी तुमसे अधिक मजबूत हूँ !'''तुम''' तुम मुझे तोड़ोगी ?'

आँखोंमें उमस बढ़ती गयी, पेटमें गरम वायुके बवण्डर उठे और उसे एकबारगी झकझोर गये। उसने सींखचे बन्द कर दिये। सामने निर्जीव कपड़े उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे थे, निष्प्राण बरतन और मसालेकी शीशियाँ स्तब्ध उसे ताक रही थीं, मुँदी अलमारियाँ शब्दहीन खड़ी थीं, जिनपर उसका पूर्ण अधिकार था, पूरा आधिपत्य था'''पर''', उसकी नजरें झुकती गयीं और अधखुली नजरोंसे उसने देखा—कमरेकी कालिख बढ़ती जा रही थी, हवा बन्द हो रही थी, धुएँके भरे-भरे धुँधले बादल कमरेमें भरते जा रहे थे और कमरेकी दीवारें चारों ओरसे सीमा-को छोटा करती मानो खिसकती आ रही थीं, वे भारी-भारी चूने और ईंटकी दीवारें, उसके नन्हें रुई-से हल्के हृदयको दबोचकर जकड़ने लिए।

●

इनसान और हैवान

शामकी स्लेटपर कालिख पुत चुकी थी और एकआध तारे किसी नादान बच्चे-द्वारा लिखे गये खड़ियाके अक्षरोंकी भांति चमक रहे थे। ट्रैफिक पुलिसका कान्सटेबल कुछ अलसाया-सा खड़ा था, सर्दी बढ़ती जा रही थी और वह अपने ग्रेट-कोटके बटन बन्द करता जा रहा था। धीरे-धीरे पुलपर सन्नाटा छा गया, रातकी खामोशी सर्दीमें भीगकर और घनीभूत हो गयी। जमुनाका पुल! आने और जानेके लिए दो सड़कें, उनके और ऊपर बड़े-बड़े भीमकाय गर्डरों-पर सधी हुई रेलवे लाइन, नीचे उगी हुई आवारा जंगली घास और पैरकी ढलवा ढलान और उसके बाद जमुनाकी मैली कलईके बरतनकी तरह चमकती थोड़ी धार।

कान्सटेबलने अपनी आस्तीनोंको उँगलियों तक खींचते हुए दोनों ओर नजर डाली....कुछ दूर तक सड़क बत्तियाँ मोतीकी तरह चमक रही थीं, जिनके दोनों ओर कालिख थी, और जो आगे जाकर गिरके ढलानकी तरह गिरकर गहन अन्धकारमें डूब गयी थीं। उसने अपने हाथोंको मलकर दबाया, तभी उस भयानक नीरवताको अपनी घड़-घड़ाहट और चीत्कार करती सीटीसे चीरता हुआ एक दानव इंजिन तेजीसे गुजर गया। उसकी गूँजमें चनखुनिसकी-सी थी, और कांपते पुलकी धमनियाँ उसके जानेके बाद भी धड़कनोंसी

रही। एक सर्द हवाका भारी तीरकी तरह उसकी गरदनसे घुसकर टाँगोंकी ओर गया। उसने अपने कन्धे सिकोड़े और उठे हुए कालरको गरदन तक खींच लिया, पर उसकी निगाहोंमें जैसे वह खौफनाक भयानकता भर-सी गयी थी। उसकी नजरें पुलके विशालकाय गर्डरों-पर जम गयीं, हवा तेज होती जा रही थी और उसका मस्तिष्क उन भारी-भारी गर्डरोंके अनुमानित बोझ और विशालतामें पिसा जा रहा था""ऊपर असीम आकाशका विस्तार, रेलवे लाइन, उसके इर्द-गिर्द पड़े हुए पत्थर, कुहरेमें डूबी जमुनाकी अथाह धार""वह मौत-सा सन्नाटा और सर्द हवाका भयानक मनहूस शोर""प्रकृतिका मनहूस रूप और इनसानका इस्पाती स्वरूप, पर उसे लगा कि यह इनसानका बनाया ढाँचा हैवानकी तरह है जो उसे दबोचे डाल रहा है, वह इनमें पिस जायेगा। तभी एक गाड़ी ऊपरसे गुजरी, पुल काँपा और उसे लगा कि अभी जमुनाकी धारमें यह सब समाया जा रहा है, शायद पानीमें खड़ा खम्भा अब टूटना ही चाहता है, उसका छोटा-सा शरीर एक तिनकेकी भाँति न जाने कहाँ अदृश्य हो जायेगा। घबराहटसे वह थरथरा गया, तब तक गाड़ी पुल पार कर चुकी थी। कुछ सँभलते हुए उसने जेबसे दियासलाई और मुड़ी हुई सिगरेट निकाली। तेज हवासे लौको बचानेके लिए उसने अपने हाथोंको प्यालेकी तरह बनाकर सिगरेट सुलगायी, दियासलाईकी लौमें उसका मुख ऐसे चमक उठा जैसे भट्ठीसे निकला हुआ लोहा कुछ हवा लग चुकनेपर चमकता है, कुछ काला कुछ लाल-लाल।

एक-आध कश खींचनेपर उसकी साँसें कुछ ठीक हुईं, तभी एक आवारा कुत्ता उसके पाससे गुजरा, जो सर्दीमें अपनी पूँछको दोनों पिछली टाँगोंमें दबाये था। उसने अपने भारी बूटोंसे एक ठोकर उसके लगायी और वह कुत्ता बुरी तरह चीखता हुआ एक बच्चेकी तरह उसी अन्धकार-में खो गया। कान्सटेबलकी जानमें कुछ जान आयी""कुत्ता उसकी शक्तिवान् सत्ताका ऐलान करता हुआ जो गया था, उसे यह सब बहुत

भरा-सा लगा। तभी ट्रकके हॉर्नकी घिसटती-सी ध्वनि और फर्स्ट गेयरमें उठते गाड़ीके लोहेकी भारी-भरकम आवाज उसके कानोंमें पड़ी। उनके हाथ उठे और ट्रक पुलके भीतर घुरघुराती हुई घुस गयी। ट्रककी मुड़ती हुई रोशनीमें उसने देखा : झाड़ियोंके बीच रेतीली पगडण्डीपर कोई छाया धीरे-धीरे जमुनाकी धारकी ओर बढ़ती जा रही है। टार्चको अपने हाथमें लेकर वह फुर्तीसे उसके पीछे गया, उसके बूट रेतीली पगडण्डीपर सप-सपकी ध्वनिके साथ निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। नजदीक पहुँचकर उसने कड़ी आवाजमें कहा, "कौन है रुक जाओ।"

छाया बड़ी आसानीसे रुक गयी। टार्चकी रोशनीमें वह आदमीके रूपमें चमक उठी, जो अपनी पतलूनकी जेबमें हाथ डाले खड़ा था और गरदनको मफलरसे छिपाये था। कान्स्टेबलने और बढ़ते हुए कहा, "कौन हो तुम।"

"क्या अजीब-सा सवाल है, देख तो रहे हैं आप……" उस आदमीने लापरवाहीसे कहा। "लेकिन……" कान्सटेबल कहने जा ही रहा था कि बीचमें बात काटते हुए वह आदमी बोल पड़ा, "इस वक्त यहाँ किसलिए, यही न!" काटी हुई बात अपनी ओरसे पूरी करते हुए वह कहता गया, "आप इतमीनान रखिए, मैं आत्म-हत्याके इरादेसे यहाँ नहीं आया हूँ।"

"तब यहाँ……इस वक्त यहाँ आनेकी कोई वजह!" आवाजमें रोब लाते हुए कान्स्टेबलने पूछा।

"हूँ, आप यह जानना चाहते हैं, हर कामके पीछे वजह होनेकी कोई खास जरूरत नहीं!" वह बोला।

"आप बातें अजीब ढंगसे कर रहे हैं, मैं जानना चाहता……" कान्स-टेबल पूछता हुआ यह कह रहा था कि फिर बात काटते हुए वह बोल पड़ा, "आप यह जानना चाहते हैं कि मैं ठीक होश-ओ-हवासमें हूँ या नहीं, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बिलकुल ठीक और सही हालतमें हूँ, मैंने ऐसी कोई चीज इस्तेमाल नहीं की जो मुझे मेरे काबूके

बाहर कर दें।" वह बड़ी सरलता और साधारण तरीक़ेसे बोल रहा था।
कान्सटेबल एक बार निरुमिन्ना-सा गया, उस आदमीके चेहरेपर घबराहटका कोई चिह्न नहीं था। उसकी वरदीका कोई असर उस आदमीपर नहीं पड़ा था और उसकी मूँछें जो हमेशा बिच्छूके डंककी तरह उठी रहती हैं, उस साधारण मनुष्यमें कोई खौफ़ पैदा न कर सकीं, कान्सटेबल अपनेमें घुट-सा गया, अब उसके पास कोई सवाल नहीं था, पर उस आदमीको यूँ ही खिसियाकर छोड़ देना वह सहन न कर सका, गहुलियतसे उसने कहा, "तो आप घूमने आये हैं...तो फिर चलिए न वहीं पुलपर, मैं भी अकेला हूँ।"

वह आदमी कुछ कहने जा ही रहा था कि गुजरती गाड़ीके शोरमें उसका स्वर खो गया। वातावरण एक बार फिर भीषण कोलाहलके बाद भयानकताने भर गया। पानीमें दूर कहीं कगार टूटकर गिरा और झम्मकी गूँजती आवाज चारों तरफ़ समा गयी। दोनों आकर पुलपर खड़े हो गये। वह आदमी पत्थरके चबूतरेपर पैर सिकोड़कर बैठ गया और बोला, "सर्दी काफ़ी बढ़ गयी है।"

"शायद पानी भी बरसे।" स्याह पड़े आसमानको ताकते हुए कान्सटेबल बोला।

हवाकी गति और तीव्र हो गयी थी और जमुनाके ऊपर लटका हुआ कोहरा और गहरा पड़ गया था। पुलके सहारे गड़े तारके खम्भोंकी झनझनाहट बढ़ती जा रही थी, पर अब कान्सटेबलको कुछ सहारा मिल गया था, एक आदमी और उसके पास है जिसे वह अपना मान सकता है, इसीलिए उसने पूछा, "आप कहाँ रहते हैं।"

"यहाँसे लगभग तीन मील दूर।"—वह बोला और तभी पानीकी बौछार पुलके इस्पाती शरीरसे टकराकर बिखर गयी।

पुलके भीतर रोशनी चमक उठी। एक बस निरन्तर पास आती जा रही थी, जो शहरकी ओर जाना चाहती थी। उसने हाथ देकर उसे

रोता। बस रुक गयी और उसकी रोशनीमें गिरते पानीकी लम्बी बूँदें ऐसे चमक उठीं जैसे नोताकी बारहर पड़ी रेशमी मोतीकी डोरियाँ बिजलीकी रोशनीमें तिलमिलाती हैं। बसके भीतर रोशनी हो रही थी और भीतरसे मादक क्रीम और ऊनी कपड़ोंकी मिली हुई जवान-सी महक उस स्थानमें भर गयी। कान्सटेबलने ड्राइवरसे मालूम किया कि यह एक गर्ल्स कालिजकी बस है जो पिकनिकसे लौट रही है। भीतरसे तमाम कोमल स्वरोंकी ध्वनि आ रही थी। खिलखिलाहट, जैसे कच्चा काँच टूट रहा हो। बसकी बंधी सीमामें तमाम गोरे-गोरे चेहरे चमक रहे थे, लड़कियोंके रेशमी बाल, रंग-बिरंगे रिबन, प्लास्टिककी चूड़ियाँ, पर्स। सब-कुछ एक नया खुमार लेकर उस जगहमें भर गये। एक मुस्कुराहटके बाद बस स्टार्ट हो गयी और पेट्रोलकी गन्ध उस गरम भापदार महकमें मिलकर उस जगहमें समा गयी।

"क्या हाल है साहब?" कान्सटेबलने उससे पूछा।

"कुछ नहीं, पर कुछ समा बदल गया!" वह आदमी बोला।

"समा बदल गया, पर पहलेसे अधिक भयानक हो गया..." वह बोला।

"क्यों, ऐसी क्या बात है?"—उस आदमीने पूछा।

"औरतोंकी जात बड़ी बेवफा होती है, इससे डरना ही चाहिए।" कान्सटेबल बोला।

"शायद आपके हाथ जल चुके हैं।" धीरे-से हँसते हुए वह आदमी बोला।

"जी हाँ, मेरे हाथ ही जले समझिए, पर ये जमुनाके अँधेरे कगारे इसके गवाह हैं, वह मेरा दोस्त था, उसकी कहानी आपकी आँखें खोल देगी," कुछ रुककर कान्सटेबल कहता गया, "यह मेरी आँखों देखी बात है, मुझसे कुछ नहीं छिपा है....वह मेरा बड़ा अच्छा मित्र था, एक औरत उसे रोज यहाँ बुलाती थी, वे दोनों यहीं ढालपर अँधेरेमें देर तक

करते हुए बड़ी आसानी और बेपरवाहीसे कहा।

कान्सटेबल उसकी सादगी और निडरपनसे पस्त-सा हो गया। उसकी कही हुई बातें इतनी साफ़ और पूरी थी कि आगे और क्या कहा जाये। वह कसमसाकर रह गया। तभी एक विचार उसके दिमागमें आया, प्रतिभा और विचारका धनी, धनके समारमें हमेशा ही निर्धन रहता है। और आज उसके ग्रेटकोटकी जेबमें पड़ा पर्स भरा हुआ है। एकदम वह उस आदमीसे पूछ बैठा, "आप कैसे जायेंगे इस आँधी-पानीमें।"

"कैसे! अरे यूँही पैदल घूमते हुए।" वह आदमी ज़रा भारीपन-से बोला।

"लेकिन अगर आप बुरा न मानें तो आप रिक्शेसे चले जाइए पैसे मेरे पास हैं, आपकी दुआसे कभी कमी नहीं पड़ती।" इतना कहकर कान्सटेबल उसके चेहरेपर बड़े ग़ौरसे कुछ खोजने लगा। और हाथ डाल कर पर्स निकाला ही था कि आती हुई मोटरकी रोशनी बिलकुल पा
चमक उठी। उसने पर्स उसे देते हुए कहा, "आप एक अठन्नी इसमें-से ले
लीजिए।" और उसके हाथ रास्तेके नकेतके लिए उठ गये। लेकिन व
मोटर वहीं रुक गयी तो उसने पहचाना कि वह तो उसीको पिकअप या
उसे ले जानेवाला पुलिसवान था। फुर्तीसे पर्सको लेकर उसने अपनी जे
में डाला और उसपर चढ़ गया और बोला, "माफ़ करना मित्र, फि
कभी यहीं मुलाक़ात हो सकेगी, पर आप रिक्शेसे चले जाइएगा।
मोटर स्टार्ट होते-होते उसने फिर कहा, "और मेरा नाम रामसिंह
फिर मिलेंगे।"

पुलिसवान स्टार्ट होकर पुलके भीतर उस पारवाले कान्सटेबुल लेनेके लिए घुम गया। वह आदमी अभी वहीं खड़ा था। मोटरकी पि
लाल रोशनीमें उसने देखा कि एक नोट पत्थरके कोनेमें चिपका फड़
रहा था। शायद पैसे निकालते समय उसके पर्ससे गिर गया हो
पर वह चीख़कर मोटरको रोक न पाया। उसने उसे उठाया,

और सँभालकर तह करके अपनी भीतरी जेबमें रख लिया। वह सोच रहा था कि यह नोट काफ़ी काम निकाल सकता है, पर यह नोट जो हर जगह घूमता है, कल शायद इस जेबसे तीसरी जेबमें चला जाय। लेकिन यह सब ठीक नहीं, पर वह चाय, दाढ़ी बढ़ी हुई है, कुछ ब्लेड, चीनी, मोटर तो चला गया""काफ़ी देरमें लौटेगा, कुछ पैसोंका जेबमें रहना जरूरी भी है, पालिशकी डिब्बी, काग़ज़, सर्दी तेज़ है, मोज़े होना जरूरी है, बिस्तर आज काफ़ी गरम होगा, भीतरी कमरेमें जो रखा है, शायद वह जूते बाहर ही छोड़ आया था, भीग गये होंगे। उसे जल्दी चलना चाहिए, घर दूर है। पर उसके पैर ठीकसे नहीं उठे। फिर वह नोट भीतरसे बोल ही पड़ा, यह तो उसका है, रामसिंहका, हाँ रामसिंहका, आदमी अच्छा है, बदन भी तगड़ा है, काफ़ी कमाता होगा, पर इससे उसे क्या, वह नोट उसका है, वह क्या सोचेगा? शायद यह कागज़का टुकड़ा आदमीपर जमे हुए उसके विश्वासको तोड़ दे, मुम-किन है तो, पर कब तक वह यहाँ रुका रहे, मोटर वापस तो आयेगी, वरे चला भी जाये।

पर उसके पैर बीस क़दम बाद रुक गये। वापस आते पुलिसवानकी रोशनी नज़दीक चमक उठी। उसने नोट जेबसे निकालकर हाथमें ले लिया। पुलिसवान उसके पास अपने-आप रोक दिया गया और उसके कानोंमें आवाज़ पड़ी, "यही है बदमाश! पकड़ लो।"

एकदम वह भौचक्का-सा रह गया, तीन आदमियोंने मिलकर उसे वानके भीतर डाल दिया। दो क्षण बाद कुछ सँभलते हुए उसने रामसिंह कान्सटेबलकी ओर देखकर कहा, "आपका नोट यह मेरे पास है, मैं तो खुद देनेके लिए रुक गया था।"

सुलगती हुई आँखोंसे रामसिंहने उसे ताका और नोट फुर्तीसे छीन लिया और गरज उठा, "चुप रह बदमाश!" रामसिंहकी आँखोंमें कोई चीज़ धधक रही थी और चेहरेपर तमतमाहट थी, होंठ घृणा, तुच्छताके

निशानों और अपनी उच्चताके भावोंसे फड़क रहे थे। साँसोंके आने-जानेमें स्वर था। तभी शायद अपनी अधूरी बातको पूरा करते हुए, अगली सीटपर बैठे दीवानजी बोलने लगे, "वह वाक़या अँधेरी गलीके पास हुआ, उसका बचना मुश्किल है, चार घाव हैं, वार तो किसी समझदारने बड़े मौक़ेसे किया है और बड़े इतमीनानसे, जैसे मिट्टीका खिलौना तोड़ा हो।"

"सुनिए तो•••••" वह आदमी अपने मफ़लरको ढीला करते हुए बड़ी आजिज़ी और विनयके स्वरमें बोला, पर रामसिंहके एक थप्पड़ने उसे चुप कर दिया। अपने बूटकी ठोकरसे उस आदमीको एक कोनेकी ओर सरकाते हुए उसकी छाती फूल-सी गयी। और वह आदमी अपने मफ़लर-को हाथोंमें लपेटे, घुटने मोड़े हुए क़सा‌ईके बकरेकी भाँति बैठा था। रामसिंहने अपनी मूँछोंके डंक और तेज़ किये, पगड़ीको ठीक किया और घुटने-पर एक पैर रखकर हिलाने लगा, उसके भारी फ़ौजी जूते ज़ोरसे चर-मरा रहे थे, उसकी साँसोंमें जीतकी हुंकार थी। और आँखोंमें पाशविक चमक, जंगली सन्तोषकी आभा और हैवानियतकी आग एक साथ धधक रही थी और पुलिसवान छोटी-छोटी दूकानों और पतली सड़कोंमें गुज़रता, जहाँ इनसानका अस्तित्व है, निरन्तर अपनी राहपर बढ़ा जा रहा था।

•

...ायकी चोरी

जो आदमी यहाँपर रहते है, उन्हें ज़िन्दगी नशेकी तरह
है। उनकी ज़िन्दगियोमे है क्या, कौन-से धागे उन्हे
हुए है····कुछ नज़र नही आता। उनकी आमदनीका को
ज़रिया ऊपरी तौरसे दिखाई नहीं पड़ता! इन्हीमें ए
बिगडे हुए ज़मीदार मुंशी प्यारेलाल, जो ज़मीदारी खत्म हो
से पहले तक क़र्ज़ ले-लेकर मालगुज़ारी अदा करते र
क्योंकि काश्तकारोंसे जो कुछ थोड़ा-थोड़ा करके मिलता था,
वह रोज़मर्राके खर्चमे आ जाता था और जब फ़सलपर
मालगुज़ारी दाखिल करनेका वक़्त आता तो उनकी जेबें
खाली होतीं। जब ज़मीदारी उन्मूलन हुआ तो शायद गहरा
धक्का उन्हे ही लगा क्योंकि ज़मीदार पुकारे जाने और समझे
जानेकी हसरत ही उनके लिए सब कुछ थी। अब 'शमा'
की पहेलियाँ भरना ही उनका शुग़ल रह गया था, जिन्हें वे
कभी भरकर भेज न पाये। जब हल निकलता, तो वे अपने
...ाव मिलाकर अपनी बुद्धिको सराहते और क़िस्मतको
...ते, पर बड़ी शानसे बाहरवालोंके सामने कहते, "मश-
...का पैसा पैसा है, हरामके हीरे-जवाहरात धूल बराबर
...लिए न मेरा हल, एक भी ग़लती नहीं है; कोई नुक़्ता
...ही लगा सकता····ये सब तो सिर्फ़ शौक़के लिए भरता

दूसरे मकानमें एक मुनसरिम साहब रहते हैं जो कच्चे हाथसे रिश्वत लेनेके कारण अफ़सरोंकी मेहरबानीसे सिर्फ़ पेन्शन-याफ़्ता बना दिये गये हैं। हाकिमोंको उनके भारी परिवारकी ख़बर थी इसलिए उनपर रहम किया गया। इनकी बैठकमें चौबीसों घण्टे रमी या फ्लश जमा रहता है, बीड़ी-सिगरेटका धुआँ भरता रहता है, हुक़्क़ेपर चिलम चढ़ती रहती है और हुक़्क़ा घूम-घूमकर शौक़ीनोंकी बगलसे बगल घूमता रहता है। उनके बच्चे खेलनेवालोंके लिए पान, सिगरेट, दियासलाई आदिकी ज़रूरतें पूरी कर देनेके एवज़में इनामके तौरपर पैसे पाते रहते हैं, उनकी माँ भीतर आनेपर जेबें टटोल-टटोलकर हथियाती रहती हैं।

बगलवाले मकानमें एक पण्डितजी रहते हैं जो इस नये दौरमें लेखपाल हो गये हैं और अपनी नौकरीके मुस्तक़बिलके लिए ख़ून-पसीना एक करके दौरोंपर जाते रहते हैं, गर्मियोंमें सस्ते कफ़नकी तरह सोलिया लादकर, बरसातमें ख़ाकी निकर पहनकर, और जाड़ेमें खादीका कोट अटकाकर, जिसकी कोहनियोंके पुर्ज़े उड़ गये हैं और बटन बन्द न हो पानेसे जो पालकी तरह उनके जिस्मपर फड़फड़ाता रहता है। किसानोंके साथ बरते जानेवाले आमदनीके क़ानूनोंको फ़िलहाल ताक़में रखे हुए अपनी तनख़्वाहोंके इज़ाफ़ेके इन्तज़ारमें जी-तोड़ मेहनत कर रहे हैं।

बाक़ी एक घरमें डाक्टर साहब रहते हैं, जिन्होंने अपनी शान किसी देहातीकी आँखमें पीली दवाकी जगह टिंचर डालकर, एकदम जमा दी है और जिनका अब यह दावा है कि शहर-भरमें डाक्टरी सर्टिफ़िकेटोंकी जितनी आमदनी उनकी है, उतनी अच्छे अच्छे डाक्टरकी नहीं है। किसी दफ़्तरका अफ़सर उनके सर्टिफ़िकेटको रद्द नहीं कर सकता। वे 'पोस्टडेट' करके देते हैं। इसीलिए फ़ौजदारीके मुक़दमेके मुलज़िम या उनके रिश्तेदार उनके पास कभी-कभी आते हैं। इन्हींके सामनेवाले कमरेमें एक चिर विद्यार्थी रहते हैं, जो हर साल किसी-न-किसी परीक्षामें बैठते हैं... विषय बदल-बदलकर, इम्तहानमें बैठनेसे पहलेकी उनकी

लिये।" मुनसरिम साहब बोल पड़े।

"क्या बच्चोंकी-सी बात करते हैं आप, रुपया ही लेना था तो जेबमें बचे रह जाते? जब आपको नहीं मालूम तो फिर दूसरेकी ही मानिए''' *और फिर मेरी नज़रके सामने सारा वाक़या हुआ, यही कुल पचास-साठ* क़दमकी दूरी रही होगी। वह भट्टेके बीचमें था और मैं धर्मशालाके पास। एकदम सुनसान था चारों तरफ़'' बस एकदम चीख सुनाई पड़ी, मैं तो फ़ौरन समझ गया कि कोई वारदात हो गयी'''अरे हज़ारों मामले मेरी नज़रसे गुज़र चुके हैं। एक बार नगलामें'''"—मुंशी प्यारेलाल दूसरी किसी घटनासे तार जोड़ने जा ही रहे थे कि चिर-विद्यार्थी बोल पड़े, "लेकिन मुंशीजी आप तो कल दोपहर तक यहीं थे, गाड़ीसे कैसे लौटे?"

"वो, मैं मोटरसे'''नहीं, वहाँ मैं इक्केसे गया था, कोसमाके चौधरी- का एक काम था, वह ही इक्का जुतवाकर लाये थे। वह तो रात रुकने- को कह रहे थे लेकिन मैंने कहा कि उमूलन रातको कहीं रुकता नहीं'''।"

चिर-विद्यार्थी व्यंग्यसे हँस पड़े तो मुंशी प्यारेलाल पूरी आँखोंसे देखते हुए यह समझनेका प्रयास कर रहे थे कि लोग उनकी बातपर विश्वास कर रहे हैं या नहीं। फिर बोले, "जब चीख सुनाई पड़ी तो मैं तेज़ीसे उधर चला, पर बीचमें गड्ढा था, सो अँधेरेमें दिखाई नहीं पड़ा। पैरमें मोच आ गयी'''नहीं तो भला हत्यारे निकल पाते''''"कहते-कहते उन्होंने अपना दाहिना पैर लोगोंके सामने कर दिया कि मोच देख लो। पर अपनी नज़र पड़ी तो देखा, पैरपर सूजन नहीं थी, बोले, "वह तो रातमें ही मैंने नमकके पानीसे सेंक डाला, नहीं तो पैर ज़रूर सूज जाता!"

सुनकर सर्टिफ़िकेट डॉक्टर अपने ज्ञानके ग़रूरमें सिर हिलाकर और मुनसरिम साहब जैसे सन्देह-भरी नज़रोंसे ताकते रह गये, तो मुंशी प्यारे

"कब !" मुनसरिम साहबने पूछा।

"अरे यही सबेरे, वह तो इत्तफ़ाककी बात थी कि मैं मुख्तार साहबसे मिलने जा रहा था, बहुत दिनोंसे मुकदमेके कागजात उनके पास पड़े थे। रामनारायणके फाटक तक पहुँचा तो शोरगुल मचा हुआ था। उस वक़्त तो लड़ाई हो रही थी। मुखलाल लाखों गालियाँ दे रहा था अपनी बीवीको। भला बताइए, औरत जातसे इस तरह पेश आना चाहिए""और बस गालियोंके बाद उसने चैलेसे पीटना शुरू कर दिया, मैं हक्का-बक्का देखता रह गया। दर्शन ज़बरदस्ती किवाड़ खोलकर भीतर घुसा तो चार-छह चैले उसके भी पड़ गये। हम लोगोंने आवाज दी, सब कुछ किया, तब जैसे-तैसे सुक्खू बाहर आया। पर झटसे बरफ़की छेनी लेकर दौड़ा और औरतका सिर फोड़ डाला""उसपर तो जैसे खून सवार था। भई, तब हमसे नहीं रहा गया। सब खड़े-खड़े मुँह ताक रहे थे। मैं फिर हया-शर्म छोड़कर भीतर घुस गया। किसी तरह बसमें नहीं आता था""पर मेरी काठी"""—कहते हुए उन्होंने हसरतसे अपनी बाँहोंपर निगाह डाली और बोले, "फिर उसकी औरतको सीधे अस्पताल भिजवाया और सुक्खूको दर्शनके सिपुर्द करके लौटा।"

और जब कोई ऐसी घटना हो जाती जिसका वाक़ई उन्हें कोई पता पहलेसे न चलता, और वे अपना सम्बन्ध उससे शीघ्र ही न जोड़ पाते तो उन्हें ईमानदारीसे पछतावा होता। फ़ौरन निकल पड़ते और इधर-उधर बहशियोंकी तरह घूमकर जो कुछ पता चलता, मालूम कर लाते, बस तभी उनको सन्तोष होता। कोई बात यदि मुंशी प्यारेलालको पहले न मालूम हुई तो फिर उसका और भी अधिक प्रचार होता, क्योंकि वे तम्बाकूवालेकी दूकानसे लेकर कोयला-ठेकेदारके गोदाम तक और वकील साहबके नौकरोंसे लेकर मुक्को कपड़ेवालेकी दूकान तक, जो भी मिलता उससे चर्चा छेड़कर कुछ-न-कुछ जाननेकी कोशिश करते, और जिन

मालूम होता उसे अपनेमें जोड़कर सुनाते जाते और आगेकी बात मालू
करते जाते। यह क्रम तबतक चलता रहता जबतक यह बात बिलकु
उनकी अपनी न हो जाती और वे तबतक शान्त न बैठते जबतक उस
सहनायक बनकर उस बातको सुना न लेते।

एक रात ऐसा हुआ कि छप्परवाली बुढ़ीकी गाय चोरी चली गयी।
बुढ़ी तो सोती रही और कोई गाय खोलकर ले गया। मुंशी प्यारेलाल
बगलवाले चबूतरेपर चटाई बिछाये सो रहे थे। सुबह जब बुढ़ीने रोना-
पीटना शुरू किया तो लोग जमा हो गये। मुंशीजीकी तभी आंख
खुली। माजरा समझमें आते ही धोतीकी कांछ लगाते हुए छप्परमें जमा
लोगोंके बीच घुस गये, बुढ़ी रो रही थी और एक आदमी पूछ रहा था,
...ही बंधी थी....और तुम कहां सो रही थीं?"
मुंशीजी फौरन अपनी तरफ बात मोड़ते हुए बोले, "अरे अभी यहीं
...है, मैं खुद यहीं चबूतरेपर सो रहा था...." फिर बातको बे
...में घुमाते हुए बोले, "यह गाय जरूर रात दो बजेके करीब खो
....कुछ आहट उस वक्त हुई थी, मैं तो बड़ा चौकन्ना सोता हूं
...पर देखा, पर कुछ नजर नहीं आया। सोचा हवा होगी। उसके
...र बाद फिर खुरखुराहट सुनाई पड़ी....अब यह तो उस वक्त
...था कि कोई गइया खोले लिये जा रहा है पर लगा मुझे बिलकुल
...बैल गाय चल रहे हैं। यही ख्याल किया कि शायद अपने बाल-
...बैठक मचाये है, मच्छर परेशान कर रहे होंगे...."
...पुलिसमें खबर करो न, आज यह अजीब बात इस मलीब
...है...." बीचमें-से किसीने कहा।
...का नाम मुंशीजीने सुना तो थोड़ी आंखें मिचमिचायीं, जैसे
...ढंग सोच रहे हों, फिर भी अगुआ बननेके नाते बोले, "अरे
...टा-सा यह ध्यान भर आ जाता तो भला चोर निकले

पाती ! लेकिन एक बात यह और है कि चोर गइयाको उधर मैदानके रास्ते ले गये हैं, इधरसे जाते तो···मैं तो जाग ही रहा था···लेकिन ···"

"थानेमें रपट करो !" मुनसरिम साहब बोले और सबने हाँमें हाँ मिलायी।

पुलिसका एक आदमी तहकीकात और मौका मुआइनाके लिए आया तो मुंशीजीको बयानके लिए पुकारा गया। मुंशी प्यारेलाल निकल तो आये पर उनका चेहरा फक था, लगता था जैसे बड़ा जब्र करके बाहर आये हैं। जब थानेदारने उनसे पूछा कि आपको जो कुछ गायकी चोरीके मामलेमें मालूम है वह सब बता जाइए, तो मुंशी प्यारेलालका बदन काँपने लगा और आँखें फैल गयीं। उन्होंने जैसे असह्य पीड़ा झेलते हुए अपने चारों ओर खड़े लोगोंको देखा था और एक क्षणके लिए खामोश हो गये थे। जब थानेदारने दोबारा पूछा तो उनका बयान कुछ इस तरह था :

"मैं तो हुजूर भीतर मकानमें सो रहा था। दरअसल बात यह हुई कि सुबहके लगभग एक बड़ा डरावना सपना देखा, पर सुनसान था, सो तड़के ही चटाई लेकर यहाँ लुढ़क गया। घरमें बड़ा डर लगता था···जब सबेरे आँख खुली तो जो सब लोग बात कर रहे थे वही मैंने भी दोहरा दी थी···" मुंशीजी कहते जा रहे थे और उनकी गरदन नीचे झुक गयी थी नहीं थी और जमीनमें एकदम नजर गड़ाये बड़ी मुश्किलसे उन्होंने कहा था, "हुजूर मैंने और कुछ नहीं देखा।"

थानेदारने किसी दूसरेसे पूछताछ शुरू की तो मुंशीजी धीरेसे सबकी आँखोंसे ओझल अपना ओसारा पार करते हुए घरमें जा घुसे और फिर शाम तक नहीं दिखाई पड़े।

वहाँ मुंशीजन शाम होते दिखाई पड़े तो उनके चेहरेपर एक अजीब किस्मकी परछाईं थी, जैसे गुरु अकेले हार गये हों···वे उस समय

एक ऐसा आदमी खोज रहे थे, जो उन्हें धिक्कारने न देते और वे दिलका सारा गुबार उसके सामने निकाल दें…कोई ऐसा मिले जो सिर्फ आज उनकी बातपर यकीन कर सके। पर जब गलीसे डॉक्टर साहब गुजरे तो उन्होंने चलते-चलते कहा, "मुंशीजी, कमसे कम ऐसा तो आपको नहीं करना चाहिए था।"

मुंशीजीने सुना और अपने घरमें घुस गये थे। अकेले बैठे रहे, तो न जाने क्या-क्या सोचते रहे। तभी बगलवाले मकानसे मुनसरिम साहबकी कड़कड़ाती हुई आवाज उनके कानोंमें पड़ी थी…"नहीं है दूध तो भूखे मरने दो सालोंको…मेरे पास गाई नहीं है…कोई उधार देनेको राजी हो तो दूसरी जगहसे बाँध लो दूध…पैसे तभी मिलेंगे जब पेन्शन आयेगी…" और उनके घरमें कुहराम मचा हुआ था। दुधमुँहे बच्चे पतली आवाजमें रो रहे थे और चारों तरफ़ सन्नाटा था…

सुबह मुंशीजी मुँह-अँधेरे निकल पड़े थे, और चार-पाँच रोज़ घर नज़र नहीं आये। एक रोज़ नजदीकके गाँवसे कोई आया था तो प चला कि मुंशीजी बगलामें किसी अहीरके यहाँ फ़ौजदारी करने गये थे उनकी जमींदारीके पाँच-सात किसान भी उनके साथ थे, लाठ चल गयी थी…सुना था कि अपनी चोरीकी गायका सुराग लगाकर वहाँ पहुँचे थे, कैसे पहुँचे…यह कोई नहीं जानता पर गाय उन्होंने ले ली थी…

और दूसरे दिन सुबह मुंशी प्यारेलालके साथ तीन आदमी और चले आ रहे थे और पीछे-पीछे गरदन झुकाये, पूँछ हिलाती बुढ़ियाकी गाय चली आ रही थी, जिसकी रस्सी उनके हाथोंमें थी।

गलीमें घुसते ही उन्होंने चारों तरफ़ निहारा…सभी लोग मुंशीजी और गायको देखकर जमा हो गये थे। बूढ़ी अपनी गइयाकी गरदन और पर हाथ फेर रही थी, और मुंशी प्यारेलाल लोगोंकी आँखोंमें विश्वास जते हुए बयान कर रहे थे :

"पुलिस भला क्या कर सकती थी ? मैं तो पहले ही जानता था,

जो काम करना हो, अपने बूतेपर उठाना चाहिए''''अरे साहब, क्या गाँव
था ! हरैतोंका''''यूनियनोंका'''' राक्षस-जैसे आदमी है वहाँके, पर गुगा
तो लगता ही है''''जैसे-तैसे पहुँचा वहाँ, मेरे नजर पड़ ही गयी और
फिर बस''''लाठियाँ निकल आयीं''''"

—कहते-कहते उन्होंने अपनी बाँह खोल दी थी जो आज सचमुच
लाठियोंकी मारसे सूजी हुई थी ।

•

तक पहनकर छोड़ा था और जिसकी आस्तीनोंमें कोहनियोंकी जगह छे
अनुसार छोटे-बड़े थ्योंदे लगे थे। एक मरतबा उलटवानेके कारण ऊप
वाली जेब बायींसे दाहिनी ओर आ गयी थी, जिसमें फ़ाउण्टेनपेन-नुमा मो
पेन्सिल हर वक़्त लगी रहती और एक छोटी-सी निहायत गन्दी गा
डायरी पड़ी रहती थी।

आज उनके लिए एक काम मुख्य था—सफ़ाई। क्योंकि वे ज
क़ायदा-पसन्द आदमी हैं और उनकी हफ़्तेवार सफ़ाई उसी क़ायदा-पसन्द
की योजनाका एक अंग है। सफ़ाई तीन चीज़ोंकी होनी थी—जूते,
और सायकिल!

अभी एक जूता साफ़ हो पाया था कि बाहरसे आवाज़ आयी। छो
लड़कीने आकर ख़बर दी कि दफ़्तरका चपरासी आया है। उनको भौं
थोड़ा-सा बल पड़ा। बाहर पहुँचे तो चपरासीने कहा, "आपको साह
अभी बुलाया है।"

"मैं नहीं आ सकता इस वक़्त," बाबू राधेलालने पता नहीं
अपनी आदतके ख़िलाफ़ एकदम बिगड़कर कहा।

"तो यही कह दूँ?" चपरासीने जैसे उनकी हैसियत और उ
बातका वज़न तौलते हुए व्यंग्य किया।

राधेलाल थोड़ा-सा सकपकाये और अपनी आदतके मुताबिक़
गिड़गिड़ाकर उन्होंने ज़रा सोचनेकी कोशिश की, चपरासीकी तरफ़
और आख़िरकार बोले, "तुम साहबको जानते होते हो, अब सोच
ज़रा"""एक तो दिन मिलता है, उसमें भी यह सिटपिट न हो
धुला-धाड़ न "अच्छा देखो तुम ज़रा-सा कह आओ" "यह देखा कि
पर नहीं मिले, वह आता है।"

चपरासी एक क्षण ख़ामोश रहा तो बाबू राधेलाल साहब पर
नाहक़ इतना बिगड़ पड़े। भला इसका कौन-सा क़ुसूर था? यह तो
बेचारा हुक्मका ताबेदार है, साहबने कहा बुला लाओ, यह चला

बिगड़ी बात और भी सँभालनेकी ग़रज़से बोले, "तुम बस इतना कह देना नहीं तो तुम भी दिन-भर दफ़्तरमें अटके रह जाओगे।"

"हमारे लिए कोई फ़रक़ नहीं पड़ता····पर साहबको इत्तला कर दूँगा कि बाबूजी नहीं मिले, घरमें ख़बर कर दी है।"

"बस-बस ! सब सँभल जायेगा इत्ती बातसे····" और यह कहते-कहते वे चपरासीकी सायकिलका हैण्डिल पकड़े-पकड़े उसे सड़क तक छोड़ आये।

घरमें घुसते ही उन्होंने कोटकी ऊपरवाली दाहिनी जेबसे गान्धी डायरी निकाली और खोलकर देखा····शायद साहबने पहले ही हुक्म दिया हो और उनकी यादसे उतर गया हो····रविवार छह तारीखवाला पन्ना खोला, उसपर कार्यक्रम नोट था।

१. सफ़ाई करना है, २. मन्दिर जाना है, ३. राशन लाना है, ४. सम्भव हो तो शामको साहबके घर हो आना है। तिवारी कन्या पाठशालाके मैनेजर साहबसे मुलाक़ात कर आना है। ५. आज जल्दी सो जाना है।

उन्होंने जेबसे मोटी पेन्सिल निकालकर डायरीके उसी पन्नेपर नोट किया—'सुबह साहबसे मिलने गये।' और उसे उसी दाहिनी जेबमें रख दिया।

पत्नीने उन्हें इस तरह ख़यालमें डूबा और डायरीपर नोट करते देखा तो कुढ़के भुनभुनायी, "कुसमाके ब्याहमें तुम्हारे सोचनेके लिए अलग कोठरीका इन्तज़ाम करा दूँगी। कौन आया था ?"

"चपरासी था, साहबने बुलाया है।" राधेलाल बोले।

"तो जाओ न। साहबकी गुलामीसे फ़ुरसत मिले तो घरको देखना। तुम्हें ख़ुद इसमें मज़ा आता है। जाके दफ़्तरमें बैठ गये, सब काम-धन्धे बरी···उन लाड़लेने इम्तहानका बहाना बना रखा है····मेरी बलासे····लाओगे तो खाना पका दूँगी नहीं तो····"

"हमने तो चपरासीसे साफ कहला दिया कि नहीं आ सकता। कौन मुस्तकिल नौकरी है""छूटे छूट जाये""दूसरी देख लूँगा।" राधेलालने कहा और जैसे उन्हें सचमुच महसूस हुआ कि इस वक्त चपरासीसे साफ इनकार कर देना था, यह भी कोई बात हुई भला। आखिर कोई अपना घर कब देखे? एक तो दिन मिलता है, और दूसरा जूता साफ करने लगे।

सफ़ाईके बाद उन्हें पैरोंमें डालकर, कोट पतलून पहनते हुए पत्नीसे बोले, "ज़रा देख हो आऊँ। असल बात यह है कि साहबका मुझपर जितना इत्मीनान है उतना बड़े बाबूपर भी नहीं है। मेरे टाइपसे बहुत खुश हैं, कहते थे, इतने ज़िले घूम आया हूँ, पर तुम-जैसा होशियार टाइप बाबू नहीं मिला। बड़ा अपनापन मानते हैं""हमेशा घरके आदमीकी तरह तुम कहके बात करते हैं।

बहुत ऊँचा स्वाभिमान जैसे अन्धा होता है वैसे ही पतिकी प्रशंसामें किसी भी पत्नीका स्वाभिमान ऊँचा उठकर उसे एकदम अन्धा कर देता है और सब औरत नीचेसे नीचा काम कर सकती है""सब-कुछ स्वीकार कर लेती है। कुछ ऐसा ही इस वक़्त हुआ और राधेलाल सड़कपर सायकिल लाये, उसकी कीलपर एक पैर रखकर लँगड़ी मुरग़ीकी तरह दस-बारह कदम फुदके और चढ़कर दफ़्तरकी तरफ चले गये।

शामको वापस आये तो मुँह सूखा हुआ था, जिस चबूतरेका सहारा लेकर सायकिलसे उतरते थे, उसके ठीक कोनेपर गोबर रखा था सो पैर रखते-रखते बिदक गये और गिरती दीवारकी तरह मय सायकिलके सड़कपर पसरते-पसरते ज़रा-सा बच गये। पैजामेका मोहरा क्लिपसे बन्द था इसलिए और भी बचत हो गयी। सायकिल भीतर रखी ही थी कि देखा लाला रामभरोसे बैठकमें बैठे हैं।

लाला रामभरोसे अपनी परचूनीकी दूकान छोड़छाड़कर बाबू बननेकी नियतसे एक फ़ौजदारीके मुख्तार साहबके मुंशी थे। तहसीलके तख़्तों-

पर बस्ता रखकर बैठते थे। मुख्तार साहबके मुवक्किलोंका हिस
किताब और मिसलें वगैरह सब उन्हींके पास रहती थीं। वे दिल
गैर-सरकारी नौकरीको बेहतर समझते थे, पर सरकारी नौकरीक
बड़ाई इसलिए करते थे कि देखा-देखी उनको यह यक़ीन हो गया था कि
यहाँ शहरमें जिसे बुरा समझो उसे अच्छा कहो। सो घुसते ही लाल
बोले, "कहो राधे, इतवारको भी दफ़्तर गये थे! हमारा तो ख़याल है
कि सरकारी नौकरीमें हजार आराम हैं। इससे बढ़कर राजसी नौकरी
दूसरी नहीं। पर तुम तो जिस दफ़्तरमें पहुँचे, मानो सब कारबार तुम्हारे
ही ऊपर आ गया....काहेको जान दिये डाल रहे हो....किते दिनको
जगह मिली है?"

"दद्दा, अगले हफ़्ते तक एवज़ी हैं। स्टेनो बाबू अगले शुक्करको आ
जायेंगे, बस फिर तो कहीं और काम ढूँढना है...." बाबू राधेलालने
जवाब दिया।

"तब काहेको चिपटे हो बुरी तरह, कौन तुम्हारी मुस्तक़िली हो
रही है जो दिन-रात लगे हो....अरे अपने काममें काम। छुट्टीके दिन
छुट्टी, कामके दिन काम।"

"दफ़्तर ये भी बढ़िया है दद्दा, वो तो आज साहबका प्राइवेट काम
था थोड़ा-सा, नहीं तो बड़े आरामका दफ़्तर है।"

"अरे तुम तो हमेशा ऐसे ही कहते हो....आज तक कमसे कम बीस
जगह रह आये, किसी दफ़्तरकी बुराई नहीं सुनी हमने तुम्हारे मुँहसे....।"

और सचमुच बात ऐसी ही थी। बाबू राधेलाल क्लर्क, टाइप बाबू,
लायब्रेरियन और न जाने क्या-क्या थे, यानी क़स्बेका कोई महकमा ऐसा
न था जिसमें उन्होंने कुछ दिन न गुज़ारे हों। चुंगीसे लेकर जजी-कलक्टरी
तक गये थे और स्वामीजीके भण्डारेके हिसाब-किताब रखनेसे लेकर
शहरके पुस्तकालयके लायब्रेरियन तक रह चुके थे। सरकारी-ग़ैरसरकारी,
सभी महकमोंके लिए राधेलाल स्टैण्डिंग कार्यकर्ता थे। जब जिस महकमे-

की उनकी जरूरत पड़ती बुलवा लेता, खाली होते तो चले जाते, नहीं
तो इन्तज़ाम करा देते। पहुँच भी उनकी इतनी थी कि नौकरी चाहनेवाले
ताजे नौजवानोंके सामने उन्हें ही लिया जाता, और बात भी ठीक थी
क्योंकि किसी दफ़्तरमें लीववैकेन्सी हुई तो नया आदमी रखकर को
क्या करे और फिर बाबू राधेलालको इक्कोस बरसकी साख थी।

शहर-भरके ऐसे ठिकाने, जहाँ-जहाँ नौकरी मिल सकती थी, सबक
ख़बरें उनके पास रहती थीं कि कौनसे बाबू कब और कितने दिनक
छुट्टीपर जा रहे हैं, कौन छुट्टी बढ़ायेगा या उनके आनेपर फिर को
जा रहा है।

कोई नयी जगह होती तो वे अपनेको उसके काबिल न पाते क्योंि
उसमें गुरूमें सर्टिफ़िकेट वगैरह दिखाना पड़ता, डॉक्टरी जरूरी होती औ
उनके मुताबिक लाखों झंझट होते जो उनके बसके नहीं। इसलिए ह
दफ़्तरको वे प्यारे थे और उन्हें हर दफ़्तर प्यारा था। किसी महकमेक
बुराई आज तक उनके मुँहसे नहीं सुनाई पड़ी, पता नहीं किस महकमेक
उन्हें ज़रूरत पड़ जाये। कोई हफ़्ते-भरकी छुट्टी जाये तो और चार महीने
की जाये तो—बाबू राधेलाल यकसाँ जोश-खरोशसे नौकरीको सिर आ
लेते थे।

कोई चपरासी नाराज़ हो जाये तो रातको नींद हराम हो जा
थी, कोई साथवाला ज़ोरसे बात कह दे तो दिल बैठने लगता था। ग
बहुत धीमे बोलते थे, कायदा-पसन्द और सलीकेमन्द आदमी थे औ
अपनेको नौकरीपेशा कहनेमें गर्वका अनुभव करते थे। कोई पूछे कि कहि
क्या काम करते हैं तो बजाय यह कहनेके कि जजीमें नक़लनवीस है
तहसीलमें पंचायत क्लर्क है, वे बड़े विनयसे कहते—"जी, नौकरीपे
आदमी हूँ।" और उन दिनों जिस दफ़्तरमें काम करते होते उस
आराम, वहाँके बाबू लोग और अफ़सर और जनताके जीवनमें उस महक
की अहमियतपर पूरी ईमानदारीसे एक बड़ा बयान दे डालते। उन

इसी आदतके कारण लोग उन्हें एक व्यर्थ सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे, न अच्छा कहते थे न बुरा।

लाला रामभरोसेने दफ्तरकी बात छेड़ दी तो फ़ौरन यह भी खयाल आया कि अभी बाबू राधेलाल अपने दफ़्तरके अनुभवोंका पचड़ा ले बैठेंगे, उन्होंने फ़ौरन बातका रुख पलटते हुए कहा, "भाई मैं इसीलिए आया था कि कल रातको नातीकी खुशीमें भोज है····बिरादरीमें बुलउआ है, तुम थोड़ा वक्त निकालो तो मेरी मुश्किल हल हो जाये।"

"हाँ पहला नाती है कि मज़ाक़ है, दिल खोलके भोज दो दद्दा। रही मेरी, सो जो काम सौंप दोगे अपनी कोशिश-भर ठीक ही कर दूँगा।" बाबू राधेलालने जवाब दिया।

"तुम कल चार बजे शामसे आ जाओ, बस।"

"बहुत ठीक। साहबसे कहके एक घण्टा पेस्तर आ जाऊँगा।"

राम-राम हुई और लाला रामभरोसे निश्चिन्त होकर उठ गये। राधेलालने बैठकके किवाड़े लगाये, जेबसे गान्धी डायरी निकाली और उसपर नोट किया—'कल शाम चार बजे दद्दाके घरपर भोजका इन्तज़ाम करने जाना है। एक घण्टा पेस्तर छुट्टीके लिए बड़े बाबूसे सुबह कहना है।'

गान्धी डायरी जेबमें डाली और भीतर पहुँचे तो पत्नीके कुछ कहनेसे पहले उन्होंने जेबसे दो कच्चे नीबू निकालकर घरौंचीपर रखते हुए कहा, "ये दफ़्तरकी बगियाके हैं, माली कहने लगा, बाबू इतना रस है इनमें अभी कि···पकनेपर तो मुसम्मीको मात करेंगे। वह तो चार-पाँच दे रहा था····हमने कहा, दो काफ़ी हैं।"

और वास्तविक बात यह थी कि चलते-चलते उन्होंने मालीकी नज़र बचाकर फुरतीसे दो ही तोड़ पाये थे, अगर आस्तीन काँटोंमें न फँस गयी होती तो शायद एक-दो और मार देते।

पत्नीको ज़रा टोक देखा तो दूसरी जेबसे रिबनकी गिर्रियाँ निकालीं

हुए बाले, "ये लो, तुम्हारा डोरा लपेटनेके काम आ जायेगी"

पत्नीने देखा तो 'हूँ' करती हुई बोली, "इनमें डोरा लपेटा जायेगा ! ये किस कामकी हैं'''कुसमा कबसे एक पेन्सिलके लिए कह रही है।"

"पेन्सिल रोज़-रोज़ थोड़े ही घरी रहती है, मिल जायेगी पेन्सिल भी। लानेको चाहे जो ले आऊँ, कोई चूँ नहीं करेगा; पर ऐसे अच्छा तो नहीं लगता। दफ़्तरकी रुसमा-भर चीज़ मेरे पाससे इधर-उधर नहीं होती। डाकख़ानेवाले अभीतक याद करते हैं, तेईस दिन उनके यहाँ नौकरी कर आया, एक पाईका फ़रक़ नहीं पड़ा'''सब अभीतक मानते हैं, पोस्टमास्टर साहब अभीतक याद करते हैं। अपना काम चौकस चाहिए। चौकसीके लिए अक़ल, आँख और वक़्तकी ज़रूरत है। आज चलते वक्त साहब कहने लगे'''तुम्हारा बड़ा सहारा है राधेलाल बाबू'''तुम्हारी हिम्मत थी कि इतना बड़ा काम निकल गया, इसीलिए तुम्हें तकलीफ़ दी। यह छोटी बात है भला ? जो काम हो, साहबसे हाथ पकड़के करा लूँ।"

इतना सुनकर पत्नी तृप्त थी। उसकी आँखोंमें पुरुषार्थी पतिके लिए प्रशंसा थी और राधेलाल निश्चिन्त हो गये थे।

दूसरे रोज़ गान्धी डायरीके मुताबिक बाबू राधेलाल चार बजेसे कुछ पहले ही पीछे कैरियरमें दफ़्तरकी दो पतली फ़ाइलें इस तरह डोरीसे बाँधे हुए पहुँच गये जैसे कोई ज़िन्दा मुरग़ा बाँधकर लाये हों कि कहीं पीछेसे उड़ न जाये। बात असलमें यह है कि वे सुरक्षाके भी बेहद कायल हैं, पीछे कैरियरपर कोई भी चीज़ ख़ूब अच्छी तरह कसकर बाँध लेनेके बाद वे निश्चिन्त हो जाते हैं कि अब गिरेगी नहीं। कैरियर टूटकर गिर जाये यह बात दूसरी है।

पहुँचते ही लाला रामभरोसेसे मिले तो पहले उन्होंने फ़ाइलें खोलकर उन्हें बक्समें रख आनेकी ताक़ीद की, कपड़ेमें लपेटकर कि कोई पुरज़ा इधरसे उधर न हो जाये। भोजकी तैयारी हो रही थी।

राधेलालको पूड़ियाँ निकलवानेका काम सौंपा गया। भट्टी

सुलग रही थी और कड़ाह चढ़ा था। हलवाई घीके इन्तजारमें बैठा
राधेलाल एक स्टूलपर जाके जम गये। घीके कनस्टर आये तो दे
ही राधेलालकी भौंहें सिकुड़ीं—घासलेट घी!

और उन्हें लगा कि कुछ अनर्थ हो रहा है। लाला रामभरोसे
क्रोध आया कि बिरादरीमें यह नया चलन कैसे चलेगा? आज तक भोज
असली घीके सिवाय किसी गरीब बिरादरीवालेने यह घासलेट घी नह
इस्तेमाल किया—यह तो बिरादरीका चलन है। लोग सालों पहलेसे घ
जोड़ते हैं, पर होता सब असली घीमें है। अगर कहीं पंगतमें पता
चला गया कि राधेलालने बैठाकर अपने सामने यह सब कुछ होने दिया
तो गाँवसे भी रिश्तेदारीके दस-बीस जने आयेंगे, तब कैसी थुक्का-फ़जीहत
होगी गाँवमें, और सब उन्हींपर आ जायेगा कि राधेलाल कैसे बैठे यह
सब करवाते रहे…

बात असलमें यह थी कि शहरके ये सारे ही महाजन परिवार गाँवसे
उखड़े हुए लोगोंके थे। कोई तीन पीढ़ीसे यहाँ था, कोई दो पुश्तसे और
कोई अभी-अभी आया था।…शहर आनेवाले घरानोंमें सबसे पहला घर
राधेलालके बाबाका था, जो लाला ही पुकारे जाते थे। इन लाला
रामभरोसेकी पिछड़ी पीढ़ी ही शहर आयी थी। राधेलाल और रामभरोसे-
में भीतर-ही-भीतर असली शहरी होनेकी थोड़ी-बहुत प्रतियोगिता भी
चलती रहती थी। वैसे सारे महाजन परिवारोंमें शहरी होनेकी होड़
लगी रहती, इसलिए ढोलक-मजीराके साथ-साथ उन्होंने दो घण्टेके लिए
टरीका लाउडस्पीकर भी लगवाया था…गाँवके संस्कारोंसे अभी बँधे,
हरी ज़िन्दगीकी होड़में ये सारे ही परिवार भीतरसे टूट चुके थे।
केन तीज-त्योहार, भोज-सराध और ग़मी-ख़ुशीके सारे आयोजन अभी
उसी गँवई दरिया-दिली, इफ़रात और खुले मनसे होते थे। शहरी
…ी और काइयाँपन धीरे-धीरे घर कर रहा था पर बिरादरीके मामलेमें
वही गँवई ठाठ ज़रूरी समझा जाता, नाक ऊँची रखी जाती।

बाबू राधेलालने लाला रामभरोसेको बुलाकर पूड़ियोंपर बैठनेसे इनकार कर दिया। लाला रामभरोसेने बहुत समझाया, "अब गाँवकी बात और मरजाद जाने दो राधे''''हर घर दूसरे घरके काम-काजमें सिरधासे घी-अन्न पुजाता था, तो चल जाता था। अब यहाँ किसने मेरे घरके लिए सिर रोपा है, सब तो अकेले जोड़ा-बटोरा है।"

पर राधेलालकी समझमें न आया, बोले, "तो किसी औरको बैठा दो पूड़ियोंपर''''मैं जिवनिका काम कर दूँगा''''रही कहनेकी बात, सो मेरे मुँहसे किसी बिरादरीवालेके सामने ये बात नहीं पहुँचेगी कि भोज पासलेटमें हुआ है, बस।"

बातमें अड़ंगा पड़ जानेके कारण लाला रामभरोसेने मुख्तार साहबके मेहनतानेवाले जमा हिसाबसे रुपये निकाले और फ़ौरन देशी घी दूकानसे मँगाया गया और भोज हुआ। भोज तो हुआ, पर बाबू राधेलालके मनमें चोर घुस गया कि लाला बुरा मान गये हैं और किसी आड़े वक़्त इज्जत उतारनेसे बाज न आयेंगे। पर जो हो गया सो हो गया, अब उससे निस्तार ही कहाँ था।

थोड़े दिन गुजरे। बाबू राधेलालकी एवज़ीवाली नौकरी छूट गयी थी और तबसे वहाँ कामका जुगाड़ नहीं बैठ रहा था। सुबहसे मुलाक़ातें करने निकल जाते, पर इधर तीन महीनेसे बेकारी ऐसी अड़ गयी थी कि कुछ समझमें न आता था। एक रोज़ घूमते-घूमते तहसील जा पहुँचे। लेखपालोंसे मिले और रजिस्टर भरनेका कुछ थोड़ा काम ठेकेपर ले आये। आबादीके नक़्शे तैयार हो रहे थे, लेखपालोंको मर्दुमशुमारीके पाँच-पाँच नक़्शे तैयार करके देने थे। काम बहुत था। कुछ सिलसिला चल निकला। उस दिन रजिस्टर दबाकर तहसीलसे बाहर आये तो स्टाम्पवाले मुंशीजीसे दुआ-सलाम हुई और पता चला कि लाला रामभरोसेको फ़ालिज मार गया है। उनका तख़्त सूना पड़ा था।

पता नहीं क्यों राधेलालको इस ख़बरसे कोई कष्ट नहीं हुआ, पर

दिखानेको बोल ही पड़े, "मुझे टोकते थे कि काहे जान दिये देते हो, और
गुड़ पड़ रहे।"

"अरे तीन दिन पहले तक कामदार आये थे। एकाएक सब हुआ,
उसी दिन या एक दिन पहले तुम्हारी बात आ गयी तो लाला कह रहे
थे कि गोशालामें बड़ा दम है, उन्होंने पता चला था कि आजकल तुम
बेकार हो। तुम लाला रामभरोसेकी जगह तबतक एवजी कर लो...
ठीक हो जायें तब तुम छोड़ देना...मुख्तार साहबका तो काम न
रुके हाँ....."

बात राधेलालको जँची, पर वे जानते थे कि लाला रामभरोसेको
मरनेमें भी पता चल गया कि वे एवजीके लिए तैयार हैं तो किसी दूसरे
आदमीको सिफारिशसे वहाँ पहुँचा देंगे....वह भला राधेलालके लिए कुछ
होने देंगे!

घर आये, तीन-चार रोज हुए, पर बार-बार वही बात मनमें घुम-
ड़ती कि यह मुहर्रिरी मिल सकती तो थोड़ा संकट कटता, पर लाला राम-
भरोसेका ध्यान आते ही सारे ख्याल दम तोड़ देते। शायद उसने किसी
दूसरेकी सिफारिश कर भी दी हो।

उस वक्त शाम होनेको थी। बाबू राधेलाल खामोशीसे, आंगनमें
पड़ी चारपाईपर बैठे ध्यानसे अपनी गान्धी डायरी देख रहे थे कि दरवाजे-
से आवाज आयी—'गमीका बुलउआ है, लाला रामभरोसे सुर्ग सिधारे
हैं।' नाई बिरादरीमें खबर कर रहा था। राधेलाल दौड़कर बाहर आये,
जरूरी पूछ-ताछ की तो पता चला कि अरथी घण्टे-भरमें उठ जायेगी।

भीतर आये, पाँच-सात मिनिट सोचते रहे। पत्नीसे धोती ली और
चल दिये, पर कुछ सोचते हुए देहरीसे वापस लौट आये। धोती सिरके
नीचे धरे चित्त लेटे रहे, फिर उठे और पत्नीसे बोले कि अभी धोती रहने
दो। एक जगह जरा जरूरी काममें हो आयें तब गमीमें जायेंगे। पर
फिर सोच-साचकर उन्होंने धोती बगलमें दबायी और चल दिये। चलने-

चलते सोचनेमें मशगूल थे। आखिर उन्होंने धोती एक जान-पहचानवालेकी दूकानपर रख दी और दस मिनिट बाद वे मुन्तार साहबके मकानके हातेमें उनकी आरामकुरसीके सामने विनत खड़े थे और मुख्तार साहब कह रहे थे :

"आप राधेलाल हैं! अच्छा" 'अच्छा, रामभरोसेने भी आपको एवज़ी-पर रख लेनेको कहलवाया था'''बेचारे बड़े नेक थे, थे तो हमारे मुशी पर घरके बड़े-बूढ़ोंकी तरह थे'''परसों देखने गया, तब भी उन्हें कामकी फ़िक्र थी'''आपकी तो कुछ रिश्तेदारी थी उनसे। उस रोज़ भी आपका नाम लिया था। तो ठीक है, आप मातबर आदमी हैं, कलसे आ जाइए।"

और बाबू राधेलाल पसीनेमें नहा गये थे, हतबुद्ध'''आँखें एकदम सुइक थी, जैसे पथरा गयी हों।

भारी कदमोंसे वे मुख्तार साहबका अहाता पार करके श्मशानकी तरफ़ जा रहे थे और इक्कीस बरसकी नौकरीपेशा ज़िन्दगीमें उन्हें आज पहली बार अपने छूटे हुए गाँवकी याद आयी थी, एक कसक-भरी याद।

●
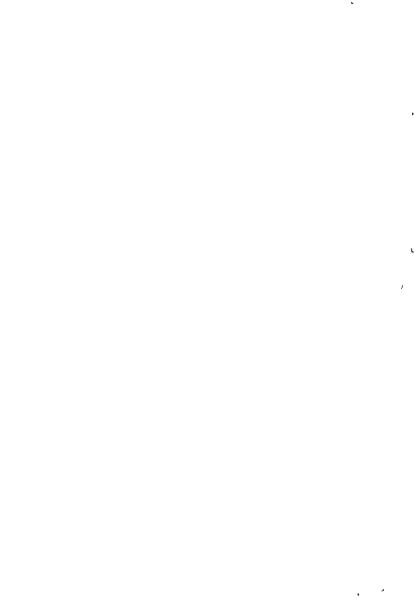
उसका सहारा न मिलता तो शायद मैं आज जो कुछ हूँ वह नहीं बन पाता।" कहते-कहते उसकी आँखोंमें चमक आ गयी। अस्पतालमें गूँजती हलकी पर दर्द-भरी साँसें, नर्सोंकी आमदरफ्तका धीमा शोर, वार्डकी सीढ़ियोंके पास भट्टीपर तामचीनीके बरतनोंमें उबलते औज़ारोंकी नरम कुनकुनाहट और हालमें उड़ती अँगरेज़ी दवाइयोंकी भीनी महक, इस क्षण उसे बहुत अच्छी-सी लग रही थी। अस्पताली जिन्दगीका यह बेबस इन्तज़ार! डॉक्टरोंकी मेहनत और नर्सोंका अपनापन। उसकी आँखें नर्स शारदाके मुखपर टिक गयीं और वह पूछ बैठा, "आज भी तुम दस बजे ही ऑफ होगी? रातको घर जानेमें बड़ी परेशानी होती होगी।"

"अभी एक हफ्ते और यही ड्यूटी है।"—नर्सने कहा।

"तब तो बहुत अच्छा है शारदा, तुम यहाँ न होती तो घुट-घुटकर मर जाता।" वह बोला।

"तुमने अपनी कोई खबर उसे दी है?" सहसा बात काटती नर्स पूछ बैठी।

"मैंने तो नहीं दी, पर वह हमेशा पता लगा लिया करती थी, मेरी ज़रा-ज़रा-सी बात उसके पास पहुँच जाती है, जैसे वह मेरे लिए ही जीती है....जब कभी बाहरसे लौटनेमें कुछ दिन ज़्यादा लग जाते थे तो वह शिकायतके स्वरमें कहती थी—मैं तो एक-एक दिन गिनती थी....रोज़ आनेकी तारीख़ोंका पता लगाती थी, पर आपको इन सबसे क्या।"

तभी कराहनेकी एक आवाज़ हालमें गूँज गयी। बेड नं० २१की ओर दूसरी नर्सके जानेका धीमा शोर सुनाई पड़ा। हरीश एक क्षण रुक गया, फिर बोला, "मैंने एक बार भावुकतावश अपनी जिन्दगीके वीरानेपन और अन्धकारमय भविष्यके बारेमें उसे कुछ लिख दिया था, क्योंकि मैं जानता था कि मेरी जिन्दगी उजाड़ और वीरान होगी, उस राहपर वह न चल सकेगी। इसपर उसने मुझे बड़े विश्वासभरे शब्दोंमें लिखा था कि आपको यह बातें कितनी हल्की है, क्या जीवनके टेढ़े-मेढ़े रास्ते और

मिस्टर थी, इसलिए वह खामोशीसे पड़ा था। बाहरसे कराहनेकी आवाजें आ रही थीं। ड्रेसर इधर-उधर दौड़ रहे थे। वह चाहता था कि जल्दी ही चारदाके आनेका समय हो जाये। उसके आनेसे जैसे कोई सगा-सम्बन्धी उसे मिल जाता है। रोज शामको चारसे छह तक मरीजोंके मिलनेवाले, फल और दूसरी चीजें लेकर आते हैं। हर मरीजका सम्बन्धी रोज आता है, उसके बेडके पास बैठकर बातें करता है, उसका दर्द पूछता है'''लेकिन उसके पास'''किसी भी शामको बाहर बरामदेमें फुसफुसाकर कोई बेड नं० ५ को पूछ-ताछ नहीं करता। अस्पतालकी यह बंधी-सी जिन्दगी! कोई तो एक बार आकर बेड नं० ५ के मरीजका हाल पूछता, कुछ देर पास बैठकर दिलासा देता'''कोई पहचाना चेहरा''' अपहचाना ही सही, पर कोई नहीं आता। और इन मरीजोंके रिश्तेदार आते हैं और इनके चेहरे खिलते जा रहे हैं, रोज हालत सुधरती जा रही है। पर बेड नं० ५''''कोई नहीं पूछता, कोई नहीं आता।

और चारका घण्टा बज चुका था। मरीजोंसे मिलनेवाले रेंग-रेंगकर भीतर आने लगे थे। बराबरवाले मरीजकी पत्नी आयी है, एक फूल-सा बच्चा बापको देखने आया है। वह एकटक उन्हें ताकता रहा—यह पत्नी और बच्चा! रोज आते हैं और इस मरीजकी हालत सुधरती जा रही है। तभी उसने तरसती हुई आँखोंसे चारदाकी ओर ताकते हुए कहा, "जिन्दगीके ये सहारे भी कितने मजबूत हैं।"

"तुम्हें भी मिल जायेंगे।"—कहते हुए उसने एक पत्रिका उसकी ओर बढ़ा दी और कहा, "तुम्हारे लिए ही लायी थी, मन बहल जायेगा।"

उसे हाथमें लेकर भी उसका मन आनेवालोंकी ओर लगा था। बाहर बरामदेमें आनेवालोंका धमाचौकड़ी और अब भी था। वह दरवाजेकी ओर कुछ प्यासी नजरोंसे ताक रहा था कि तभी वह सहसा विश्वास न कर सका कि ऐसा भी हो सकता है, उसके कानोंमें दरवाजेके पाससे आवाज

समयका व्यवधान हमारी शक्तिको झुका सकते हैं ?····सच शारदा, बड़ा गहरा विश्वास है उसकी बातोंमें।"

"अच्छा लाइए, टेम्प्रेचर ले लें, टाइम हो गया है।" कहकर नर्सने एक मिनिट बाद थाऊशीटपर निशान लगाकर रख दिया।

तभी वह फिर बोल उठा, "एक बार मैं उससे नाराज़ हो गया था, कुछ टेढ़े शब्द मैंने उसे लिख दिये थे, तब उसने कहा था, दूसरोंकी ज्यादती सब याद रखते हैं और अपनी तो कोई बात ही नहीं जँचे। मुझे दुःख है कि अब मैं आपकी नज़रोंमें कितनी गिर गयी हूँ। मैं सोचकर घबरा जाती हूँ, अब शायद ही कभी आप मुझे ऊँचाईपर पहुँचायें। पर मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं जैसी पहले थी वैसी ही अब भी हूँ। पर अब शायद मैं आपको उतनी अच्छी नहीं लगती····लेकिन मुझपर विश्वास कीजिए····शायद आपको मेरी परिस्थितियोंका कुछ भी ज्ञान नहीं, कि आपने ऐसी ग़लत धारणा बना ली है।"

"पुरुष हमेशा ज्यादती करते हैं।" शारदाने अपने वक्सुएको ठीक करते हुए कहा।

"पर मैंने उसके साथ कोई ज्यादती नहीं की, और कर भी कैसे सकता था····उसकी वे भीगी-भीगी-सी आँखें और वह धीमी मुसकराहट····भूरे बाल····" हरीशने एक कराहके साथ कहा, जैसे कुछ याद आ गया हो। वह नर्सकी ओरसे उदासीन हो अपनेमें खो गया। अनेकों दृश्य उसकी आँखोंके सामने घूमने लगे—वह हलकी बारिश····कंकड़की सड़क और वह घना पेड़, वे ऊँची-ऊँची इमारतें····सुबहका समय और ··समय-को नापती हुई वह मीनारकी बड़ी-सी घड़ी !

उसकी पलकें मुँद गयीं और नर्स थकी-सी उठ गयी। उसके होंठ कुछ मुसकराये और वह बुदबुदाती चली गयी, विश्वासपर जीनेवाला मरीज़ !"

आज उसकी नसोंमें बहुत दर्द था। शारदा ड्यूटीपर नहीं थी, दूसरी

सिस्टर थी, इसलिए वह खामोशीसे पड़ा था। बाहरसे कराहनेकी आवाज़ें आ रही थी। ड्रेसर इधर-उधर दौड़ रहे थे। वह चाहता था कि जल्दी हो शारदाके आनेका समय हो जाये। उसके आनेसे जैसे कोई सगा-सम्बन्धी उसे मिल जाता है। रोज़ शामको चारसे छह तक मरीज़ोंके मिलनेवाले, फल और दूसरी चीज़ें लेकर आते हैं। हर मरीज़का सम्बन्धी रोज़ आता है, उसके बेडके पास बैठकर बातें करता है, उसका दर्द पूछता है""लेकिन उसके पास""किसी भी शामको बाहर बरामदेमें फुसफुसाकर कोई बेड नं० ५ को पूछ-ताछ नहीं करता। अस्पतालकी यह बँधी-सी ज़िन्दगी! कोई तो एक बार आकर बेड नं० ५ के मरीज़का हाल पूछता, कुछ देर पास बैठकर दिलासा देता""कोई पहचाना चेहरा"" अपहचाना ही सही, पर कोई नहीं आता। और इन मरीज़ोंके रिश्तेदार आते हैं और इनके चेहरे खिलते जा रहे है, रोज़ हालत सुधरती जा रही है। पर बेड नं० ५""कोई नहीं पूछता, कोई नहीं आता।

और चारका घण्टा बज चुका था। मरीज़ोंसे मिलनेवाले रेंग-रेंगकर भीतर आने लगे थे। बराबरवाले मरीज़की पत्नी आयी है, एक फूल-सा बच्चा बापको देखने आया है। वह एकटक उन्हें ताकता रहा—यह पत्नी और बच्चा! रोज़ आते हैं और इस मरीज़की हालत सुधरती जा रही है। तभी उसने तरसती हुई आँखोंसे शारदाकी ओर ताकते हुए कहा, "ज़िन्दगीके ये सहारे भी कितने मज़बूत हैं।"

"तुम्हें भी मिल जायेंगे।"—कहते हुए उसने एक पत्रिका उसकी ओर बढ़ा दी और कहा, "तुम्हारे लिए ही लायी थी, मन बहल जायेगा।"

उसे हाथमें लेकर भी उसका मन आनेवालोंकी ओर लगा था। बाहर बरामदेमें आनेवालोंका सरसाया शोर अब भी था। वह दरवाज़ेकी ओर कुछ प्यासी नज़रोंसे ताक रहा था कि तभी वह सहसा विश्वास न कर सका कि ऐसा भी हो सकता है, उसके कानोंमें दरवाज़ेके पारसे आवाज़

पड़ी—'बेड नं० ५', कोई उसका नम्बर पूछ रहा था। तभी शारदाने बाहर जाकर उस आनेवालेको देखा और साथ लेकर भीतर आयी। हरीश-के पलंगकी ओर इशारा करते हुए वह आनेवालेसे बोली, "बेड नं० ५, ये हैं मिस्टर हरीश।"

वह फटी आँखोंसे ताकता रह गया। तभी सरला तेजीसे उधर बढ़ी और उसके बेडके पास रुक गयी। हरीश विस्मयसे देखता रहा, जैसे विश्वास न कर पा रहा हो। शारदाने पलंगके नीचेसे स्टूल निकालकर सरका दिया। सरला बैठ गयी तो हरीशने मुसकराते हुए कहा, "देखो शारदा, इतनी कशिश है मेरी यादमें"‥लेकिन हाँ, हाँ शारदा, यही तो सरला है जिसकी बातें मैं तुमसे‥‥"

सरलाकी आँखें शारदासे टकरा गयीं, एक क्षण रुकीं, पर तभी कुछ सहम गयीं। शारदाके चेहरेपर शान्त मुसकान नाच गयी। तभी अपनी परेशानीको छिपाते हुए सरला बोलने लगी, "तुमने कोई खबर तक नहीं दी।"

हरीश मुसकरा दिया। फिर बोला, "तुम मालूम जो कर लेती थीं।"

"मालूम न होता तो आती कैसे?" सरला कह गयी, पर उसकी भंगिमामें कुछ सन्देह-सा झाँककर छिप गया। उसने एक बार चारों ओर देखा, शारदापर एक गहरी नजर डाली और फिर सन्तुष्ट-सी होकर रह गयी।

"लीजिए सन्तरा खा लीजिए।" साथ लाये फलोंमें-से सन्तरा निकाल-कर छीलते हुए वह बोली।

"तुम भी ले लो एक-आध फाँक।" हरीशने वैसे ही कहा।

"ये सब देखनेवाले क्या कहेंगे, खाने आयी हूँ या खिलाने!"—सरला बोली।

"तुम्हें दूसरोंके खयालोंकी बड़ी चिन्ता है।" हरीशने यों ही कहा।

"करनी पड़ती है।" सरलाने जैसे कठिनाईसे कहा।

"अच्छा और सुनाओ। देखो, इतने दिन बाद तो मिली हो, बड़ी खामोश हो, मैं तुम्हारी बातें सोच-सोचकर ये दिन काट रहा था।" हरीश बोला।

तभी दीवारसे लगी-लगी शारदाने एक लम्बी साँस खींची और सरला-ने अपनी खुली बाँहको आँचलसे ढँक लिया।

समय समाप्त हो गया। सरला फल रखकर चली गयी। शारदा उसे जाते हुए अन्त तक देखती रही और उसने एक रहम-भरी नज़र हरीशपर डाली। उसकी आँखोंमें असमंजस था। हरीश न जाने किन सपनोंमें डूबा था। जब हाल आनेवालोंसे खाली हो गया, तो उसने शारदाको खोजनेके लिए दृष्टि इधर-उधर घुमायी। शारदा दूसरे मरीज़ोंकी देख-भालमें व्यस्त थी। वह चाहता था कि शारदा इस वक्त आकर उसके पास बैठे, पर न जाने वह क्यों कतराई-सी घूम रही थी। उसकी चालमें असमानता थी, पर आँखोंमें रहम। सरलाके आगमनका सन्तोष उसे जैसे पूर्ण बना गया था और वह दूसरी शामका इन्तज़ार कर रहा था।

और वह दूसरा दिन था जब लगभग तीन बजे थे। वह इसी उधेड़-बुनमें था कि आज सरलाके आनेपर क्या-क्या बातें करेगा। शारदाके काम करनेके ढंगमें आज बहुत हलकापन था। किसी मरीज़की एक कराहपर वह झट दौड़ पड़ती थी। आज वह हरीशके पास बैठी बहुत देर तक उसके माथेपर हाथ फेरती रही। अभी भी वह पास बैठी थी कि एक-दूसरे वार्ड-की नर्सने आकर शारदासे कहा, "अरे शारदा देख, उस नये डॉक्टरका 'पेयर' छपा है''''पहचानती तो होगी डॉ० दयालको''''।"

"देखूँ,"—कहकर पत्रिका शारदाने अपने हाथोंमें ले ली।

शारदाने देखा तो उसके चेहरेपर एकाएक कई परछाइयाँ आ गयीं। उसने उस शादीके जोड़ेको ग़ौरसे देखा और बन्द कर दिया। अपनेको सँभालते हुए उसने वह पत्रिका उसे पकड़ा दी और कहा, "अच्छा है।"

"यह पत्रिका ज़रा मुझे दिखा दो शारदा।" हरीशने कहा, "ज़रा

तसवीरें ही देखूं।"

"क्या करोगे, दूसरेकी है।" शारदाने तिरस्कारपूर्वक कहा।

"अरे अभी वापस कर दूंगा, जरा..." हरीश कह ही रहा था कि उस नर्सने वह पत्रिका हरीशकी ओर बढ़ा दी। एक क्षण कवर देखकर जब उसने पन्ने उलटना शुरू किये तो शारदा उसे बातोंसे घेरने लगी, पर पन्ने पलटते-पलटते वह उस पृष्ठ तक भी पहुंचा और उसकी नजर उस तसवीरपर टिक गयी। उसके हाथ कांप-से गये, आंखोंमें धुआं-सा भर गया। तभी शारदाकी आंखें उससे मिली, हरीशने तिलमिलाकर ठीक होनेकी कोशिश करते हुए कहा, "यह झूठ है...यह..."

शारदा खामोश थी।

वह उस तसवीरको एकटक ताक रहा था...सरला और डॉ॰ दयाल। वह इस सबपर विश्वास नहीं करना चाहता था, पर वह तसवीर तो सब-कुछ साफ-साफ बोल रही थी। सरलाके शरीरपर सुहागके गहने, माथेपर बिन्दी और मांगका सिन्दूर। पर वह सोच रहा था, 'वह कल ही तो मिलने आयी थी। ऐसा था तो क्यों आती? क्यों इतने अपनेपनसे पासमें बैठती? लेकिन यह भी तो सच है...यह सब...'

और उसे लगा कि अस्पतालके बेडपर पड़े मरीज जोरोंसे कराह रहे हैं। बाहर सुलगती भट्टीमें विस्फोट होनेवाला है। उसका शरीर दर्दसे शिथिल हो गया। उसने बडे धीमे स्वरसे पुकारा, "नर्स!"

तभी चारके घण्टे फिर बजे और बेड नं॰ ५ के सामने सरला आ खड़ी हुई। वह उसे घूर रहा था। सरलाने स्वाभाविक ढंगसे पूछा, "आज तबीयत कैसी है?"

उसका मस्तिष्क गरमीसे भर गया। एक नजर उसने सरलाको पूरी तरहसे देखा—गोरा-गोरा चेहरा, वही भीगी-भीगी पलकोंके बाल और वही निश्छलता! बोला, "ठीक है।"

"पर बड़े उदास-से हो।" सरला बोली।

बेड़पर पड़े-पड़े जैसे वह बिखर गया। मनकी उसाँस दबाते हुए बोला, "कुछ पसलियोंमें दर्द बढ़ गया है।"

और सरला अपनेमें कुछ डूबी-सी जा रही थी। हरीश खामोश पड़ा था, बस उसकी ओर देख-भर लेता था। मुखपर-से नजर हटाकर वह उसके शरीरको देखने लगा—कहीं भी तो उसे कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया। तभी सरलाके कानोंमें पड़े रिंग चमक उठे, उसे धक्का-सा लगा। और उसकी कोमल उँगलियोंपर दृष्टि जमी तो उँगलीकी पोरमें पड़ा, उतारी हुई अँगूठीका, हलका गोल-सा आभास। उसने चाहा कि सरलासे कहे, "तुम जाओ। अब क्या करने आयी हो?"

कुछ देर तक खामोशी छायी रही। सरला स्टूल सरकाकर और पास आ गयी। शारदा दीवारसे लगी खड़ी थी। हरीश आँखें मूँदे पड़ा था और सरलाकी निगाहें बराबर उसके उतरे मुखपर लगी थीं। वह चाहती थी कि यह खामोशी टूटे। उसके तकियेके नीचे दबे लिफ़ाफ़ेका एक कोना चमक रहा था, तो बात करनेको सहसा उसने पूछा, "यह किसकी चिट्ठी है?"

हरीशने सुना, सरलाकी आँखोंसे आँखें मिलीं। फिर उस लिफ़ाफ़ेके निकले हुए कोनेको उसने निहारा तो अचानक जैसे सम्बल पा गया हो, कोई बहुत बड़ा सहारा मिल गया हो। बड़ी स्वाभाविकता लाते हुए कोशिशसे बोला, "यह चिट्ठी""यह तो मेरी पत्नीकी है, लिखा है कि देखने आना चाहती हूँ।" कहते-कहते उसने दृष्टि सरलाके मुखपर गड़ा दी।

सरलाकी आँखोंमें एक बार कालिख उभरी, फिर चमक-सी समा गयी। उसका चेहरा कुम्हलाकर ठीक होनेकी कोशिश कर रहा था। कुछ सोचते-सोचते वह सिर झुका, कलाईकी चूड़ियाँ घुमाने लगी।

पास खड़ी शारदा उतावलीसे मुड़ी और गहरी निगाहसे हरीशको ताकती, किसी तरह अपनेको सँभालकर खड़ी हो गयी, जैसे कोई प्रतिवाद करते-करते रुक गयी हो। हरीश करवट बदल, आँखें बन्द कर

लेटा रहा। नरला थोड़ी देर रुककर अपनेमें घुटी-सी शारदासे आँखें
आँखोंमें कुछ कहकर चल दी। शारदाके मुखपर सरल उपेक्षाके भा
बिखर गये।

अस्पतालको घण्टे-भरकी रौनक समाप्त हो चुकी थी। अपनेपनके
घण्टे खत्म हो चुके थे। अपने कहे जानेवालोंकी बसी हुई महक धीरे-धीरे
अँगरेजी दवाओंकी तेज फुहारोंमें घुट-सी गयी थी और बाहर बरामदेमें
भट्ठीपर उबलते नश्तरोंकी आवाज तेज हो गयी थी।

शारदा आश्चर्यमें डूबी कभी मरीजोंको ताकती और कभी हरीशको
....वह चाह रही थी कि हरीशसे पूछे कि वह झूठ क्यों बोला, पर सहमा
ताजे घावको कुरेदनेकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। लेकिन जब नहीं रहा
गया तो पूछ बैठी :

"तुम इतना बड़ा झूठ क्यों बोले ?"

"कौन-सा झूठ ?"—हरीशने जैसे स्वयं प्रश्न कर दिया।

शारदाने गहरी दृष्टिसे घूरा।

धीरेसे मुसकराकर हरीश बोला, "सच और झूठ, दोनों तुम्हा
सामने आ गये, खुद सोच लो न, कौन क्या है ?"

"लेकिन तुम्हारी शादीकी बात तो झूठी है।" शारदा बोली।

हरीश खिसियाई-सी हँसी हँसा, फिर जैसे किन्हीं अतल गहराइयोंसे
[illegible]ला, "जो बिगाड़ता है वह सच नहीं हो सकता, और झूठ अगर
[illegible]सीको बनाता है तो बुरा क्या है....यह तो बनने-बिगड़नेपर है।"

"मेरी समझमें कुछ नहीं आता।"—शारदा बोली।

तभी किसी बेडका मरीज कराह उठा। शारदाने ऊपर देखा
[illegible] बावली-सी उठ खड़ी हुई। हरीशने करवट बदली। फिर
[illegible] हो गया। उसके सामने इस क्षण सब था—मरीज थे, दर्द
[illegible]ताएँ भी थीं, पर सब एक क्षणके लिए। दूसरे क्षण सब गुम
[illegible]और बरामदेमें उबलते नश्तरोंकी आवाज तेज हो जाती।

●

राजा निशंसिंह

बेकार आदमी

कमरेके बाहर ही तख्ती लगी हुई थी, जिसपर लिखा था—बी० सहाय, असिस्टेंट एम्प्लायमेण्ट ऑफीसर। बाहर स्टूलपर चपरासी चौकस बैठा था। दरवाजेपर चिक थी और बरामदेसे गुजरनेवाले क्लर्कों-चपरासियोंकी आवाज सामनेसे जाते हुए, मशीनी ढंगपर धीमी हो जाती थी। अभी-अभी वह खासे कोलाहल और भीड़-भाड़से होता हुआ यहाँ अफसरोंके कमरों तक पहुँचा था। रोजगार पानेके उम्मीदवार बड़े हालके दरवाजेपर इस तरह अड़े हुए थे जैसे किसी विशाल चुम्बकने उन्हें चिपका रखा हो। अपना नाम दर्ज करानेके लिए लोगोंको टिकिट मिल चुके थे। और रोजगारके दफ्तरका एक बाबू ऊँची आवाजमें उम्मीदवारोंको प्रारम्भिक नियम समझा रहा था। उस भीड़-भाड़से होता हुआ वह सहायक अफ़सरके कमरेपर आकर ठिठक गया। चपरासीने फौरन वेटिंगरूमकी ओर इशारा करते हुए उसे उधर जाकर बैठनेका संकेत किया। खुद अपनी खाँसीको उसने मुँहपर मुट्ठी लगाकर रोका और स्टूलसे उतरकर इतनी सावधानीसे खड़ा हुआ कि सिमेण्टके फ़र्शपर सरसराहट तक न होने पाये। एक क्लर्क अपने जूतेकी एड़ियाँ दबाता हुआ खामोशीसे गुजर गया। वह देखता रहा, उस कमरेके प्रति प्रदर्शित किये जानेवाले अदब-क़ायदे और सावधानीमें कुछ ऐसी भावना

थी जैसी किसी मुरदेके प्रति होती है। भीतरसे किसी तरहकी आ[illegible]
भी नही आ रही थी, कुछ सोचकर उसने चपरासीको पास बुल[illegible]
धीमेसे पूछा, "साहब नही है ?"

"हैं, दो मिस साहबका इण्टरव्यू ले रहे हैं।"

उसने चिटपर अपना नाम लिखकर उसे पकड़ा दिया। तभी घण्टी
की आवाज़ने चपरासीको सतर्क किया और वह अपनी पगड़ी सँभालता
हुआ, चिक उठाकर भीतर घुस गया। नाम भेजकर वह बुलाये जानेके
इन्तजारमे बैठ गया। प्रतीक्षालयमें लगे पोस्टरोंपर नजर गयी, बड़ी
देर तक छोटी-बड़ी चिमनियोंकी तरह चित्रित-तालिकाको वह बड़े गौरसे
देखता-समझता रहा। एक नजर चपरासीपर डाली कि शायद अबतक
साहबने बुलाया हो। देर देखकर वह एक पोस्टरके सामने खड़ा हो
गया—रोजगारके दफ़्तरके कामके विस्तारकी वार्षिक तालिका थी वह,
जिसमे हर नये साल बेरोजगारोंकी बढ़ी हुई संख्या देकर महकमेके काम-
की बढ़ोतरी दिखायी गयी थी। हलकी-सी व्यंग्य-भरी मुसकान उसके
होठोंपर फैल गयी। घड़ीपर निगाह डाली, बारह बज चुके थे। वक़्त
काटनेके लिए वह अपने सर्टिफिकेट खोलकर उलटने-पुलटने लगा। बड़ी
देर तक उनसे उलझता रहा। देखते-देखते ऊब गया तो चपरासीसे जाकर
बोला, "कितनी देर और लगेगी ?"

"साहब लंचके लिए अभी-अभी उठकर गये हैं। दो बजे आयेंगे।"—
चपरासीने बताया।

यह जानकर वह थोड़ा-सा हताश हुआ। चपरासीके बतानेके ढंग
जो गरिमा और सम्मान था, उससे वह प्रभावित भी हुआ और उसे लगा
कि अधिकारी महोदय शान-शौकत एवं क़ायदा-पसन्द आदमी हैं, रोब-
दाब भी काफ़ी है। अपनी योग्यता और विशेषताओंके प्रमाण-पत्रोंकी
फ़ाइल उठाकर वह बाहर निकल गया। दफ़्तरके सामनेवाली दुकानपर
चाय वग़ैरह पीता रहा और दो बजे वापस आकर प्रतीक्षालयके दरवाज़े-

पर खड़ा हो गया। लचके लिए जानेके बाद अधिकारी महोदयके कमरेकी जो खिड़कियाँ बन्द कर दी गयी थीं, उन्हें चपरासी फिरसे खोल रहा था। दो-चार मिनिट बाद ही श्री बी० सहाय अपने चश्मेके शीशे साफ करते हुए आये और भीतर चले गये। मुलाक़ातके लिए वह तैयार हो गया। चपरासीने आकर कहा, "साहब बोलते हैं, दस मिनिट बाद मिलेंगे। बड़े साहबका कोई ज़रूरी काम है।"

अच्छा कहकर वह वहीं खड़ा रहा। आखिर उसकी बुलाहट हुई और वह बड़ी शालीनतासे अन्दर दाखिल हुआ।

"बैठिए," अधिकारीका स्वर सुनाई पड़ा। बड़े अदबसे कुरसी सरकाकर वह कन्धे सिकोड़कर बैठ गया और उनकी नज़र उठनेकी प्रतीक्षा करता रहा। मेज़पर गिने-चुने कागज़ थे और उन्हें कुछ इस तरह फैलाया गया था जैसे किसी बड़े बाज़ारका छोटा दूकानदार वस्तुओंके प्रदर्शनमें अधिकसे अधिक जगह घेरनेकी कोशिश करके यह जताता है कि माल भरा पड़ा है। कमरेमें शान्ति थी। रोज़गारके दफ्तरका यह कमरा किसी गिरजेकी तरह लगता था और वह महसूस कर रहा था कि वह शायद पादरीके सामने अपने पापोंको स्वीकार करनेके लिए बैठा था। और शायद उसके गुनाहोंकी फ़ेहरिस्त उस फ़ाइलमें थी जो अभीतक उसकी बग़लमें दबी थी। अपने सामनेके कागज़ हटाकर एक पेपरवेटसे दबाते हुए सहाय साहबने मुसकराहटमें ही पूछा, "कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" उनके व्यवहारकी नरमीने उसे प्रभावित किया, वह भी धीरेसे मुसकरा दिया, कुछ हौसला भी बढ़ा और उसने बग़लकी फ़ाइल सामने मेज़पर रख दी।

दराज़से एक फ़ॉर्म निकालकर उन्होंने सामने रखते हुए अतिशय नम्रतासे कहा, "हाँ श्रीप्रकाशजी, अपनी योग्यताएँ बताइए।"

और प्रकाशने बताना शुरू किया, "हाई स्कूल इण्टर फ़र्स्ट डिवीज़न, बी० ए० सेकेण्ड डिवीज़न, एम० ए० फ़र्स्ट डिवीज़न।"

"किसी विशेष तरफ़ झुकाव ?" सहाय साहबने उनकी [illegible]
प्रति प्रशंसा ज़ाहिर करते हुए पूछा, फिर खुद ही बोले, "आपका
पत्रकारिताकी ओर मालूम होता है।" सुनकर उसने हामी भरी
इस तरह उनकी ओर ताकने लगा जैसे वह उनकी पैनी दृष्टिके [illegible]
आभारी हो। सहाय साहबकी आँखें अपनी प्रशंसामें स्वयं ही चम[illegible]
लगीं। रूमालसे नाखूनोंको पोंछते हुए वे बोले, "मैं मनोविज्ञानका विद्या[illegible]
रहा हूँ।"

सहाय साहबके बात करनेमें हिन्दी शब्दोंको इस्तेमाल करनेकी कोशिश
साफ़ झलक रही थी। वे बोले, "उचित कामके लिए उचित व्यक्ति देना
ही हमारा काम है। और उचित व्यक्तिको पहचान सकना····देखिए न,
मनोविज्ञान इसमें बड़ी सहायता करता है····"

प्रकाशने बात पकड़ ली, "शायद यही आप लोग सबसे बड़ी ग़लती
करते हैं। शिक्षाका पूरा ढाँचा इसके विपरीत है, वहाँ आपकी इस मनो-
विज्ञानवाली बातके लिए कोई जगह नहीं। हम सारे ग्रेजुएट्स एक
कम्पनीके ढले हुए एक-से पुर्ज़े हैं, चाहे जहाँ फिट कर दीजिए!" सुनकर
सहाय साहब धीरेसे मुसकराये।

और इसके बाद उसने अपनी विशेषताएँ बतानी आरम्भ कीं: 'कल-
कत्तेके अँगरेज़ी अख़बारमें सह-सम्पादक, लगभग एक-वर्ष। प्रयागके हिन्दी
मासिकमें सम्पादक, लगभग दस महीने। एक संस्थाके पब्लिसिटी इन्चार्ज-
के रूपमें एक वर्ष। डबल एम० ए०, मनोविज्ञानमें।' इसके अलावा बाल-
मनोविज्ञानपर लिखी हुई किताबोंके नाम जब उसने बताने शुरू किये तो
सहाय साहब अवाक् ताकते रहे, अपनेमें सिमटते हुए बोले, "आपने तो
बहुत लिखा है·· इससे आमदनी नहीं होती ?"

"ये सब लिख-लिखकर बेच चुका हूँ।" प्रकाशने जवाब दिया।

"अख़बारोंमें भी आप लिखते होंगे ?" सहाय साहबने पूछा।

और उसने फ़ाइलमें-से अख़बारोंके कटिंग्स उनकी मेज़पर फैला दि[illegible]

छपी हुई कतरनें हवामें फड़फड़ा उठीं।

सहाय साहबके मुखपर एक अयाचित दीनता-सी अपने-आप बिखर गयी, बोले, "प्रकाशजी, यह लिखनेका शौक़ मुझे भी है। पर''''"— कहते-कहते उन्हें अपनेमें कुछ हीनताका आभास हुआ जिसे उन्होंने खूबीसे दाबकर कहा, "मैं अधिकतर विदेशी अखबारोंको भेजता हूँ। मन था कि कई भाषाएँ पढ़ूँ, लेकिन फ़ुरसत नहीं मिलती''''" इतना कहकर उन्होंने अपनी स्थितिकी उच्चता सँभालते हुए सामनेके फ़ार्मके एक कॉलमको भरनेके लिए सवाल करना ज्यादा उचित समझा, "कितनी भाषाएँ जानते हैं आप''''यही हिन्दी अँगरेज़ी न!"

"जी, इनके साथ उर्दू, बंगाली, मराठी और फ्रेन्च भी।"—प्रकाशने बताया।

"हिन्दीमें भी कुछ लिखा है?" सहाय साहबने पूछा।

और उसने हिन्दी पत्रिकाओं और अखबारोंकी कतरनें सामने कर दीं''''लेख, कहानियाँ, आलोचनाएँ''''

"आपकी बहुत चीज़ें प्रकाशित होती हैं। आप तो पूरे लेखक हैं।" सहाय साहब अपनेको रोकनेकी कोशिशके बावजूद कहते ही जा रहे थे, "काफ़ी नाम कमाया होगा आपने। कमसे कम कितनी तनख्वाहकी नौकरी स्वीकार कर सकेंगे?"

"ढाई सौसे कमकी नहीं।"

उसे नोट करते हुए सहाय साहब बोले, "इतनी पे की वाण्ट्स हमारे पास कम ही आती है, 'केटेगरी ए' में लिखे लेता हूँ। एक बात पूछूँ, अगर आप बुरा न मानें?"

"जी हाँ, जी हाँ ज़रूर पूछिए''''" प्रकाशने कहा।

"आपको नौकरीकी ऐसी क्या खास ज़रूरत''''मेरा मतलब है कि''''" सहाय साहबकी बात काटकर उसने कहा, "अकेला आदमी है सहाय साहब, परिवार बहुत बड़ा है। सबकी ज़िम्मेदारी है और यह

आमदनी बड़ी अनिश्चित है, सोचता हूँ चार-पाँच साल नौकरी कर
भाइयोंको लायक बना लूँ...बस उसके बाद छोड़ दूँगा...अगर
करता तो सब मिट्टी हो जायेगा...मुझे अपनी चिन्ता नहीं है।"–
हुए प्रकाशके चेहरेपर मस्ती-भरी लापरवाही फैल गयी जिसे सहाय
सकुचा-सकुचाकर देखते रहे। ऐसा लग रहा था जैसे वे उसके प्र
वृत्तमें आते जा रहे हों और उनको अधिक बात करनेकी लालसा भर
रही हो। पर जैसे क्षण-दो-क्षण बाद उन्हें असली स्थितिका ज्ञान
या और वे सवाल पूछ उठते थे। योग्यताओं और विशेषताओंके का
जगह जब भर गयी तो सहाय साहबने एक कोरा कागज सामने
हुए कहा, "इसपर बाकी लिख दीजिए, मैं नत्थी कर दूँगा।" क
उन्होंने घण्टी बजायी। चपरासी अदबसे आकर खड़ा हुआ और
लानेका हुक्म पाकर चला गया।

चायके प्याले जब मेजपर आ गये तब बात दूसरी तरफ़ मुड़ ग
सहाय साहब बोलते जा रहे थे, "प्रकाशजी, इधर मैं एक किताब
रहा हूँ, बाल-मनोविज्ञानपर है। तीन-चार लेख पूरे हो गये हैं।"
हुए उन्होंने एक फ़ाइल निकाली और वे लेख प्रकाशके सामने थे।
पहला लेख बच्चोंके मस्तिष्ककी गठनपर है, दूसरा उनकी शारी
चेष्टाओंके सम्बन्धमें है...इसी सीरीजमें क़रीब पन्द्रह लेख लिखनेका इ
है...ये कहीं क्रमशः निकल जायें तो अच्छा रहे। मैं तो खाली व
यही सब करता रहता हूँ। यहीं टाइपराइटर मँगाकर खुद टाइप कर
हूँ, असलमें मेरा सम्बन्ध अखबारोंसे ज्यादा नहीं है, इसलिए लिखता
और रख लेता हूँ। चाहता हूँ हिन्दीमें लिखूँ, लेकिन जरा मुश्कि
पड़ती है...."

"मुझे अँगरेजीमें कठिनाई होती है।" प्रकाशने जैसे सहारा लिया

"तो आप क्यों मुसीबत उठाते हैं, आप हिन्दीमें लिखिए, मैं अँगर
अनुवाद कर दूँगा। आपके पास वक्त हो तो इन्हें जरा देखिए और

बताइए''''आपकी मददसे''''मेरा मतलब है एक-दूसरेकी मददसे हमें फायदा ही होगा। हिन्दुस्तानमें बेरोजगारीकी समस्यापर बड़े साहबके साथ मैंने तीन-चार लेख लिखे थे, बेहद पसन्द किये गये''''पर आप समझ सकते हैं, आगे मैंने उनके साथ नहीं लिखा''''"

सहाय साहबकी बातोंका तार बढ़ता हुआ देखकर उसने घड़ीपर निगाह डाली और चलनेकी इच्छा प्रकट की। सहाय साहब उठकर खड़े हो गये, बोले, "कभी हमारी तरफ़ आइए''''सिविल लाइन्स तो आते होंगे? लिपटन कम्पनीके पीछे छोटा-सा कॉटेज है, आप आइए उधर''''मुझे फ़ोटोग्राफ़ीका बेहद शौक है। तमाम एलबम भरे पड़े हैं। ज़्यादातर मेरी अपनी खींची हुई हैं, पुरानी ऐतिहासिक इमारतोंके ऐसे-ऐसे फ़ोटो मेरे पास हैं कि आप देखते ही रह जाइएगा''''एरियल फ़ोटो-ग्राफ़ीके लिए लड़ाईमें मैंने एयर-फ़ोर्समें नौकरी की थी, उसके बाद कुछ दिनों फ़िल्म्स-डिवीज़नमें रहा, अब क्या-क्या बताऊँ, कभी घर आइए तो बैठके बातें करेंगे''''क़िस्मतने यहाँ ला पटका''''"

और सहाय साहबके चेहरेपर एक अजीब-सी मायूसी फैल गयी थी और प्रकाशकी ओर वे इस तरह देख रहे थे जैसे उसके आनेसे एक ताज़ा हवाका झोंका अभी-अभी आया था, जिसमें उन्होंने साँस ली थी।

चलते हुए प्रकाशने कहा, "आप बैठिए सहाय साहब''''मैं किसी दिन आऊँगा। बैठिए, बैठिए!"

पर कुरसीका हत्था पकड़े सहाय साहब यह तय नहीं कर पा रहे थे कि वे उसपर बैठ जायें या उसे छोड़नेके लिए बाहर तक जायें। वे अधिकारी होकर एक बेकार आदमीको बाहर तक छोड़नेका ग़लत काम करें या इस ग़लत कुरसीपर अधिकारी होनेके नाते बैठ ही जायें।

तभी चपरासीने आकर खबर दी, "साहब आपका फ़ोन है।"

"अच्छा मिस्टर प्रकाश, किसी उचित नौकरीकी ख़बर मिलते ही आपको सूचित कर दिया जायेगा। हम लोगोंका काम ही मदद करना

मित्रके पास ठहरनेमें हमें सुख क्यों न मिलता, जो कलारोंमें रहकर शराब-को हाथ न लगाता हो, जुल्म होते देख दयासे आँखें मींच लेता हो। शामको हम साथ घूमने जाते तो बगलका छोटा डण्डा घुमाते हुए वे मुझसे कहते, "तुम मेरे साथ महीने-भर रह जाओ तो ऐसा पक्का कर दूँ कि जिन्दगीमें कभी गच्चा न खाओ। तुम भी यार दस दिनके लिए रस्म पूरी करने आये। पुलिसवालोंके साथ रहकर आदमी हर फनमें पक्का हो जाता है"

"हाँ, चोर-डाकुओंकी मिसाल सामने है, आखिर तुम्हीं लोगोंका साथ……" गिरीश बोल पड़ा, "इन्हें बख्शो भाय! दो-चार नादानोंको भी दुनियामें रहने दो।"

बात सुनकर बजरंग बहादुरने दूसरा रास्ता पकड़ा, "पुलिसकी नौकरीके लिए दो चीजें चाहिए, अनुशासन और साहस। इन्हीं दो गुणोंसे……"

गिरीशने बात काट दी, "साहस, यानी कलफ लगी बेशिकन वर्दी और अनुशासन यानी खुदमुख्तारी, है न?" बात सुनकर बजरंग चिढ़ गये। कुछ तैशमें बोले, "पहाड़के नीचे आ जाओगे तो पता चलेगा। आरामसे दफ्तरमें बैठते हो न! कातिलों और डकैतोंके फेरमें पड़ो तो पता चले……" फिर जूतेको दबाते हुए बोले, "इसी तहसीलके नामी डाकू सरनाम-सिंहके लिए एक हजारका इनाम था। जिन्दा पकड़ना था। आठ खून और सैकड़ों डकैतियोंका जुर्म था……" अपनी आदतके मुताबिक मुजरिमके कारनामोंमें अधिक दिलचस्पी लेते हुए वे सुना रहे थे, "उसका पकड़ना शेरका पकड़ना था, लेकिन साहब पीछा किया। अक्लमन्दीसे और हिम्मत बाँधकर……"

गिरीशने फिर उनकी बात काट दी, "पिस्तौलमें हिम्मत भरकर और पेटीमें अक्ल बाँधकर!"

बजरंगने उसका वार जैसे नाकाम करते हुए कहा, "नहीं जी, हमारी

पोशाकोंमें थे और पिस्तौल नहीं, भाले लेकर गये थे।" बजरंगने अपनी बुद्धिसे लाजवाब तर्क पेश किया था, जैसे भाला और सादी पोशाकवालेकी हिम्मत और अक़्लमन्दीमें कोई शक नहीं किया जा सकता।

मनुष्यकी सामर्थ्यपर अविश्वास हो जानेके बाद उसको किसी बातमें रस नहीं रह जाता। कुछ ऐसा ही हुआ। बात दिलेरीके क़िस्सोंसे मुड़कर कपड़े और खाने-पीनेकी चीज़ोंके भावपर आ गयी और अन्तमें निष्कर्ष यह निकला कि सिर्फ़ डालडा घीके कारण क़ौम निकम्मी, बोदी और कायर होती जा रही है, इससे अच्छा है कि सरसोंका तेल खाना पकानेके काममें लाया जाये। इस निष्कर्षको निचोड़कर निकालनेमें बजरंगका मुख्य हाथ था।

घर वापस आये तो पुलिसका एक हरकारा बजरंगका इन्तज़ार कर रहा था। ज़िला दफ़्तरसे आया था और एस० पी० साहबका एक बन्द, चपरास लगा लिफ़ाफ़ा लाया था। देखते ही उसने एड़ियाँ चटकायीं और बाअदब लिफ़ाफ़ा बजरंग थानेदारको सौंप दिया।

हम और गिरीश अपने कमरेमें चले गये। खाते वक़्त बजरंग बहुत खुश थे। आख़िर ऐसा क्या कुछ था उस लिफ़ाफ़ेमें? बोले, "एस० पी० साहबका इतना भरोसा है मुझपर····" उनकी ख़ुशी हमें भी अच्छी लगी। वह आगे बोले, "इस इलाकेके बदनाम डाकू नत्थूसिंहके बारेमें ख़बर भेजी है कि मैं ही उसे पकड़ सकता हूँ। चिट्ठीमें उन्होंने ख़ुफ़िया रिपोर्टके सहारे लिखा है कि आज सुबह वह मेरे थानेमें घोड़ेसे दाख़िल हुआ है, तीन मील भीतर आकर घोड़ा भी छोड़ दिया और अब शायद तीन-चार रोज़ बस्तीमें रहेगा····बहुत मुमकिन है, किसी जान-पहचानकी तवायफ़के यहाँ रहे। शनाख़्तके लिए ज़िला रेकॉर्डमें रखे हुए फ़ोटो और ज़रूरी जानकारी भी साथ भेजी है। कुमकके लिए पूछा था। मैंने जवाबमें लिख

कुम्हारोंकी सरायसे उसका गधा चोरी गया था। नाम मटरू, उम्र ३५ साल, छोटा कद, काला रंग, इकहरा बदन।'

नम्बर दो—'तवायफोंके मुहल्लेवाले पनवाड़ीकी दूकानपर था। कोई अजनबी चेहरा नहीं दिखाई पड़ा। पनवाड़ीकी बिक्री रोजसे कम हुई। आजसे दस दिन पहले पानोंकी खपत बढ़ी थी क्योंकि कोई ठाकुर साहब मनबहलावके लिए आये थे, तबसे रोजानाकी आमदनीमें कोई इज़ाफ़ा नहीं हुआ""डेढ़ रुपयेके पान, बारह बण्डल बीड़ी, दो फुरेरियाँ इत्र और तीन पैकेट कैंची सिगरेटकी कुल बिक्री हुई। पान सिगरेट खुदरा बिकीं, एक साथ नहीं मँगायी गयीं।' —कहते-कहते उसने जेबमें पड़े दो बण्डल बीड़ियोंमेंसे एक टेंटमें खुरस लिया और मुँहमें भरे पानको चबलाकर फ़ुरतीसे निगल गया।

नम्बर तीन—'मोटरके अड्डेपर था। जानेवाली मोटरमें खराबी हो गयी इसलिए आज छूटी ही नहीं। आनेवालीसे सत्तरह सवारियाँ उतरीं, पन्द्रह मरद, एक औरत, एक बच्चा। ड्राइवर आज भी पिये हुए था। यह तरबूज और सलाम भेजा है उसने, और कहलाया है कि आजकल रंग-ढंग ठीक नहीं हैं। किसी दिन हाजिर हूँगा, 'नजरे इनायत बनाये रहें।'

नम्बर चार—'हुज़ूरकी कोठीपर ही रहा। मेम साहबका हुकुम था कि मेहमानोंकी वजहसे जमीनपर लेटना पड़ता है इसलिए खाटें बुनकर आज ही तैयार हो जानी चाहिए। बान खरीदने गया, उसने बान दे दिये पर पैसे नहीं बताये, पतलीवाली एक खाट बुन गयी है, चौड़ीवाली मसहरी कल पूरी होगी। मेम साहब नाराज़ हो गयी हैं, उनका हुकुम था कि चौड़ीवाली आज तैयार कर दी जाये, इसलिए हुज़ूर ग़लतीकी माफ़ी दी जाये!'

यही सिलसिला अगले दिन भी जारी रहा। बजरंग अपने कमरेमें

बहुत गम्भीर बने सोचमें डूबे रहे, और जो अहम बातें इस सिलसिलेमें धरके मस्तपर हुई उनकी वजहसे शामको बजरंग कुछ निश्चिन्त नजर आये। दोपहरमें बजरंगके गुरुजीने पदार्पण किया था। गेरुआ वस्त्र, तीन चौथाई नाकसे बालोंकी जड़ों तक तिलक! आँखोंमें सुरमा और बेकार लटकते डोरेकी तरह चुटिया, पैरोंमें खड़ाऊँ और रामनामी दुपट्टा। बात-बातमें 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण'का स्मरण और उनका महामन्त्र—'केवल भगवान्‌का भय और धार्मिक आचरण ही पापकी ओरसे मनुष्यको विरत कर सकता है। पापके शमन तथा पापीको दण्डित करनेका अधिकार केवल उसे है जो धार्मिक वृत्तिका, भगवान्‌से डरनेवाला धर्मात्मा हो।'

और सचमुच बजरंग बहादुर भगवान्‌से डरते थे। यह तब पता चला जब वे शामको सकर भगवान्‌की तसवीरके आगे हाथ जोड़कर खड़े लगातार काँप रहे थे। उनकी अर्धांगिनी थानेदारनी भी निपट पतिव्रता और परमेश्वरभक्त थी, इसका पता 'संकटमोचन महावीर विक्रम बजरंगी'के प्रसादसे चला जो उन्होंने भीतरसे भिजवाया था।

शाम होते-होते मुखियाजी फिर हाजिर हुए और उन्होंने अपनी रिपोर्ट पेश की। कुछ भी सुराग न मिलनेसे बजरंग बहादुरका पारा चढ़ गया। आखिर उबल पड़े, "तुम लोग निहायत निकम्मे, डरपोक और कामचोर हो....चार-चार आदमी दो दिनसे मगज मार रहे हैं और कोई पता नहीं लगता! आखिर किस मर्जकी दवा हो तुम लोग? सर-कारने मदद करनेके लिए रख छोड़ा है तुम्हें? मैं निकलूँ तो एक मिनटमें पता लगा लाऊँ पर मेरा निकलना होगा कि सबसे ठीक न होगा, जो हाथ आता है वह भी आ जायेगा। काम करना है, [illegible] नहीं लड़नी है। कल तक अगर कुछ पता न चला तो एक [illegible] रखा है, [illegible] पता चलेगा। [illegible] नहीं [illegible]

तो रातको लगाओ; कहीसे, कैसे भी लगाओ। सुबह तक पक्की खबर लाकर न दी तो""हट जाओ मेरे सामनेसे !"

एड़ियाँ चटकाकर हुक्मके ताबेदार उधर चले गये और धर्मके ताबेदार गुरुजी इधर अखण्ड पाठपर बैठ गये।

दूसरे रोज सुबह दस बजे सुराग मिला। घरमें हड़कम्प मच गया। गुरुजीने नक्षत्र विचारे और वह दिन थानेदार साहबके लिए खतरनाक घोषित कर दिया। लेकिन बजरंग बहादुर आखिर मर्द थे। तीन सिपाहियोंको साथ लेकर थाने गये। वरदीवाले छहों सिपाहियोंको एकदम तैयार होनेका हुक्म दिया, उन्हें सारी बारीकियाँ समझायीं, असली चेहरे पहचाननेके लिए बड़े दफ्तरसे आये फोटुओंको उनकी आँखोंमें नक्श किया और अक्लमन्दी और हिम्मतके साथ जिन्दा या मुरदा पकड़ लानेका हुक्म देकर खुद घर लौट आये।

तीन दिनसे शामका टहलना नहीं हुआ था, मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं थी, गिरीशने बजरंगसे कहा तो बजरंगने असमर्थता जताते हुए जवाब दिया, "मेरा निकलना मुनासिब नहीं। पहली बात तो यह है कि पता नहीं किस पल मुझे जाना पड़े, क्या जरूरत पड़ जाये। दूसरे यह कि मैं निकला तो बाजारमें पचास मतलब लगाये जायेंगे, खासतौरसे आज""कल फुरसतसे चलेंगे।"

सूरज अभी डूब ही रहा था कि ऊबकर गिरीशने पैण्ट और बुशर्ट चढ़ायी और सिगरेट सुलगाकर अकेले ही निकल गया। उधर गुरुजीका अखण्ड पाठ चलता रहा और मैं आधा बीमार, सिरका दर्द लिये खाटपर पड़ा रहा।

बजरंग बहुत परेशान थे। कभी अपने कमरेमें घुस जाते, बाहर आते तो पुलिसकी पूरी वरदीमें होते, जनेऊ सूँतनेकी तरह पिस्तौलकी

पेटीपर हाथ फेरते होते। तीन-चार मिनिट चिन्तित-से घूमते और बा
कमरेमें चले जाते। वरदी उतर जाती और बिहारी लुंगी चढ़ जात
इसी तरह दो-तीन बार मैंने उन्हें पूरी पुलिस ड्रेसमें सिंहकी तरह
और तत्काल बाद लुंगीमें गीदड़की तरह····एक ही आदमीमें क्षण-
कितना परिवर्तन होता है यह अजीब-सा लगता। उनकी देहका
पौरुष चमककर लुप्त हो जाता। आखिर वे मेरे पास आकर बैठ
रायफलों और पिस्तौलोंकी बनावट समझायी, रेंज बताया और कुछ म
पिस्तौलकी कहानी सुनाते रहे, जिनमें-से एक उनकी थी।

मैंने कहा, "क्या इन औज़ारोंने ख़तरा और नहीं बढ़ा दिया?"

"पहले ख़तरा पैदा हुआ तब ये औज़ार बनाये गये····" ब
बोले, "इसलिए इनकी ज़रूरतको नकारा नहीं जा सकता।"

"यानी ख़तरेको वशीभूत करनेके लिए हमने बड़े भयको जन्म
और यह भय हमारे साहसको निकम्मा बनाता गया····"

"यह ग़लत है, इनसे साहस मिलता है····" बजरंग यह ही
कि पुलिसके एक आदमीने फुरतीसे प्रवेश किया। चेहरेपर घब
पर निराशा नहीं। बोला, "दीवानजीने कहलाया है····हुज़ूर,
गिरफ़्तार हो गये हैं, तीन थानेमें हैं, दो पहुँचते होंगे। बस्तीमें ग
मच गयी है। आगे हुक्मका इन्तज़ार है।"

इस बीच गुरुजी कमरेमें आ गये थे और थानेदारनी बंगले
साथे खड़ी खड़ी थी। गुरुजी बोल पड़े, "विजय हुई साहब,
हुई····!"

"मैं थाने चलता हूँ····क्या-क्या चीज़ें बरामद हुई?"—बजर
बजरंग भीतरकी ओर चले गये। गुरुजी पीछे थे। बंगलेमें दिय
रहा था कि थानेदारनी उन्हें रोक रही थी और गुरुजी कुछ सम
थे, "अभी ख़तरा टली नहीं है, कुछ घण्टोंका और योग है, इतना ब
जाइए फिर कोई भय नहीं है····"

राजा नि

जोशपर ठण्डा छोटा पड़ गया था। बजरंगने आकर पूछा, "मोटर कितने बजे छूटती है? मुजरिमोंको ज़िला कोतवाली पहुँचाना होगा।"

"आधा घण्टा है हुजूर।"—वह आदमी बोला।

"दीवानजीसे कहो कि पूरी गारद लेकर पाँचों मुजरिमोंके साथ इसी मोटरसे रवाना हो जायें। मैं किसी और सवारीसे पहुँचता हूँ। सीधे हवालात ले जायें और खानातलाशी इत्मीनानसे ले लें।"

हुक्म पाकर सिपाही चला गया और तब बजरंगके मुँहपर हँसी दिखाई दी। रात सवारी मिलना मुश्किल था इसलिए सुबहके मोटरसे जानेकी बात तै हो गयी। और बजरंग बहादुर भीतर घरमें अपनी बीवीसे लगातार बातें करते रहे; गुरुजी डेढ़-दो घण्टे बाद बिदाई लेकर चले गये।

रात झुक आयी तो बजरंगने मेरे कमरेमें पैर रखा। हाथमें एक फाइल थी। आते ही पूछा, "गिरीश नहीं आया?"

"आता होगा।" मैंने कहा, और वे अपनी उतावलीको गिरीशके आने तक नहीं रोक पाये; बोले, "उसे भी दिखाऊँगा, पहले तुम्हें दिखाऊँ।" और उन्होंने अपनी कारगुज़ारी सुनानी शुरू की।

"ये रही कप्तान साहबकी चिट्ठी।"—कहते-कहते उन्होंने उसे एक बार मुझे सुनानेके बहाने खुद पढ़ लिया और अहम शब्दोंको साफ़ करके मुझे समझा दिया और इन तीन दिनोंके बीच जो कुछ मैंने देखा था उसे भूलते हुए वे अपनी नाकेबन्दी और चतुराईको पेश करने लगे—"इन कामोंमें अक़्ल चाहिए, भगवान्‌का भरोसा तो बुज़दिलोंकी सोच है, अक़्ल बड़ी कि भैंस! जो काम हिक़मतसे निकल जाता है वह ताक़तसे नहीं हो पाता।" कहते हुए उन्होंने डाकुओंके पाँचों फ़ोटो मेरे सामने कर दिये जो कप्तान साहबके पाससे आये थे।

उन तसवीरोंको देखा—वे तसवीरें एक ही डाकूकी पर अलग-अलग पाँच वेशोंमें थीं, कोई सन्यासी वेशमें थी, कोई अपटूडेट अँगरेज़ी लिबासमें, कोई गँवारके रूपमें। मैंने भौचक्के होकर पूछा, "ये तो एक

ही आदमीकी पाँच तसवीरें हैं···तुमने कितने आदमी पकड़वा दिये ?"

"नहीं जी, ये पाँच अलग-अलग आदमी हैं,"—कहते हुए बजरंग बहादुरने तसवीरें हाथमें ले लीं पर देखते ही मुँह फक हो गया। घबराये हुए बोले, "ग़जब हो गया···यह तो एक ही आदमी है····"

गिरीश उस रात नहीं लौटा। दूसरे रोज़ उसका तार मिला—'पुलिसवालोंने डाकूके वहममें ज़बरदस्ती पकड़ लिया था, अभी छूटा हूँ। घर वापस जा रहा हूँ। सामान लेते आना।'

•

ऽस्वेका आदमी

सुबह पाँच बजे गाड़ी मिली। उसने एक कम्पार्टमेण्टमें अपना बिस्तर लगा दिया। समयपर गाड़ीने झाँसी छोड़ा और छह बजते-बजते डिब्बेमें सुबहकी रोशनी और ठण्डक भरने लगी। हवाने उसे कुछ गुदगुदाया। बाहरके दृश्य साफ हो रहे थे, जैसे कोई चित्रित कलाकृतिपर-से धीरे-धीरे ट्रेसिंग पेपर हटाता जा रहा हो। उसे यह सब बहुत भला-सा लगा। उसने अपनी चादर टाँगोंपर डाल ली। पैर सिकोड़कर बैठा ही था कि *आवाज सुनाई दी, "पढ़ो पटे सितारम्···सितारऽऽरऽम्···"*

उसने मुड़कर देखा, तो प्रवचनकर्ताकी पीठ दिखाई दी। कोई खास जाड़ा तो नहीं था, पर तोतेके मालिक, रुईका कोट, जिसपर वर्फीनुमा सिलाई पड़ी थी और एक पतली मोहरीका पाजामा पहने नजर आये। सिरपर टोपा भी था और सीटके सहारे एक मोटा-सा सोटा भी टिका था। पर न तो उनकी शक्ल ही दिखाई दे रही थी और न तोता। फिर वही आवाज़ गूँज उठी, "पढ़ो पटे सित्तारम् सित्तारम्···"

सभी लोगोंकी आँखें उधर ही ताकने लग गयीं। आखिर उससे न रहा गया। वह उठकर उन्हें देखनेके लिए खिड़कीकी ओर बढ़ा। वहाँ तोता भी था और उसका पिंजरा भी; और उनके हाथमें आटेकी लोई भी, जिससे वे फुर्तीसे गोलियाँ बनाते जा रहे थे और पक्षीको पुचकार-पुचकारकर खिलाते

ही आदमीकी पाँच तसवीरें हैं"''तुमने कितने आदमी पकड़वा दिये ?"

"नहीं जी, ये पाँच अलग-अलग आदमी हैं,"—कहते हुए बजरंग बहादुरने तसवीरें हाथमें ले लीं पर देखते ही मुँह फक हो गया। घबराते हुए बोले, "ग़ज़ब हो गया'''यह तो एक ही आदमी है'''"

गिरीश उस रात नहीं सोया। दूसरे रोज़ उसका तार मिला—'पुलिसवालोंने डाकूके भ्रममें ज़बरदस्ती पकड़ लिया था, अभी छूटा हूँ। घर वापस आ रहा हूँ। सामान लेते आना।'

कस्बेका आदमी

सुबह पाँच बजे गाड़ी मिली। उसने एक कम्पार्टमेण्टमें अपना बिस्तर लगा दिया। समयपर गाड़ीने झांसी छोड़ा और छह बजते-बजते डिब्बेमें सुबहकी रोशनी और ठण्डक भरने लगी। हवाने उसे कुछ गुदगुदाया। बाहरके दृश्य साफ हो रहे थे, जैसे कोई चित्रित कलाकृतिपर-से धीरे-धीरे ड्रेसिंग पेपर हटाता जा रहा हो। उसे यह सब बहुत भला-सा लगा। उसने अपनी चादर टांगोंपर डाल ली। पैर सिकोड़कर बैठा ही था कि आवाज़ सुनाई दी, "पढ़ो पटे सित्तारम्......सित्ताऽऽरऽम्....."

उसने मुड़कर देखा, तो प्रवचनकर्ताकी पीठ दिखाई दी। कोई खास जाड़ा तो नहीं था, पर तोतेके मालिक, रुईका कोट, जिसपर बर्फ़ीनुमा सिलाई पड़ी थी और एक पतली मोहरीका पाजामा पहने नज़र आये। सिरपर टोपा भी था और सीटके सहारे एक मोटा-सा सोटा भी टिका था। पर न तो उनकी शक्ल ही दिखाई दे रही थी और न तोता। फिर वही आवाज़ गूँज उठी, "पढ़ो पटे सितारम् सितारम्....."

सभी लोगोंकी आँखें उधर ही ताकने लग गयीं। आख़िर उससे न रहा गया। वह उठकर उन्हें देखनेके लिए खिड़कीकी ओर बढ़ा। वहाँ तोता भी था और उसका पिंजरा भी; और उनके हाथमें आटेकी लोई भी, जिससे वे फुरतीसे गोलियाँ बनाते जा रहे थे और पक्षीको पुचकार-पुचकारकर खिलाते

क़ी पुराना घर था, दूकान थी। पर जब बाप मरे, तो छोटेकी उमर
हुत कम थी। माँ पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थी। बापके मरनेके बाद
रके रिश्तेकी एक चाची आकर सब देख-भाल करने लगी। फिर बहुत
ड़ी-सी चोरी हुई और छोटेका घर तबाह हो गया। चाचीको तीरथकी
झी, तो छोटेको साथ लेकर चल दी। खर्चेकी ज़रूरत पड़नेपर एक
ख्तारसे जब-तब रुपये मँगवाती रही। छोटे साथ थे, सो रसीद भेजते
हे। आखिर जब तीरथसे वापस आये, तब पाँच-छह बरस उसी मकानमें
ौर रहना हुआ। फिर मुख्तारने मूल और ब्याजके बदले एक दिन
कान कुर्क करा लिया, गवाहीमें छोटेके हाथकी रसीदें पेश कर दी और
ने-पौनेमें मकान झाड़ दिया। तबसे उनकी चाचीने जनाने अस्पतालमें
ौकरी कर ली और छोटे बिस्किटोंका ठेला लगाने लगे और घूम-घूमकर
ाजारकी सड़कोंपर चीखने लगे—'एक पैसेमें पचास''''पचास बिस्किट
नाम''''जितना लगाओगे, उतना पाओगे'''''

ठेलेमें मैदाके छोटे-छोटे बिस्किटोंका ढेर लगा रहता। एक कोनेपर
क बड़ी-सी फिरकनी रखी रहती, जिसपर नम्बरके खाने बने रहते,
ौर उसपर एक सुई नाचती रहती। जब कोई पैसा लगाकर घुमानेवाला
मिलता, तो खड़े-खड़े स्वयं घुमाते रहते; जितना नम्बर आता, उतने
बिस्किट मिलते और फिर ढेरमें डालकर अनाजकी तरह रोरते रहते।
भी क़रारे-क़रारे बीस-पचीस छाँट लेते, सुई घुमाते, अण्टीसे एक पैसा
िकालकर पैसा रखनेवाले फूलके कटोरेमें झपसे मारते और जितना
म्बर आता, उतने गिनकर, बाक़ी ढेरके सुपुर्द कर जलपान कर लेते।

लेकिन इस तरह कैसे पेट पलता। फिर एक होम्योपैथिक डॉक्टरकी
ूकानको रोज सुबह खोलने तथा झाड़ने-पोंछनेका काम ले लिया। दो-
ार घरोंका पानी बाँध लिया। तड़के उठकर चार-चार ढोल खींचकर
ोल लाते और डॉक्टरकी दूकानकी सफ़ाई आदि करके कोनेमें पड़े मोढ़ेपर

इज्जतसे दोपहर तक बैठे रहते। डॉक्टर साहबकी अनुपस्थितिमें
हाल-चाल पूछ लेते। कुछ देसी दवाइयोंके नुस्खे बताते और ज
इयोंकी अहमियत समझाते।

तभीसे छोटे अपनेको बहुत-कुछ, एक छोटा-मोटा वैद्य सम
थे। मरीजकी दशा देखते ही रोगका ऐलान कर देते। तमाम
इलाजपर उन्होंने दखल जमा लिया था। जब मोतियाबिन्द हो
कारण डॉक्टर साहबको दूकान बन्द कर देनी पड़ी, तो छोटे अपनी
में ही एक छोटा-सा औषधालय खोलनेका मन्सूबा बांधने लगे।
अत्तारके यहांसे आठ-दस आनेकी जड़ी-बूटियां भी बंधवा
जिन्हें घोट-पीस और कपड़छन करके सफेद शीशियोंमें भरा औ
सजा दिया। फसली बुखार, हरे-पीले दस्त, नाक-कान-सिर-दर्द
दवाइयां बांटनेका ऐलान भी कर दिया। पर गलीके परिवारोंक
न मिलनेके कारण उन्होंने इस नेक इरादेको छोड़ दिया। मार
दवाइयोंको थोड़ा-थोड़ा करके चूरनकी पुड़ियोंमें मिलाकर उन्होंने
अपने पैसे सीधे कर लिये।

इस तरहके न जाने कितने घरेलू धन्धे उन्होंने चलाये।
होते हुए भी प्रकृतिमें परोपकारी होनेके कारण उन्हें ब्राह्मणत्व
करना ही था। इसीलिए जब गली-टोलेके लड़कोंने उन्हें
देखा और चमकदार काली पीठपर जनेऊ दिखाई पड़ा, भी
नाजान अनजान, कर्मगत संस्कारोंके आधारपर उन्हें महराज
लगे। तभीसे छोटेलाल छोटे महराज हो गये।

जिस इमलीके नीचे वह बैठते थे, उसपर दैवकी कृपासे
घर लिया, तो एक दिन अंधियारे पाखमें आकर
कंजर पकड़ लाये। छाता बटाईपर तै हो गया। पर छोटे महराज
बना करते। चलते वक्त उसे कह दिया कि आधे दाम
महीना-भर टल गया। मांसखोर तमाशा करते पहुंचे। नगर

हीं, अच्छी-खासी डाँट लगाकर पैसोंके बदलेमें तोता छाँट लिया। कंजर-
ने मिन्नत की कि तीनों तोते पेशगी दामोंके हैं, इस बार जायेगा तो उनके
लिए भी पकड़ लायेगा। पर छोटे न माने, दो-चार गालियाँ सुना दीं,
ठेंठमें बोले, "मेरे पैसे क्या हरामके थे, वह भी तो पेशगीमें-से ही है, ला
निकाल जल्दी इस टुइयाँको।"

और तभीसे यह तोता उनके पास है, जिसे जानकी तरह चिपकाये
रहते हैं।

शिवराजने प्रसन्नतासे उन्हें देखा। 'पालागें महराज' कहकर बोला,
"इधर निकल आयें महराज, बहुत जगह है।"

जब वह पास आकर बैठ गये तो उसने पूछा, "झाँसी किसके यहाँ
गये थे?"

"यहीं एक ब्याह था, उसमें आये थे, आना पड़ा....अपनी कहो....
लेकिन देख, पहचाना कैसा। नजर कमजोर है लला, पर अपने गली-कूचे-
के पले लोगोंकी तो महक बहुत होती है...." और वे धीरे-धीरे गरदन
हिलाने लगे। उँगलियोंके बीच गोली अब भी नाच रही थी और पिंजरेमें
बैठा मन्नू गोलीके लालचसे मुँह खोलता, आँखें बन्द करता, पर बोलता
नहीं था।

"बदन तो तुम्हारा एकदम लटक गया है, पहलेसे चौथाई भी नहीं
रहा...." शिवराज बोला। उसे कुछ दुःख-सा हो रहा था, जब उसने
पिछली मरतबा देखा था, तब कितने हट्टे-कट्टे थे। यों उमरका उतार तो
था, पर इतना फर्क तो बहुत है। भला उमर बने-बनाये आदमीको इतनी
जल्दी भी तोड़ सकती है!

गाड़ीकी चाल धीमी पड़ गयी। छोटे महराजने मन्नूके पिंजरेको
तनिक ऊपर उठाया। उसकी ओर प्यार-भरी दृष्टिसे निहारते रहे। तोता
कुछ बोला। छोटे महराजके मुखपर मुसकान दौड़ गयी। बड़े स्नेहसे

पुचकारते हुए शिवराजको बताने लगे, "इसका नाम सन्नू है!
सन्त……जब बोले तो बानी बोले, हाँ……सन्त बानी सिताराम!"
कहते-कहते वे अपनी ही बातमें डूब गये।

गाड़ी रुकी, कोई मामूली-सा स्टेशन था। छोटे महराजने
हाथ फेरा और सिर हिलाते हुए बोले, "देखो शिब्बू, कुछ खाने-
डौल है यहाँ ?"

मिठाईवाला पाससे गुजरा, शिवराजने रोक लिया। छोटे
बोले, "कुछ ठीक-ठाक हो तो पाव-आध पाव……"

मिठाई लेकर पैसे शिवराजने दे दिये। दोनों हाथोंसे दोना
शिवराजके सामने करते हुए वह बोले, "लो शिब्बू, चखो तो जरा
हो तो पाव-भर और ले लो।"

और इससे पहले कि शिवराज चखे, उन्होंने खुद पोपले मुँ
टुकड़ा डालते हुए अपनी राय प्रकट कर दी, "है तो
बुलाओ उसे।"

शिवराजको बात कसक गयी। वह चुप ही बैठा रहा।
मिठाईवालेको बुलानेकी कोई दिखावटी चेष्टा भी उसने नहीं की
जैसे ही मिठाईवाला फिर गुजरा, उनकी दृष्टि पड़ गयी। उसे रो
बोले, "हाँ भाई, जरा पाव-भर और देना तो।" फिर शिवराज
मुखातिब होकर बोले, "ले लो, शिब्बू……असलमें बात यह है
अब कोई ऐसी-वैसी चीज तो खायी नहीं जाती, दाँत ही नहीं रहे
खोया थोड़ा आसान रहता है न।" कहकर उन्होंने निष्काम-भा
शुरू कर दिया।

पैसे उसने फिर दे दिये। खाते समय छोटे महराजका निरी
और एकदम सट जानेवाले जबड़े देखकर उसे रहम आ गया
झुकी गरदन, बार-बार पलकोंका झपकना और जरा-जरा का
जैसे सारे कार्य और तनकी सारी भाव-भंगिमाओंमें लाचारी थी

राग्र

क टुकड़ा पिंजरेमें डाल दिया। तोतेने खा लिया। पुचकारते हुए न्होंने फिर एक टुकड़ा डाल दिया। वे स्वयं खाते रहे और सन्तूको खिलाते रहे। फिर बात चल निकली और उसीके मध्य उनका स्टेशन भी आ गया।

स्टेशनसे बाहर आनेपर शिवराज और छोटे महराज एक ही इक्केमें बैठ गये। दो सवारियाँ और हो गयीं। इक्का चला तो हचकोला लगा। छोटे महराज अपन तोतेके पिंजरेको पटरेसे बाहर लटकाये किसी तरह बैठे रहे। अस्पतालके पास वह इक्केसे उतर पड़े। सन्तूका पिंजरा पटरी-पर रख दिया और झोलेमें-से कुछ निकालते हुए कहने लगे, "मैं यहीं ठहरा जाता हूँ। चाचीको ब्याहका हाल-चाल बताकर कोठरीपर आऊँगा! हाँ, तुमसे एक काम है।"''ये एक कपड़ा है सिलकका; वहीं शादीमें मिला था। मेरे तो भला क्या काम आयेगा, तुम अपने काममें ले आना!" बात खतम करते-करते वह कपड़ा झोलेसे निकालकर शिवराज-की गोदमें रख दिया।

शिवराजने लेनेसे इनकार किया। पर वे नहीं माने। शिवराज भी नहीं माना, तो वह़े मुँझलाकर कपड़ा इक्केमें फेंककर सन्तूका पिंजरा, झोला और सोंटा लेकर बड़बड़ाते चल दिये, "अरे पूछो""मेरे किसी कामका हो तो एक बात भी है। जिन्दगी-भरमें एक चीज दी, उसके भी इनकार""सब वक्तकी बातें हैं, रहम दिखाते हैं मुझपर, तेरे बाप होते तो अभी इसी बातपर पटख जाते।" फिर मुड़कर ऊँचे स्वरमें बोले, "पैसे नहीं हैं मेरे पास, इक्केवालेको दे देना।" और वे जनाने अस्पतालके फाटकमें गुम हो गये।

दूसरे दिन सवेरे छोटे महराज अपनी कोठरीमें दिखाई दिये। देहरीपर बैठे-बैठे कराह रहे थे। कभी-कभी बुरी तरहसे खाँस उठते। साँसका दौरा पड़ गया था। गलीसे शिवराज निकला तो पिछले दिनवाली बातके

कारण उसकी हिम्मत कुछ कहनेकी नहीं पड़ी। सीधा कतराकर निकल जाये, पर पैर ठिठक रहे थे। तभी हाँफते-हाँफते छोटे महाराज बोले, "अरे शिब्बू !" फिर कराहकर टुकड़े-टुकड़े करके कहने लगे, "दौरा पड़ गया है, कल रातसे.....हाँ....अब कौन देखे सन्नूको। बड़ी खराब आदत है इसको, गरदन सलाखसे बाहर कर लेता है। रात-भर बिल्ली घरकर काटती रही, बेटा। छन-भरको पलक नहीं लगी। अपने होश-हवास ठीक नहीं तो कौन रखवाली करे इसकी। अपने घर रख लो, बेफिकर हो जाऊँ।"

और इतना कहकर बुरी तरह हाँफने लगे। गलेमें कफ घड़घड़ा आया, तो औंधे होकर लेट रहे। पीठ बुरी तरह उठ-बैठ रही थी। शिब-राज 'अच्छा' कहकर पिंजरा उठाकर चलने लगा; तोतेको एक बार पूरी आँख खोलकर उन्होंने ताका। उनकी गँदली-गँदली आँखोंमें एक अजीब विरह-मिश्रित तृप्ति थी। जैसे किसी बूढ़े बापने अपनी लड़की बिदा कर दी हो। फिर नीचा करके उन्होंने एक गहरा साँस खींची, जैसे बहुत भारी ऋणसे उऋण हो गये हों।

तीन-चार दिन हो गये थे। छोटे महाराजकी हालत खराब होती जा रही थी। अकेले कोठरीमें पड़े रहते। कोई पास बैठनेवाला भी नहीं था। चौथे दिन हालत कुछ ठीक नजर आयी। सरककर देहरी तक आये। घुटनों-पर कोहनियाँ रखे और हथेलियोंमें सिरको थामे कुछ टोहते बैठे थे। कभी कराह उठते, खाँसी लगती तो साँस उखड़ती। पर उनके चेहरेपर अपार [illegible] छाया व्याप रही थी, जैसे किसी भारी ग़ममें डूबे हों। उनकी आँखमें कुछ ऐसा भाव था, जैसे किसीने उन्हें गहरा धोखा दिया हो, कि कानोंमें बार-बार सन्नूकी वह आवाज़ गूँज रही थी, जो उन्होंने रहरह सुनी थी।

दोपहर सन्नूकी बाहर आवाज जब शिवराजके [illegible] सुनाई दी तो

राजा शिवसिंह

वे घबरा गये थे कि कहीं बिल्लीकी घात तो नहीं लग गयी। बडे परे
रहे, पर उठना तो बसमें नहीं था। शिवराजके घरकी ओर बहुत देर त
लगाये रहे कि कोई निकले, तो पता चले। काफी देर बाद मुनुआ दं
दो-तीन हरे-हरे पंखोंका मुकुट बनाये माथेसे बाँधे, दो-तीन बच्चोंके
खेलता दिखाई पड़ा, देखते ही सनाका हो गया। सन्नूकी पूँछके
लम्बे पंख! किसी तरह बुलाकर पूछा तो पता चला कि मुनुआको
बनना था, सो उसने सन्नूकी पूँछ पकड़ ली। बातकी बातमें दो
पंख नुच आये।

छोटे महराजका जैसे सारा विश्वास उठ गया। ये लड़का तो
मार डालेगा! इस वक्त तबीयत कुछ ठीक मालूम हुई; बड़ी मुश्कि
उन्होंने अपना डण्डा पकड़ा, हिलते-काँपते शिवराजके बरोठेमें पहुँचे
अपना तोता वापस माँग लाये। कोठरीमें आकर उसकी बूँची पूँछ
रहे, पर मुँहसे कुछ नहीं बोले। सन्नूको पुचकारा तक नहीं।

शाम हो आयी थी। तिराहेपर लालटेन जल गयी थी। पूरी
में उदास अँधियारा भरता जा रहा था। उन्होंने सन्नूके पिंजरेको
रखकर कोठरीके दरवाजे उढ़का लिये और फिर नहीं निकले। भीत
देर खुट-पुट करते रहे, फिर रात कोई आवाज नहीं आयी।

सबेरे शिवराज उधरसे निकला तो कोठरीकी ओर निगाह
दरवाजे उसी तरह भिड़े थे। उसने धीरेसे खोलकर झाँका, देखा मह
रहे थे। चुपचाप धीरेसे दरवाजा बन्द करने लगा, तो गलीके राम
बोल पड़े, "क्यों, आज नहीं उठे महराज अभीतक?"

और इतना कहते-कहते उन्होंने पूरे दरवाजे खोल दिये। दोनों
ने देखा, तोतेका पिंजरा सिरहाने रखा था, जिसपर कपड़ा था।
बिल्लीकी घात न लग पाये, परन्तु छोटे महराजका पिंजरा
पड़ा था, पछी उड़ गया था।

छोटे महराजने स्वयं तो नहीं पढ़ा था, पर रामलीला आदिमें सुननेके कारण यह उनका पक्का विश्वास था कि अन्तिम कालमें यदि रामका नाम कानोंमें पड़ जाये तो मुक्ति मिल जाती है। पता नहीं, उनके अन्तिम क्षणोंमें तो राम बोलनेकी वाणी फूटी थी या नहीं।